अणुव्रत-आन्दोलन

●

लक्ष्य और साधन

१ (क) जाति वर्ण देश और धर्मका भेदभाव न रखते हुए मनुष्य मात्रको आत्म-संयम की ओर प्रेरित करना।

(ख) अहिंसा और विश्व-शान्तिकी भावना का प्रसार करना।

२ इस लक्ष्य की पूर्तिके साधन-स्वरूप मनुष्य को अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहका व्रती बनाना।

३ अणुव्रतोंको ग्रहण करनेवाला अणुव्रती कहलाएगा।

४ जीवन-शुद्धिमें विश्वास रखनेवाले किसी भी धर्म वर्ग, जाति वर्ण और राष्ट्रके स्त्री-पुरुष अणुव्रती हो सकेंगे।

५ अणुव्रती तीन श्रेणियोंमें विभक्त होंगे।

(क) सब व्रतों को स्वीकार करनेवाला अणुव्रती।

(ख) इसके साथ-साथ विशेष व्रतोंको (जो परिशिष्ट संख्या १ में बतलाए गए हैं) स्वीकार करनेवाला 'विशिष्ट अणुव्रती'। [परिशिष्ट के लिये अणुव्रत नियमावली देखें]

(ग) कम-से कम ११ व्रतों को (जो परिशिष्ट संख्या २ में बतलाए गए हैं) स्वीकार करनेवाला प्रवेशक अणुव्रती कहलाएगा।

६ व्रत भंग होने पर अणुव्रती को प्रायश्चित करना होगा।

७ व्रत-पालनकी दिशामें अणुव्रतियो का मार्ग-दर्शन प्रवर्तक करेंगे

श्री मूलचन्द खेमचन्द सेठिया गंगाशहर बीकानेर द्वारा प्रसारित।

आपके 'अणुव्रत' के सम्बन्ध में

जरूरी जानकारी

●

१. प्रकाशन का समय-महीने की १ और १५ तारीख है, पर ५ और २० तारीख तक भी न पहुचे, तो समझिये कि आपका अङ्क कोई दूसरे सज्जन पढ रहे है और डाकघर से पूछताछ करके कार्यालय को तुरन्त कार्ड लिखिये।

२ वर्षभर का मूल्य (विशेषाक सहित) ६) रुपये और एक प्रति का चार आने है। सार्वजनिक वाचनालयों के लिये रियायती वार्षिक मूल्य ४) है।

३ पढने के उपरान्त यदि पसन्द न आये तो वर्षभर की फाइल लौटा दें। ५० नये पैसे डाक-व्यय काटकर शेष रकम सहर्ष वापस कर दी जायेगी।

४ 'अणुव्रत' की प्रतिया कार्यालय मे नहीं बचती अत नमूना मगाने के पहले अपने यहाँ के वाचनालय मे अथवा स्थानीय एजेन्ट के यहाँ देख लें। यदि इन स्थानो पर न मिले तो हमे वाचनालय या एजेन्ट का नाम लिखें। प्रतिया रहने पर आपके लिये हम नमूना अवश्य भेजेंगे।

५ ग्राहकों को वार्षिक चन्दा समाप्त होने की सूचना १५ दिन पूर्व दे दी जाती है। अतएव निश्चित समय पर मनिआर्डर से चन्दा भेज दे। वी० पी० से भेजने पर व्यर्थ का विलम्ब व व्यय होगा।

—व्यवस्थापक

आवश्यक सूचना

सुजानगढ (राजस्थान) मे होनेवाले आठवे अणुव्रत अधिवेशन' में भाग लेने के लिये कई कार्यकर्त्ता वहाँ गये हुए हैं। इस कार्यक्रम की व्यस्तता के कारण 'अणुव्रत' का आगामी अङ्क १ नवम्बर को न निकलकर सम्मिलित रूप से (दूसरा व तीसरा अक) १५ नवम्बर को प्रकाशित होगा। इस अक में अधिवेशन सम्बन्धी विस्तृत समाचार, भाषण व चित्रादि का भी पूरासमावेश रहेगा।

अणुव्रत कहानी प्रतियोगिता

प्रथम पुरस्कार ७) द्वितीय पुरस्कार ४०) तृतीय पुरस्कार ३)

इनके अतिरिक्त अन्य पांच विशेष पुरस्कार

आज जबकि खोखले वादों और भाषणों और सिद्धान्तों के सर्वगत पिष्ट-पोषण ने व्यक्ति की कल्याणकारी एवं सृजनात्मक शक्ति को कुंठित-सा किया हुआ है तब नैतिक धरातल पर व्यक्ति व समाज में रचनात्मक दृष्टिकोण के निर्माण की भूख पैदा करने की परमावश्यकता है। इस विचार क्रान्ति को साकार रूप देना ही 'अणुव्रत कहानी प्रतियोगिता' का प्रयोजन है।

● प्रतियोगिता सम्बन्धी सूचनाएं ●

१ उपरोक्त उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए कहानी का कोई भी विषय हो सकता है परन्तु शैली (टैक्नीक) की नवीनता और भाषा की सरलता के साथ ही उसमें आज स्फूर्ति एवं सजग प्रेरणा निश्चित रूपसे अपेक्षित है।

२ प्रतियोगिता के लिये भेजी जानेवाली कहानी के लिफाफे पर 'अणुव्रत कहानी प्रतियोगिता के लिये' शब्द स्पष्ट लिखे रहने चाहियें।

३ कहानी साधारणतः १५   शब्दों से अधिक न हो और पृष्ठ के एक ओर सुस्पष्ट लिखी या टाइप की हुई हो।

४ कहानी की प्राप्ति-सूचना तुरन्त भेज दी जायगी और निर्णय यथा समय 'अणुव्रत' के माध्यम से घोषित कर दिया जायगा। इस बारे में कोई पत्र-व्यवहार करने की आवश्यकता नहीं।

५ निर्णायक समिति का निर्णय अन्तिम और सर्वमान्य होगा।

६ एक नाम से केवल एक ही कहानी भेजी जा सकती है। कहानी सर्वथा मौलिक और अप्रकाशित होनी चाहिए।

७ पुरस्कृत कहानियों पर सर्वाधिकार 'अणुव्रत' के होंगे।

८ कहानी के अन्त में प्रतियोगी का नाम और पूरा पता अवश्य लिखा होना चाहिये।

९ पुरस्कृत कहानियों के अतिरिक्त अन्य श्रेष्ठ कहानियां भी 'अणुव्रत' में प्रकाशित की जायगी परन्तु अपुरस्कृत तथा अप्रकाशित कहानियां न तो लौटाई जा सकेंगी और न उनके सम्बन्ध में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार किया जा सकेगा।

१ कहानी आगामी दिसम्बर माह के अन्त तक कार्यालय में पहुँच जानी चाहिये। निश्चित तिथि की घोषणा 'अणुव्रत' के आगामी अंकों में प्रकाशित की जायगी।

सम्पादक—'अणुव्रत' पाक्षिक, कलकत्ता १

अणुव्रत

कहाँ क्या पढ़ें ?

विषय — लेखक

विषय	लेखक

राष्ट्र-निर्माण और धर्म

धर्म उत्कृष्ट मगल है। यह आत्म-शुद्धि का माग है। जन-निर्माण का साधन है। वह राष्ट्र-निर्माण में कहा तक सहायक हो सकता है—आज हमें इस पर सोचना है। जैसाकि आज बहुत से लोग समझने लगे हैं, क्या राष्ट्र-निर्माण का अर्थ है—एक राष्ट्र अपनी सीमाओ को दूर-दूर तक बढ़ाता हुआ उन्हें असीम बनाले? अन्यान्य शक्तियो और राष्ट्रो को कुचलकर उन पर अपनी शक्ति का सिक्का जमाले? दूसरे राष्ट्रा को अपने अधिकृत करले? नये-नये विध्वसक शस्त्रा द्वारा दुनिया में अशान्ति और तबाही मचा दे? म कहूगा —यह राष्ट्र निमाण नहीं, उसका विध्वस है, विनाश है। इसमें धर्म कभी भी सहायक नहीं हो सकता। धर्म राष्ट्र के बाह्य कलेवर का नहीं, आत्मा का परिशोधक है। वह राष्ट्र में फैली बुराइयों को जन-जन के हृदय-परिवर्तन के सहारे मिटाता है। धर्म से मेरा अभिप्राय किसी सम्प्रदाय विशेप से न होकर अहिसा, सत्य, शौच, आचार, सेवा और उपकार

मालूम नहीं ?

दिशाए गूंज रही है !

समय चुनौती दे रहा है !!

और युग हमें ललकार रहा है !!!

कलह की कालिमा से कुलषित, ईर्ष्या व द्वेष की अग्नि मे झुलसी, अकर्मण्यता के रोग से ग्रसित, शोक व असन्तोष के सागर में डूबी हमारे परिवारो की आत्माएँ चीत्कार कर रही हैं !

अन्ध-विश्वास, जड़ परम्पराओं और रूढ़ियों के बोझ से दबा, आपाधापी की दुर्गन्ध से युक्त, चरित्रहीनता एव अनैतिकता में सिमटा, गरीबी व बेरोजगारी से ग्रसित समाज, स्वार्थ एव वैमनस्य के धूमिल वातावरण में घुट घुट कर सांस ले रहा है !

विश्व के रगमच पर राजनैतिक पडो के तथाकथित शान्ति-प्रयासो की आड़ में होनेवाली सर्वनाश की महालीला और 'मुह में राम बगल में छुरी' की तरह अहिंसा और विश्व-शान्ति का गला फाड़ फाड़कर नारा लगाते हुए अणु-अस्त्रों के द्वारा जीवित मानवता की समाधि बनाने का दुस्साहस देखकर जगती का कण-कण असीम वेदना से कराह रहा है।

कुछ तथाकथित धर्माचार्यों की कुत्सित वासनाओं और महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के साधन बने, पाखण्ड, आडम्बर व ढोग से जर्जरित अपने ककाल को छिपाये और भ्रष्ट 'दानवीरों' की कठपुतली बने हुए धर्म की आज खुलेआम धज्जियाँ उड़ रही हैं, उसका यह विकृत रूप देखकर आस्था डगमगा रही है।

एक ओर दिन भर कठिन परिश्रम की भट्टी में तपकर भी दयनीय अवस्था मे अपने दिन गुजारने, कभी-कभी फाके मारकर भी सन्तोष करने और दूसरी ओर निठल्ले पड़े रहकर भी भोग व ऐश्वर्यपूर्ण रगरेलियाँ मनाने की शोषण व विषमतामय स्थिति उत्पन्न

करनेवाली वर्तमान स्वार्थपूर्ण अर्थ-व्यवस्था न जाने कितने अनर्थों को जन्म दे रही है।

'केवल विरोध के लिए विरोध' की दूषित मनोवृत्ति को बल देने; अधिकार के नाम पर लड़ने पर मरने, समाज सेवा की आड़ में अपने तुच्छ स्वार्थ साधने; सम्प्रदायवाद की दृष्टि से राष्ट्र में वर्ग को फूट, वैमनस्य, अव्यवस्था, असन्तोष और अराजकता पैदा करने की प्रेरणा देनेवाली राजनीति आज 'स्वार्थ नीति' का रूप लेती जा रही है।

इस प्रकार जिधर भी देखें एक ही तड़पन, एक ही टूक और एक ही वेदनापूर्ण आवाज सुनाई पड़ती है—गिरते हुए मानवीय मूल्यों की रक्षा हो, सिमटते हुए जीवन का विकास हो, निराशा के अन्धकार में आशा की जोत जगे, कसमसाते करुणा को प्रश्रय मिले और चारों ओर सुजन की स्वाभाविक सुवासित हो।

उत्थान-पतन के कगार पर खड़ा आज का डांवाडोल समाज नैतिक धरातल पर नये निर्माण की मांग कर रहा है। जीवन से हारा, हीनता में डूबा, संघर्ष से थका, अतृप्त कामनाओं का शिकार मानव निर्माण की दिशा में नये मूल्यों की स्थापना की अपेक्षा कर रहा है।

यह हमारे, हमारे समाज, हमारे राष्ट्र और सम्पूर्ण विश्व की परीक्षा का समय है अपने को तोलकर कुछ कर-गुजरने को देखने का और है कर्तव्य की कठोर वेदी पर स्वयं को होमकर अपनी निष्ठा का परिचय देने का स्वर्ण अवसर।

क्या हममें यह पथ चलने का बल है?

युग की मर्मभेदी पुकार सुनने की शक्ति है?

समय की चुनौती का उत्तर देने की हिम्मत है?

'निर्माण अंक' इसी सामर्थ्य को जाग्रत करने की ओर एक छोटा-सा किन्तु आशापूर्ण कदम है। जन-मानस में नैतिक आस्था और सबल प्रेरणा प्रज्वलित करनेवाली एक छोटी-सी मशाल है।

अपने इस प्रयास में 'अणुव्रत' कहाँ तक सफल हुआ है, इसका निर्णय तो विज्ञ व सहृदय पाठक ही करेंगे परन्तु यह 'अंक' यदि जन-मन विशेषतया छात्र केवल सोचने की ही नहीं, अपितु कुछ करने की भी प्रेरणा दे सका तो सचमुच हम अपने परिश्रम को सार्थक समझेंगे।

—सम्पादक

०

श्री जवाहरलाल नेहरू

देश के सामने अनेक बड़े-बड़े काम और कठिनाइयां हैं। हो सकता है कि आज के भारतीय युवकों और युवतियों को इन कठिनाइयों का तत्काल मुकाबला न करना पड़े, लेकिन भविष्य में निश्चय ही उन्हें इनसे लोहा लेना होगा। यह एक ऐसा काम है जिस पर गर्व होना चाहिये। लेकिन साथ ही यह बहुत भारी और मुश्किल काम भी है। सिर्फ वे लोग ही इसे ठीक से कर सकेंगे, जो इसे दिल से करें और काम करने का ढंग सीखे हुए हों।

सिर्फ भाषण देना और प्रस्ताव पास करना ही राजनीति नहीं है। यह तो राष्ट्र-निर्माण के महान् कार्य का एक अंग मात्र है। शायद हम समझते हैं कि राष्ट्र-निर्माण कार्य बिना किसी कठिनाई या मेहनत के ही हो जायगा, लेकिन इतिहास से जो हमें सबक मिलता है, वह दूसरा ही है। हर जन्म के साथ प्रसव पीड़ा का कष्ट भी झेलना पड़ता है। हर विकास कार्य के लिये लगातार मेहनत की जरूरत होती है। जिन कठिनाइयों का हम सामना कर रहे हैं, वे तभी उपयोगी हो सकती हैं, जब हम उनसे फायदा उठाएं, उनसे सोचना और काम करना सीखें और सबसे बड़ी बात यह कि उनसे हम एक अनुशासित राष्ट्र बनाने का सबक लें।

भारत में भेदभाव और फूट डालने वाली बहुत सी प्रवृत्तियां काम कर रही हैं और आमतौर पर लोग बड़ी-बड़ी समस्याओं को भूलकर झगड़े और विवाद के रास्ते पर पड़ जाते हैं। जमाना बड़ा मुश्किल का है और हमें कमजोर नहीं रहना चाहिये और न व्यर्थ की आलोचना में अपनी शक्ति गंवानी चाहिये। हां, स्वस्थ आलोचना की हमेशा जरूरत है।

हमें समझना है कि जमाना किधर जा रहा है। जमाने की पुकार हमें सुननी है। पुकार यह है कि हमें अपने देश को बनाना है। आजादी हासिल करने के बाद हमारे सामने सबसे बड़ा सवाल यही है कि हम देश की गरीबी को निकालकर उसको

एक समृद्धशाली देश बनायें और उसकी जो सदी-जमी फौलादी आज़ादी मिली हुई है उसे उठायें। सबसे बड़ा सवाल आर्थिक है। चाहे हम भारत को ज़मीन और पैदावार से करें चाहे कारखानों और विज्ञान धंधों की तरफ से बढ़ें हमें देश को दौलतमन्द बनाना है। दूसरी जगह से भीख माँगकर ताकत नहीं आती है। अपनी मेहनत के बल पर, अपनी ज़मीन से, अपने कारखाने से दौलत हासिल की जा सकती है। इस तरह से देश अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है।

आम आदमी की हैसियत ऊँची हो और वह खुशहाल हो। इस तरह से हमें अपने देश को बनाना है और सभी से बनाना है। अगर हम अपनी ताकत को नहीं बढ़ायेंगे तो बिगड़ जायगा।

भविष्य हमें बुला रहा है। हम कहाँ जायेंगे और हमारी क्या कोशिश होगी? हमारी कोशिश होगी आम आदमियों को, भारत के किसानों और मजदूरों को आज़ादी और मौके दिलाना, गरीबी, अज्ञान और रोग से लड़कर उनका अन्त करना, एक समृद्धशाली जनतंत्रात्मक और बढ़ते हुए राष्ट्र का बनाना और ऐसे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओं की रचना करना, जिनसे कि हरएक मर्द और औरत को इन्साफ मिले और उसकी ज़िन्दगी भरी-पूरी हो। हमारे सामने कठिन काम करने को है। जबतक हम अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करते, जबतक हम भारत के सभी लोगों को वैसा नहीं बना देते जैसा कि तकदीर ने तय किया है, तब तक हममें से किसी को भी दम लेने का हक नहीं है। हम एक ऐसे महान् देश के नागरिक हैं जो तरक्की के रास्ते पर है और हमें ऊँचे आदर्श के हिसाब से अपनी ज़िन्दगी बनानी है। हम सभी चाहे किसी मत के हों, भारत की सन्तानें हैं और हमारे हक और ज़िम्मेदारियाँ बराबर बराबर हैं।

भारत की सेवा का मतलब करोड़ों दुखियों की सेवा है। इसका मतलब गरीबी का खात्मा करना है। हमारी पीढ़ी के सबसे बड़े आदमी की यह ख्वाहिश रही है कि हर एक आँख का हर एक आँसू पोंछ दिया जाये। ऐसा करना हमारी ताकत से

(शेषांश पृष्ठ २९ पर)

मत बोओ !

यदि फूल नहीं बो सकते तो काटे कम-से-कम मत बोओ !

है अगम चेतना की घाटी, कमजोर बडा मानव का मन
ममता की शीतल छाया में, होता कटुता का स्वय शमन
बाधाए गलकर रह जातीं, खुल-खुल जाते हैं मुंदे नयन
होकर निर्मलता में प्रमत्त बहता प्राणो का क्षुब्ध पवन
सकटमे यदि मुस्का न सको, भयसे कातर हो मत रोओ,
यदि फूल नहीं बो सकते तो काटे कम-से-कम मत बोओ !

हर सपने पर विश्वास करो, लो लगा चाँदनी का चन्दन
मत याद करो मत सोचो ज्वाला में कैसे बीता जीवन
इस दुनिया की है रीत यही, सहता है तन, बहता है मन
दु ख की अभिमानी मदिरा में जो जाग सके वह है चेतन
तुम इसमे जाग नहीं सकते तो सेज बिछाकर मत सोओ,
यदि फूल नहीं बो सकते तो काटे कम-से-कम मत बोओ !

पग-पग पर शोर मचाने से मन में सकल्प नहीं जमता
अनसुना अचीन्हा करने से सकट का वेग नहीं कमता
सशय के किसी कुहासे में विश्वास नहीं पल भर रमता
बादल के घेरे मे भी तो जयघोष न मारुत का थमता
यदि विश्वासों पर बढ न सको, सासोंके मुरदे मत ढोओ,
यदि फूल नहीं बो सकते तो काटे कम-से-कम मत बोओ !

श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

डा० रामानन्द तिवारी शास्त्री, एम० ए० डी० फिल०

क्रान्ति के इस युग में जहाँ एक ओर विध्वंस के अणु-बमों का विस्फोट आकाश को विदीर्ण कर रहा है वहाँ दूसरी ओर सभी देश निर्माण और विकास की योजनाओं में तत्पर हो रहे हैं। एक ओर बड़ी-बड़ी कृषि, उद्योग आदि के विकास की योजनाओं से भौतिक साधनों की समृद्धि हो रही है, दूसरी ओर युद्ध, भय आतंक, अशान्ति अनीति आदि के ममस्पर्शों से जर्जर होकर मनुष्य का मन क्षीण हो रहा है। बाह्य और भौतिक अर्थों की प्रगति हो रही है, दूसरी ओर मनुष्य के आध्यात्मिक और नैतिक व्यक्तित्व की अधोगति हो रही है। सांस्कृतिक शिष्टाचार के अवसरों पर एक ओर मानवता की दुहाई दी जाती है, दूसरी ओर राजनीति के रण-क्षेत्र में कीटाणुओं की भांति मनुष्यों का संहार किया जाता है। ऐसे विरोधाभास पूर्ण व्यवहार ही आधुनिक युग की व्यापमयी विडम्बना है।

विध्वंस और निर्माण के इस विरोध में भारत का पक्ष निर्माण की ओर है। भारत का दृष्टिकोण सदा से रचनात्मक रहा है। इतिहास इसका साक्षी है कि भारत ने कभी भी ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों को प्रेरणा नहीं दी। इसके विपरीत अत्यन्त प्राचीन काल से भारत ने जिन सृजनात्मक स्रोतों का प्रवाह किया वे युग-युग से पृथिवी की उर्वर भूमि में संस्कृति के कल्प-वृक्षों का पोषण कर रहे हैं। अस्त्र शस्त्रों की होड़ को छोड़कर आज भी भारत ने अपना वही सनातन रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाया है। स्वतन्त्रता की भूमिका में भारत का यह दृष्टिकोण अपने लिये कल्याणकारी तथा विश्व के लिये सौहार्द पूर्ण है।

किन्तु नवीन भारत का यह रचनात्मक दृष्टिकोण बहिर्मुख तथा अपूर्ण है। पश्चिमी देशों की भौतिक समृद्धि से चकित तथा अपनी हीनता से खिन्न होकर भारत ने औद्योगीकरण तथा आर्थिक समृद्धि की योजनाओं का विस्तार इतनी व्यग्रता के साथ किया है कि यह आशंका हो सकती है कि इस विकास और समृद्धि का प्रयोजन ही नष्ट न हो जाय। हमारी सारी शक्ति और सारा ध्यान इन बाहरी निर्माणों में ही लग जाने के कारण मानव-जीवन के

आन्तरिक निर्माण की उपेक्षा होती है। जहाँ एक ओर नदी के नए बाँधों का उद्घाटन हो रहा है और नए कारखाने खुल रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर सदियों की दासता से पीड़ित भारतीय नागरिक का मन अनेक आन्तरिक यातनाओं से क्षुब्ध हो रहा है।

यह स्पष्ट है कि केवल बाहरी निर्माण में ही अपनी सारी शक्ति लगाकर भारत अपना भी कल्याण नहीं कर सकता फिर विश्व के कल्याण में सहयोग देने का तो प्रश्न ही दूर है। भौतिक और आर्थिक समृद्धि मानवीय कल्याण के साधन अवश्य हैं, किन्तु सर्वस्व नहीं हैं। कल्याण मनुष्य के जीवन का एक समग्र सांस्कृतिक विधान है। आर्थिक पर्याप्ति तो इसकी उपयोगी भूमिका है, किन्तु समृद्धि और प्रचुरता इसके लिये आवश्यक नहीं है। एक दृष्टिकोण यह भी हो सकता है कि आर्थिक समृद्धि विलास-वृत्ति को प्रोत्साहन देती है। अतः वह सांस्कृतिक कल्याण की समग्र साधना में सहायक होने की अपेक्षा बाधक अधिक है। यह सम्भव है कि समृद्धि की अपेक्षा सन्तोष का परिमित दृष्टिकोण सांस्कृतिक-कल्याण के लिये अधिक हितकर हो। प्राकृतिक वासनाओं और परिग्रह को उत्तेजना देकर कल्याण की आशा नहीं की जा सकती। सन्तोष और संयम का आधार ही कल्याण-साधना की भूमिका है।
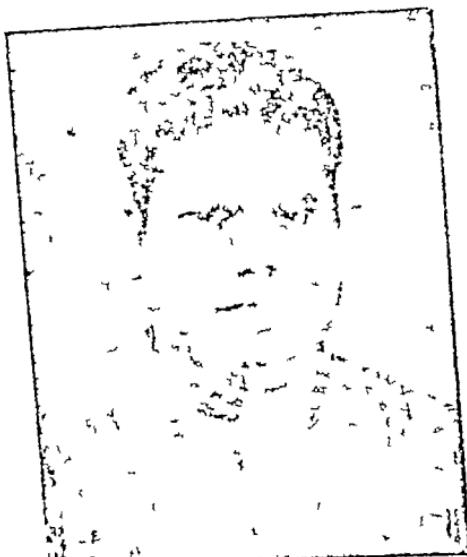
निर्माण के इस बहिर्मुखी दृष्टिकोण में दो मुख्य भूलें हैं। एक तो यह कि पश्चिम की व्यापारिक और वैज्ञानिक सभ्यता के प्रभाव में यह अर्थ को ही परमार्थ के रूप में प्रस्तुत कर रहा है, जो केवल जीवन का साधन है, वह साध्य के समान बन रहा है। दूसरी भूल यह है कि सांस्कृतिक जीवन के अन्य साध्य उपेक्षित हो रहे हैं। वस्तुतः यह मानव की ही उपेक्षा है, क्योंकि इन्हीं साध्यों की साधना में मानव-जीवन की सार्थकता है। यह साध्य मनुष्य के नैतिक और सांस्कृतिक मूल्य हैं। यही मूल्य मनुष्य के आन्तरिक व्यक्तित्व की विभूति हैं। यह विभूति

बाह्य निर्माण के मन्दिरों की रचना है। इसके बिना यह समस्त निर्माण रचना शून्य मन्दिर के समान तथा आत्मा शून्य देह के समान है।

निर्माण जीवन की स्वाभाविक वृत्ति है। रचना के क्षणों में ही मानव-चेतना की समृद्धि साकार होती है किन्तु निर्माण की कल्पना बहुत व्यापक है। बाह्य-निर्माण और आर्थिक समृद्धि इसके आरम्भ और आधारमात्र हैं। सामाजिक सद्भाव, नैतिक शील, सांस्कृतिक सौन्दर्य, व आत्मिक विभूति आदि इस निर्माण के अन्य पक्ष हैं। इन पक्षों का विकास होने पर ही जीवन का सत्य और साध्य रूप स्फुटित होता है। भौतिक और आर्थिक निर्माण भी इसी विकास में सार्थक होते हैं। इसके सम्बन्ध में एक सीधा-सादा सा प्रश्न यह है कि ये किसके लिये हैं? इस प्रश्न का सीधा-सा उत्तर यह है कि मनुष्य के लिये।

यदि बाह्य-निर्माण की समस्त योजनायें मनुष्य के लिये हैं तो यह एक विचारणीय प्रश्न है कि हम इन निर्माणों के आधिक्य और व्यस्तता में कहीं मनुष्य ही को तो नहीं भूल रहे हैं। कहीं हम बाजार की धूम-धाम और [illegible] में घर को ही तो नहीं भूल रहे हैं? यह एक ऐसी भयंकर भूल है जो हमारे समस्त निर्माणों को निष्फल बना देगी। इस भूल के कारण हमारे बाह्य-निर्माणों की सफलता भी असफलता बन सकती है। जितना अधिक विकास होगा उतना ही इस भूल का संशोधन कठिनतर होता जायगा। यदि बाह्य-निर्माणों के विकास के साथ-साथ मनुष्य का आन्तरिक व्यक्तित्व विलीन होता जायगा तो अन्ततः इन निर्माणों के रहते मानवता की समाधि बन जायेगी।

यह स्पष्ट है कि इस प्रकार पंचवर्षीय और अन्य निर्माण की योजनायें निर्माण के बड़े रूप में संचालित होते हुये भी अन्ततः विध्वंस के असुर की ही सहयोगिनी बनेंगी। अतः इन बाह्य-निर्माणों को सफल बनाने के लिये इसके साथ ही-साथ मनुष्य के आन्तरिक व्यक्तित्व के निर्माण की योजनाओं का और भी अधिक तत्परता के साथ संचालन आवश्यक है। सूक्ष्म और आन्तरिक होने के कारण यह निर्माण कठिनतर है। अतः इसके लिये बाह्य निर्माण से भी अधिक अध्यवसाय अपेक्षित है। इस निर्माण में सभी का सहयोग आवश्यक है। सरकार, जनता, नेता, विद्वान्, व्यापारी आदि सभी के सद्भावपूर्ण सहयोग से ही मानव के निर्माण की योजनायें सफल हो सकती हैं। एक बार फिर सामाजिक सद्भाव, नैतिक शील, सांस्कृतिक सौन्दर्य और आध्यात्मिक विभूति

सम्पन्न मानवता की प्रतिष्ठा करके ही भारतवर्ष विध्वंस के कगार पर बैठे हुये विश्व को शान्ति और कल्याण का सन्देश दे सकता है।

यह आन्तरिक निर्माण मनुष्य का निर्माण है। मनुष्य के निर्माण के बिना समस्त बाह्य निर्माण निष्फल हैं। मनुष्य का निर्माण ही समस्त बाह्य-निर्माणों को सार्थकता प्रदान कर सकता है। यही विध्वंस की आँधियों को भी शान्त कर सकता है। वस्तुत इसी निर्माण की प्रगति मन्द रहने के कारण आज विश्व के सामने सर्वनाश की स्थितियां उपस्थित हुई हैं। बाह्य निर्माणों की आसुरी गति ही आज विनाश की ज्वाला बनकर धधक उठी है। इस दौड़ मे पिछड़कर आज मानवता अपने अस्तित्व की भिक्षा मांग रही है।

मनुष्य का आन्तरिक निर्माण ही मानवता को इस भय और दीनता की अवस्था में उठाकर आत्म-विश्वास और आत्म-गौरव के पद पर बिठा सकता है। मनुष्य का यह आन्तरिक निर्माण एक अत्यन्त समृद्ध कल्पना है। वह मनुष्य के व्यक्तित्व की दिशाओं और उसकी चेतना की आकांक्षाओं के समान ही व्यापक है, किन्तु मनुष्यता का विकास आन्तरिक निर्माण की व्यापक कल्पना का मर्म है। समता मनुष्यता का मर्म है। श्वान और श्वपच तथा ब्राह्मण, गौ और हाथी को सम दृष्टि से देखना ही समत्व नहीं है। वास्तविक समता सबको अपने समान मानना है। सबको अपने ही समान देह, प्राण, बुद्धि, मन और आत्मा से युक्त तथा अपने ही समान सुख-दु ख की समवेदनाओं से युक्त और गौरव, स्वतन्त्रता आदि की आकाक्षाओं से प्रेरित मानना ही वास्तविक समभाव है। अपनी इस मान्यता को हृदय से आदर देना ही मनुष्यता है।

यह समभाव मनुष्य-मनुष्य का ही सम्बन्ध नहीं है। एक समाज का दूसरे समाज के प्रति तथा एक देश का दूसर देश के प्रति सम्बन्ध भी इसी समभाव से युक्त होकर मनुष्यतापूर्ण हो सकता है। मनुष्यता के इसी मूलभाव का तिरस्कार ही हमारे समस्त इतिहास में युद्ध, अनीति और अशान्ति का कारण बन रहा है। आज भी इसी की उपेक्षा राजनीतिक सघर्षों और युद्ध की आशंकाओं का मूल कारण है। मनुष्यता का विकास ही मनुष्य जाति को इन विभीषिकाओं से बचाकर कल्याण और शांति के मार्ग में प्रेरित कर सकता है। वस्तुत मनुष्यता ही शान्तिमयी संस्कृति का मूल मन्त्र है। समता उसका बीज है।

व्यक्ति और समाज में मनुष्यता और समता की प्रतिष्ठा का मार्ग शिक्षा और

साधना है। शिक्षा पुस्तकों का अध्ययन अथवा ज्ञान का उपार्जन नहीं, वरन् मानवीय चेतना का उद्बोधन है। चेतना में उज्ज्वल आलोक का *विस्तार*, सरस भावना का प्रवाह, सुन्दर कल्पनाओं की स्फूर्ति और उदात्त चरित्र की प्रेरणा इस उद्बोधन की चार दिशायें हैं। ज्ञान की गम्भीरता भावना को बल देती है और उसकी उज्ज्वलता चरित्र को दृढ़ प्रदान करती है। भावना की सरसता ज्ञान की किरणों में माधुर्य के कमल खिलाती है। इनसे संचालित होकर सौन्दर्य श्रेयोमय बनता है और चरित्र सौन्दर्य-कमल के समान खिल उठता है। इसके रस, राग और आलोक की त्रिवेणी के संगम पर ही संस्कृति के अक्षय वट की प्रतिष्ठा होती है।

आध्यात्मिक तत्त्व-बोध ज्ञान की परिणति है। प्रमुख भारतीय दर्शनों के अनुसार आत्मा ही परम तत्त्व है। आत्मा चेतन और विभु है। आत्मा की विभुता मनुष्यों के सचेतन तादात्म्य भाव का दार्शनिक सिद्धान्त है। इस तादात्म्य में ही मनुष्यता का समभाव फलित होता है। इसीलिये *उपनिषदों* में इस एकात्म-भाव को शान्त और शिव माना गया है। वस्तुतः यही शान्ति और मंगल का मूल मंत्र है। व्यावहारिक उपयोग के लिये जीवन और प्रकृति के बाह्य तत्त्वों का ज्ञान भी शिक्षा का अंग है, किन्तु आत्म-तत्त्व का सम्यक् बोध शिक्षा की आत्मा है। इससे रहित होकर ही शिक्षा अपने लक्ष्य से भ्रष्ट हो गई और आज *शिक्षित* समाज अशिक्षित आदिम जातियों से भी अधिक विध्वंसकारी बर्बरता की ओर बढ़ रहा है।

साधना-जीवन में शिक्षा की निष्ठा का निर्माण और व्यवहार में उसका आचरण है। आत्म भाव का बोध संयम से ही एक साधना है। इसके समान उसका आलोक तप से ही उदित होता है और तप से उदित होने के कारण सहज ही लोक की मंगल-कामना बन जाता है। साधना की भूमि में ज्ञान का तेज तप से प्रदीप्त होकर करुणा की सरस धारा में प्रवाहित हो उठता है। इस धारा में शिक्षा का आलोक भावना के सौन्दर्य कमलों में खिल उठता है। संस्कृति के इसी राग कमल पर जीवन की श्री साकार होती है।

स्नेह, सौहार्द, सन्तोष और सद्भाव संस्कृति के राग-कमल पर अंकित इसी जीवन श्री के वरदान हैं। इन्हीं वरदानों से जीवन का सौन्दर्य कला और साहित्य के अनेक रूप-कुसुमों में साकार होता है। भाषा, संगीत और पर्वों के माध्यम से मानवता के इन मंगलमय भावों की विभूति समाज की गौरवमयी परम्परा बनती है। प्रकाश के वाहकों में यही परम्परा एक

आशा की किरण है। भेद और संघर्ष की आंधियों में यही परम्परा शांति की कल्पना का वर्षा-बिन्दु है। इसी परम्परा के सूक्ष्म और दीर्घ सूत्र भाषा, धर्म और सभ्यता की विभिन्नताओं में भी विश्व-बंधुत्व के दृढ़ बन्धन हैं। कला, संगीत और साहित्य के स्वरों में पुकारती हुई मानव-आत्मा की मर्म-वाणी ही मनुष्य को सदा शांति और मंगल का आशीर्वचन रही है। अणु-बमों के विस्फोट भी मानवता के इस अन्तर्नाद को अपने भीषण कोलाहल में दबा नहीं सकते।

ज्ञान, भावना, स्नेह, सौहार्द, सहयोग, सद्भाव आदि की समन्वित विभूति से मानवीय चरित्र का निर्माण होता है। एक ओर यह चरित्र कठिन व्यक्तिगत साधना का फल है, दूसरी ओर यह चरित्र स्नेह, सौहार्द और सहयोग के सामाजिक व्यवहार का सम्बल है। चरित्र के विकास में ही शिक्षा और साधना की परिणति तथा प्रगति है। मनुष्य के चरित्र में मनुष्यता मूर्त और चरितार्थ होती है। चरित्र के शील और व्यवहार में ही समता सार्थक होती है। विद्या चरित्र का आलोक है और भावना उसकी प्रेरणा है। चरित्र मानवीय संस्कृति का शील और व्यवहार है। इसीमें ज्ञान की परिणति और भावना की पूर्ति है। इसीमें तप और साधना की सफलता है। मनुष्य के चरित्र में मानवता आचार के स्वरों में मुखरित हो उठती है।

'आपके चरण-चिन्हों की छाया में संसार जन्म लेगा'

—सेन्ट जैन पर्सी

आध्यात्मिक शिक्षा और साधना के सहयोग से इसी मानवीय चरित्र का निर्माण आज अपेक्षित है। इसी चरित्र की दृढ़ भूमि पर मनुष्यता का प्रासाद खड़ा हो सकता है। यही चरित्र उद्बुद्ध होकर मनुष्यता को बल दे सकता है। समता और शान्ति की शुभ्र ध्वजा इसी चरित्र के कैलाश शिखर पर फहराकर मनुष्य समाज के आतंकित हृदय को आश्वासित कर सकती है। इसी चरित्र के हिमालय से प्रवाहित होकर स्नेह, सौहार्द और सद्भाव की गंगा, सिन्धु और सरस्वती विस्फोटों से विदग्ध विश्व को शीतलता प्रदान कर शांति की क्यारियों का सिंचन कर सकती है। पश्चिमी देशों की भौतिक समृद्धि से चकित होकर बाह्य निर्माणों में व्यग्रता से तत्पर भारत अपनी संस्कृति के इस प्राचीन रहस्य को अपनाकर प्राचीन युग की भांति आज भी शांति और कल्याण का अग्रदूत बन सकता है।

साधना है। शिक्षा पुस्तकों का अध्ययन अथवा ज्ञान का उपार्जन नहीं वरन् मानवीय चेतना का उद्दीपन है। चेतना में उज्ज्वल आलोक का विस्तार, परम भावना का प्रसार, सुन्दर कल्पनाओं की स्फूर्ति और उदात्त चरित्र की प्रेरणा इस उद्बोधन की चार दिशायें हैं। ज्ञान की गम्भीरता भावना को बल देती है और उसकी उज्ज्वलता चरित्र को तेज प्रदान करती है। भावना की तरलता ज्ञान की किरणों में माधुर्य के कमल खिलाती है। इनसे संचालित होकर सौन्दर्य मेघोपम बनता है और चरित्र सौन्दर्य-कमल के समान खिल उठता है। इनके रस, राग और आलोक की त्रिवेणी के संगम पर ही संस्कृति के अक्षय वट की प्रतिष्ठा होती है।

आध्यात्मिक तत्त्व-बोध ज्ञान की परिणति है। प्रमुख भारतीय दर्शनों के अनुसार आत्मा ही परम सत्य है। आत्मा चेतन और विभु है। आत्मा की विभुता मनुष्यों के सर्वत्र तादात्म्य-भाव का दार्शनिक सिद्धान्त है। इस तादात्म्य में ही मनुष्यता का समाधान फलित होता है। इसीलिये उपनिषदों में इस एकात्म-भाव को शान्त और शिव माना गया है। वस्तुतः यही शान्ति और मंगल का मूल है। व्यावहारिक उपयोग के लिये और प्रकृति के बाह्य तत्त्वों का ज्ञान भी शिक्षा का अंग है, किन्तु आत्म का सम्यक् बोध शिक्षा की आत्मा है। इससे रहित होकर ही शिक्षा अपने स्व- भ्रष्ट हो गई और आज शिक्षित जन अशिक्षित आदिम जातियों से भी अधिक विध्वंसकारी बर्बरता की ओर जा रहे हैं।

भावना जीवन में शिक्षा की निष्ठा का निर्माण और व्यवहार में उसका आचरण है। आत्म भाव का बोध स्वयं से ही एक भावना है। इसमें पहले उसका आलोक तप से ही उदित होता है और तप से उदित होने के कारण यह ही लोक की मंगल-कामना बन जाता है। भावना की परिधि में ज्ञान का तेज तप से दीप्त होकर सहृदयता की परम धारा में प्रवाहित हो उठता है। इस धारा में विद्या का आलोक भावना के सौन्दर्य कमलों में खिल उठता है। संस्कृति के इसी राज-कमल पर जीवन की श्री साकार होती है।

स्नेह, सौहार्द, सहयोग और सद्भाव संस्कृति के राजकमल पर उदित इसी जीवन-श्री के वरदान हैं। इन्हीं वरदानों से जीवन का सौन्दर्य कला और साहित्य के अनेक रूप-कुसुमों में साकार होता है। भाषा, संगीत और वर्णों के माध्यम से मानवता के इन मंगलमय भावों की विभूति समाज की गौरवमयी परम्परा बनती है। समाज के व्यक्तियों में यही परम्परा एक

ाशा' की किरण है। भेद और संघर्ष की आंधियों में यही परम्परा शांति की कल्पना का वर्षा-विन्दु है। इसी परम्परा के सूक्ष्म और दीर्घ सूत्र मापा, धर्म और सभ्यता की विभिन्नताओं में भी विश्व-बंधुत्व के दृढ़ बन्धन हैं। कला, संगीत और साहित्य के स्वरों में पुकारती हुई मानव-आत्मा की मर्म-वाणी ही मनुष्य को सदा शांति और मंगल का आशीर्वचन रही है। अणु बमों के विस्फोट भी मानवता के इस अन्तर्नाद को अपने भीषण कोलाहल में दबा नहीं सकते।

ज्ञान, भावना, स्नेह, सौहार्द, सहयोग, ाद्भाव आदि की समन्वित विभूति से ानवीय चरित्र का निर्माण होता है। एक ओर यह चरित्र कठिन व्यक्तिगत साधना का फल है, दूसरी ओर यह चरित्र स्नेह, सौहार्द और सहयोग के सामाजिक व्यवहार का सम्बल है। चरित्र के विकास में ही शिक्षा और साधना की परिणति तथा प्रगति है। मनुष्य के चरित्र में मनुष्यता मूर्त और चरितार्थ होती है। चरित्र के शील और व्यवहार में ही समता सार्थक होती है। विद्या चरित्र का आलोक है और भावना उसकी प्रेरणा है। चरित्र मानवीय संस्कृति का शील और व्यवहार है। इसीमें ज्ञान की परिणति और भावना की पूर्ति है। इसीमें

'आपके चरण-चिन्हों की छाया में संसार जन्म लेगा'

—सेन्ट जैन पर्सी

तप और साधना की सफलता है। मनुष्य के चरित्र में मानवता आचार के स्वरों में मुखरित हो उठती है।

आध्यात्मिक शिक्षा और साधना के सहयोग से इसी मानवीय चरित्र का निर्माण आज अपेक्षित है। इसी चरित्र की दृढ़ भूमि पर मनुष्यता का प्रासाद खड़ा हो सकता है। यही चरित्र उद्बुद्ध होकर मनुष्यता को बल दे सकता है। समता और शान्ति की शुभ्र ध्वजा इसी चरित्र के कैलाश शिखर पर फहराकर मनुष्य समाज के आतंकित हृदय को आश्वासित कर सकती है। इसी चरित्र के हिमालय से प्रवाहित होकर स्नेह, सौहार्द और सद्भाव की गंगा, सिन्धु और सरस्वती विस्फोटों से विदग्ध विश्व को शीतलता प्रदान कर शांति की क्यारियों का सिंचन कर सकती है। पश्चिमी देशों की भौतिक समृद्धि से चकित होकर बाह्य निर्माणों में व्यग्रता से तत्पर भारत अपनी संस्कृति के इस प्राचीन रहस्य को अपनाकर प्राचीन युग की भांति आज भी शांति और कल्याण का अग्रदूत बन सकता है।

श्री
सलीम सिनान

कल और आज

स्वर्ण का संग्रह करनेवाला वणिक अपने महल के बगीचे में चहल-कदमी करने लगा और उसके साथ साथ उसकी मुसीबतें भी चलने-फिरने लगीं। विचार उसके मस्तिष्क पर इस प्रकार मंडरा रही थीं जिस प्रकार गिद्ध अपने भोजन पर मंडराता है। वह घूमता हुआ एक सुन्दर झील के पास आया जिसके चारों ओर पत्थरों की ममतामयी मूर्तियां थीं।

वहां बैठकर वह पानी की उस धारा को देखने लगा जो पत्थर की मूर्ति के मुख से ऐसे गिर रही थी जैसे एक प्रेमी के मुख से बेरोकटोक निकल रहे हृदयोद्गार। उसे अपने महल पर जो किसी लड़की के गालों पर जन्म के निशान की तरह एक पहाड़ी पर स्थित था ध्यान आने लगा। प्रकृति की गोद में बैठकर उसे अपना पिछला जीवन नाटक की तरह दीखने लगा। और मन ही मन कहने लगा—

'कल मैं हरी-भरी उपत्यकाओं में भेड़ चराता था मेरा अस्तित्व था अपनी बांसुरी बजाना था और मस्तक ऊंचा करके चलता था; आज लालच ने मुझे कैद कर लिया है। स्वर्ण की चमक की प्राप्ति हुई फिर उसने चिन्ता संशय और भयावह शासन हुआ।

कल मैं स्वच्छन्दतापूर्वक खेतों में विचरनेवाले चहचहाते पक्षी के समान था आज मैं धन का सामाजिक कुरीतियों का लोगों के विचारों का दास हो गया हूं। मैं पैदा तो हुआ था स्वतन्त्र रहने और अपने

(पृष्ठ १४ का शेषांश)

बाहर हो सकता है लेकिन जबतक आंसू हैं और दुःख है, तबतक हमारा काम पूरा नहीं होगा।

इसलिये हमें काम करना है और मेहनत करनी है और लगकर मेहनत करनी है जिससे हमारे सपने पूरे हों। ये सपने भारत के लिये हैं लेकिन ये दुनिया के लिये भी हैं क्योंकि आज सभी देश और लोग आपस में एक दूसरे से इस तरह जुड़े हुए हैं कि कोई भी बिल्कुल अलग होकर रहने का ख्याल नहीं कर सकता।

आज देश को हर व्यक्ति की सेवा की जरूरत है। युवकों की आवश्यकता और भी अधिक है कि वे देश-सेवा के महान कार्य के लिये अपने को तैयार करें।

जीवन को सुख से गुजारने के लिये किन्तु आज अपने आपको ऐसे पशु के समान पा रहा हूँ जिसकी पीठ अत्यधिक स्वर्णभार से दबी जा रही हो।

'कहाँ हैं वे खुले मैदान! कलकल करते झरनें!! वह ताजी हवा!!! प्रकृति का वह सान्निध्य!!! मैं सबको गवा बैठा हूँ। अब मेरे पास रह गया है अकेलापन, जो मुझे उदास बनाता है, स्वर्ण, जो मुझ पर हँसता है, नौकर-चाकर, जो पीठ-पीछे मुझे कोसते हैं और एक महल, जो मेरी खुशियों की कब्र है और जिसकी महानता में अपना दिल खो बैठा हूँ।

'कल मैं बेदोइन की लड़की के साथ हरे भरे खेतों और घाटियों में घूमता था। नेकी हमारी साथिन थी, प्यार हमारी खुशी और चन्द्रमा हमारा सरक्षक था, किन्तु आज! आज तो मैं केवल बाहरी टीपटाप वाली उन औरतों के बीच हूँ जो सोने और हीरे के बदले अपने शरीरों का विक्रय करती हैं।

'कल मुझे कुछ चिन्ता न थी, चरवाहों के साथ जीवन की सभी खुशियों का आनन्द लेता था, खाता था, खेलता था, काम करता था और हृदय की सच्चाई के सगीत की तान पर नाचता था, गाता था, किन्तु आज मैं अपने आपको भेड़ियों के झुड में फसी और डरी हुई भेड़ के समान पा रहा हूँ। आज जब मैं सड़क पर निकलता हूँ, लोग मुझे घृणा की दृष्टि से देखते है, ईर्ष्या से इशारे करते हैं।

'कल मैं खुशियों के कारण धनपति था, आज मैं स्वर्ण के कारण कगाल हूँ।

'कल मैं सुखी चरवाहा था, अपनी भेड़ों की ओर इस प्रकार देखता था जैसे एक दयावान बादशाह अपनी सुखी और सन्तोषी प्रजा को देखता है, किन्तु आज मैं अपनी धन दौलत के सम्मुख दास के समान हूं, ऐसी धन-दौलत, जिसने मेरे जीवन की सुन्दरता का अपहरण कर लिया है।

'हे प्रभु! मुझे क्षमा करना! मैं नहीं जानता था कि धन-दौलत मेरे जीवन में मुसीबतें ला देगी, मुझे पागल और अन्धा बना देगी।'

फिर बड़े अनमने ढग से धनिक उठा और अपने महल की आर जाता हुआ कहने लगा,—"क्या इसी को लोग धन कहते हैं? क्या यही वह देवता है, जिसकी मैं पूजा करता हूँ? क्या दुनियां में यही है, जिसकी मुझे चाह है। धन से मैं शान्ति और आत्म-सन्तोष क्यों नहीं खरीद सकता? एक टन स्वर्ण लेकर भी क्या कोई मुझे सुन्दर विचार बेच सकता है? क्या मुट्ठी-भर हीरे मोतियों के बदले मुझे कोई सच्चे प्रेम का एक क्षण भी बेच सकता

मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। मेरा अंग अंग अपना निर्धारित काम पूर्णता से करता है। मुझमें तैयारिता का भाव पर्याप्त है। मेरा जीवन क्रियाशील है। मैं कठोर जीवन व्यतीत कर सकता हूँ। मैं शक्ति सम्पन्न हूँ। मैं पूर्ण हूँ। मैं दीर्घजीवी हूँ।

है। मेरा धन बन लेकर भी ऐसा कौन है जो मुझे दूसरों का हित दिखा सकनेवाली आंख दे सके?"

जब वह अपने महल के फाटक के समीप पहुँचा तो मुड़कर शहर की ओर देखते हुए कहने लगा — हे भोगासक्तपूर्ण नगर के वासियों! तुम अज्ञान में रहते हो, व्यर्थ दुःख पाते हो, झूठ बोलते हो और कलह दमन करते हो। आखिर कब तक तुम लोग अन्धकार में रहोगे? जीवन के सत्यों को भूलकर कब तक इसके दलदल में फंसे रहोगे? बुद्धि के दीप की लौ कांप रही है, अब आवश्यकता है इसमें तेल देने की। सच्चाई का घर गिर रहा है, अब समय है इसकी मरम्मत और रक्षा करने का। वासना के चोरों ने तुम्हारी शान्ति का खजाना लूट लिया है, अब समय है इसे वापस छीनने का।

उसी समय एक गरीब आदमी वहाँ आ खड़ा हुआ। उसने भिक्षा के लिये अपने हाथ आगे किए। धनिक ने जब उसे देखा तो उसके होंठ मुस्कराने लगे और मुख पर दया का भाव उमड़ आया। उसे ऐसा मालूम हुआ मानो स्वर्ग के किनारे वास करनेवाला देवता उसकी अभ्यर्थना करने के लिये आकर उपस्थित हुआ हो। उसने भिखारी को गले से लगा लिया, उसकी मुट्ठी स्वर्ण-मुद्राओं से भर दी और फिर बड़े प्यार से धीमे वाणी में कहा,—'कल फिर आना, अपने सब दुखी साथियों को लेकर। मैं सबको धन दूँगा।'

भिखारी के चले जाने पर धनिक अपने महल में प्रविष्ट होते हुए कहने लगा—'जीवन की प्रत्येक वस्तु अच्छी है यहाँ तक कि स्वर्ण भी। क्योंकि वह एक तालीम देता है। धन एक ऐसे-वैसे तार वालेवाले सितार के समान है जिसको यदि अच्छी तरह बजाया नहीं जाता तो इसका वादक बेसुरा और अनियमित संगीत ही सुन सकता है। धन उस प्यार के समान भी है जो धीरे धीरे किन्तु दुःख से उस व्यक्ति का नाश कर देता है जो इसका संग्रह करता है और उस व्यक्ति को अमर कर देता है जो इसे अपने साथियों में बाँट देता है।'

अनु० श्री सोहनलाल कोचर

●

राष्ट्र-निर्माण की वेला में

अपनी शक्ति को रचनात्मक मोड़ दें !

श्री उच्छङ्गराय ढेबर

अपनी समस्याओं को हल करने के योग्य होने के लिये आवश्यक है कि देश ठोस और शक्तिशाली हो। एक देश का राजनीतिक ठोसपन कई बातों पर निर्भर करता है। सर्व प्रथम आवश्यकता है देश के लोगों में एकता की। यह एकता सिर्फ राजनीतिक एकता न हो अर्थात जनता देशके सविधान में अपनी आस्था दिखाए। यह यथार्थ और वास्तविक एकता होनी चाहिये। स्वाधीनता के लिए संघर्ष की ठोस शक्ति एक दिखाई पड़नेवाली चीज है, लेकिन जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, हमारे स्वतन्त्रता-संघर्ष द्वारा हमारी वर्गीय भावना को खत्म करने से पहले ही हम आजाद हो गये। स्वतन्त्रता हमें जरा आसानी से मिल गयी। उस हद तक ठोस होने की प्रक्रिया अधूरी ही रही। जाति और साम्प्रदायिक वफादारिया तथा अन्य वर्गीय भावनाए आज भी हमें विभक्त करती हैं। हमें ठोसपन की प्रक्रिया को पूरा करना है। आजादी की प्राप्ति के बाद ऐसा करना आसान होना चाहिये, क्योंकि वे बाहरी निहित स्वार्थ, जो हमें दूर रखते रहे, अब यहा कतई नहीं हैं।

एक राष्ट्र के रूप में हममें सत्ता की अमिट भूख है। अतीत में यह भारतीय राजनीति के लिए अभिशाप रही है। हमें सत्ता को पचाना है। अपनी दलीय और वर्गीय वफादारियाँ छोड़कर हमें जीवन की अधिक व्यापक धारणा को जगह देनी पड़ेगी और सत्ता की भूख को मिशनरियों जैसे उत्साह के साथ सेवा भावना में बदलना पड़ेगा।

ये दोनों ही बातें हमारी मनोवैज्ञानिक इच्छाओं में संशोधन मांगती हैं और यह मौजूदा हालत में नहीं किया जा सकता है। जातीय वफादारी हमें केवल दलों में ही

च्छा, मानव से सहानुभूति सेवा की अन्तर्भावना आदि को विकसित करना तथा विश्व-व्यापी बनाना। यह महज सविधान के जरिये नहीं किया जा सकता है। इसके लिये सबसे महत्वपूर्ण चीज समाज शिक्षा है, अध्ययन के दज और जीवन के स्कूल, दोनों में। लेकिन यहां पर पुन हम ऐसे तरीके अख्त्यार करने की नहीं सोच रहे हैं जो दिमाग के विभाजन की दिशा में ले जायगा। हमें वैज्ञानिक ढग से समस्या को देखना पड़ेगा। कोई भी सन्देह नहीं करता है कि यह और अच्छा होगा अगर हमारे बच्चे एक आत्म-केन्द्रित समाज के पुराने मूल्यों की जगह नये सामाजिक मूल्यों को सीखें। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये हमें अपनी शिक्षा नीतियों को साधन बनाना है। हमारे समाज द्वारा यह उद्देश्य स्वीकार कर लेने पर हम ध्येय से शिक्षा को अलग नहीं कर सकते हैं, जो कि कार्य प्रणाली पर असर कर रहा है। दूसरे, सगठन द्वारा जनता को तरुणों को, स्त्रियों को और पुरुषों को, किसानों और मजदूरों को, बुद्धिजीवियों तथा अन्य वर्गों का उस कार्य के लिये शिक्षित सगठित करना है।

इसके अलावा यहां सामाजिक पदो में स्वाभाविक असमानताए हैं। वे धार्मिक विश्वासो का परिणाम हो सकती हैं जैसा कि हरिजनो मे देखने के मिलता है। वे समाज से दूर रहने के नतीजे हो सकती हैं, जैसा कि आदिम जातियों मे है, वे ऐतिहासिक कारणों का परिणाम हो सकती हैं। वे प्रशासन मे स्थान या पद का परिणाम हो सकती हैं। हमें इनमें से हरेक का अध्ययन करना पड़ेगा और सार्व-जनिक तथा सामाजिक स्थान के वे स्तर तय करने पड़ेंगे, जिनसे वर्ग या जाति, जन्म या धर्म, आर्थिक दशा या पद का ख्याल किये बिना भारत के समस्त नाग-रिकों को वह स्थान और प्रतिष्ठा मिले,

---

कि सभी क्षेत्रों में देशव्यापी निर्माण-कारी कार्यक्रम निरन्तर चलाये गये, चलाये जा रहे हैं और भविष्य में भी चलाये जायेगें। फलस्वरूप इन्सान में अविच्छिन्न सबध है। हम जो महान ख्याति विश्व में पा चुके हैं, वह सह-योग और शान्तिमयी निर्माण का ही परिणाम है। ऐसे दौर में जबकि देश में निर्माण कार्यक्रमों का जाल बिछ रहा है, यह जानकर प्रसन्नता हुई कि "अणुव्रत" का 'निर्माण-अंक' प्रकाशित हो रहा है। मुझे विश्वास है कि यह विशेषांक इस निर्माण अभियान में अपना योग-दान देगा।'

—उ० न० ढेबर

जिससे वे दब्बार हों। पुरुषों और स्त्रियों के मध्य सामाजिक समानता का आवश्यक वातावरण पैदा करने के लिये कोई कमजोर या आर्थिक मामला बीच में न आना चाहिये। हमें जनता और प्रशासन के बीच शान्ति लानी पड़ेगी ताकि प्रशासन और कर्मचारी के पद को जो बैठे जो कि सम्मान और भय के विश्वास पर आश्रित है और यह सेवा की एक संस्था बन जाय तथा प्रशासन करनेवाले और जिन पर प्रशासन किया जाता है दोनों के बीच मौजूदा मनोवैज्ञानिक संघर्ष को, [जो युग युग तक अतीत की भी देन है, कम कर दिया जाय। इन सबसे ऊपर, समाज निर्माण तथा जीवन के समान अवसर प्रदान करने के लिये हमें अधिक उत्पादन हेतु काम करना है और जब भी तथा जहां भी हमें बाधा पड़े हमें इन विघ्नों के विरुद्ध अपने नैतिक प्रभाव की आवाज बुलन्द करनी है।

●

क्या मैं इतना भी सभ्य नहीं ?

फ्रांसका राजा हेनरी चतुर्थ एक दिन परिस नगर में अपने अंग-रक्षकों तथा उच्चाधिकारियों के साथ कहीं जारहा था। मार्ग में एक भिक्षुक ने अपनी टोपी सिरसे उतारकर मस्तक झुकाकर अभिवादन किया।

हेनरी ने भी अपनी टोपी उतारकर भिक्षुक को अभिवादन किया। यह देखकर एक उच्चाधिकारी ने कहा—श्रीमान्! एक भिक्षुक को आप इस प्रकार अभिवादन करें यह क्या उचित है?

हेनरी ने सरलता से उत्तर दिया—फ्रांस का नरेश एक भिक्षुक जितना भी सभ्य नहीं, यह मैं सिद्ध नहीं करना चाहता।

●

पाठका पठितारश्च ये चान्ये शास्त्रचिन्तिका ।
सर्वे व्यसनिना मूर्खा य क्रियावान् स पण्डित ॥

पढ़ने पढ़ानेवाले और शास्त्र चिन्तन में लीन सभी लोग व्यसनी और नासमझ हैं। जो क्रियावान है, वही वास्तविक पण्डित है।

●

...ीवन का विश्वास मौत से मर न सकेगा !

मुनिश्री बुद्धमलजी

जीवन का विश्वास मौत से मर न सकेगा।

पतझर का प्रतिवर्ष आक्रमण होता आया
तरु अपनी सुषमा उसमें है खोता आया
किन्तु पल्लवित, पुष्पित और फलित फिर होना
तरु की चिर-पद्धति को कोई हर न सकेगा

जीवन का विश्वास मौत से मर न सकेगा !

मिटते है जो बीज धरा की गोद भरेंगे
शत शत रूपों में अनिवार्यतया उभरेंगे
बलिदानोंका यह इतिहास लिखा धरती पर
स्वय सत्य भी इसे अन्यथा कर न सकेगा

जीवन का विश्वास मौत से मर न सकेगा !

समझ रहे हो क्या ये सारे अस्त हो गये ?
सूर्य, सुधाकर, तारक निज अस्तित्व खो गये ?
लगा समय से होड़ सदा गति करते उनके—
अरे ! अनन्त उदय को कोई तर न सकेगा

जीवन का विश्वास मौत से मर न सकेगा !

दुर्लभ था। विदेशी सभ्यता की विद्युत की ऐसी चकाचौंध तब थी कि अन्धकार में निशाचरों की भांति चलते हुए भी हम अपने को सन्तुष्ट अनुभव करते थे और आत्मद्वारा बनकर जी रहे थे। हिमालय के वे गगनचुम्बी शिखर जिनसे भारतीय संस्कृति की वाहिका सुरसरी निस्सृत हुई है हमारी आंखों से ओझल से थे। इस स्थिति में तिलक और गांधी जैसे ऋषियों ने हमारी आंखों का पर्दा हटाया और हमें बताया कि जिसे हम अपने जीवन का बड़ा साफल्य मानकर जी रहे हैं वह रात्रि है—बाल या-बिजली को रात्रि। वह दिन नहीं है—दिन सूरज का, दिन प्रकाश का, दिन अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास का। कुछ सिरफिरों ने उनकी आवाज सुनी और वे उनके पीछे पीछे चल दिए। बिना यह सोचे कि उनका गन्तव्य क्या है और कैसे उसे प्राप्त किया जा सकता है। वे चले तब उन्हें चलने की ही धुन थी। वे चलते गये और राह में अन्धकार और बिजलियों-बादलों से लड़ते गये। उनको एक दिन अपना गन्तव्य मिला, सूर्य के दर्शन उन्होंने किए, बादल बिजली का घटाटोप तिरोहित हुआ। वह दिन पन्द्रह अगस्त सन् सैंतालीस का था।

मेरी धरती की हरी-भरी फसलें, मेरे पहाड़, मेरी नदियाँ और निर्झर, मेरा आकाश, मेरे दिग-दिगन्त, मेरे पशु पक्षी, वृक्ष-वल्लरी सब जैसे किसी अलस निद्रा से जाग पड़े हों, सब जैसे किसी अज्ञात सुख के सरोवर में अवगाहन करने लगे हों। सब जैसे अपनी खोई निधि पाकर अपनेको कृत कृत्य समझने लगे हों। ऐसा कुछ समा था मेरे इस देश का। कौन था जो फूला न समाता था, कौन था जो न गुनगुनाता था, कौन था जो गर्व से सर न उठाता था। सबमें एक नई चेतना थी,

आवश्यकता

किसकी ?—सुधारकों की—दूसरों को सुधारनेवालों की नहीं, किन्तु अपने आपको सुधारनेवालों की।

योग्यता ?—विश्वविद्यालय के उपाधिधारी सज्जनों की नहीं, किन्तु परिच्छिन्न भाव से विजेताओं की।

आयु ?—दिव्यानन्द भरा तारुण्य।

वेतन ?—ईश्वरत्व।

शीघ्र निवेदन करो।

किससे ?—विश्वनियन्ता से, अर्थात् अपनी ही आत्मा से।

कैसे ?—दासोऽहं भरी दीनता से नहीं, किन्तु निश्चयात्मक निर्णय और अधिकार के साथ।

—परमहंस स्वामी रामतीर्थ

—श्री विनोद रस्तोगी—

[पृष्ठभूमि से पत्थर तोड़ने की ध्वनि उभरती है। फिर श्रमिकों का सहगान उभरता है—

हैया हो हैया! ईंट उठाओ, हैया! गारा लाओ हैया!! हैया हो हैया! हम मेहनत के दूत हैं! हैया! हम धरती के पूत हैं! हैया! है आराम, हैया! हमें हराम, हैया!! हैया हो हैया!! चूना-गारा, हैया! हमको प्यारा, हैया!! हैया हो हैया! हैया हो हैया!!

सहगान का स्वर समीप आता है और फिर पृष्ठभूमि में जाकर विलीन हो जाता है। क्षणभर बाद रेखा का तेज स्वर उभरता है।]

रेखा—मैं तो तंग आ गयी हूँ इस शोरगुल से।

दिवाकर—श्रम के इस पावन गीत को शोरगुल कहती हो?

रेखा—(चिढ़कर) पावन गीत होगा तुम्हारे लिये! मुझे तो रत्तीभर नहीं भाता। (रुककर) यह भी कोई जिन्दगी है। पल भर भी शान्ति नहीं।

दिवाकर—तुम्हारी तो टोकने की आदत पड़ गयी है।

रेखा—हाँ, तुम ऐसा नहीं कहोगे तो कौन कहेगा! (रुककर) सोचा था, नौकरी के बाद शहर में शान से रहेंगे

चौकर होंगे बैंकाम होगा, कार होगी मगर'''मगर भाग्य में तो यह जंगल''

दिवाकर—हम चाहें तो जंगल में भी मंगल मना सकते हैं रेखा। (रुककर) मेरे लिये तो यह बाँध एक पवित्र मन्दिर की तरह है जिसमें निर्माण के देवता की प्रतिष्ठा हो रही है।

रेखा—तुम्हारा यह मन्दिर मेरे लिये पत्थरों के ढेर से अधिक कुछ भी नहीं। (रुककर) सुनो तुम किसी और जगह नौकरी क्यों नहीं कर लेते? क्या ओवर सियर का बाहर में कोई काम नहीं।

दिवाकर—मैं अपनी इच्छा से यहां आया हूँ।

रेखा—मगर मेरी इच्छाओं का क्या होगा? क्या तुम चाहते हो कि मैं तुम्हारे लिये अपने व्यक्तित्व का गला घोंट दूँ?

दिवाकर—(तीखे स्वर में) रेखा

रेखा—(चीखकर) तुम मुझे डरा नहीं सकते। शादी से पहले क्या-क्या सपने दिखाये थे। याद है? कोई भी सपना पूरा किया तुमने?

दिवाकर—अगर हमारे सब सपने सच हो जायें तो उनका महत्व ही क्या रहे।

रेखा—सपनों को सच करना तो दूर, तुमने तो सचाई को भी सपना बना दिया है। मिसेज वर्मा को देखो..

दिवाकर—(बीच में ही) किसी से नकल करना ठीक नहीं। हमें अपनी चादर देखकर पैर फैलाने चाहियें।

रेखा—(व्यंग से) अगर चादर इतनी छोटी थी तो फिर शादी ही क्यों की? तुम्हें मेरा जीवन नष्ट करने का क्या अधिकार था?

दिवाकर—(दुखी स्वर में) रेखा—!

रेखा—(रुद्ध कण्ठ से) तुमने मेरा जीवन नरक बना दिया है। बिना क्लब सिनेमा और शापिंग के कोई इन्सान कैसे रह सकता है?

दिवाकर—जैसे बाँध बनानेवाले हजारों मजदूर रहते हैं।

रेखा—(चिढ़कर) मेरी बराबरी मजदूरों से करते हो?

दिवाकर—क्या वे मनुष्य नहीं?

रेखा—तुम्हारे लिये होंगे। मेरे लिये वे जानवरों से भी गये-बीते हैं।

दिवाकर—(कठोर स्वर में) रेखा, अगर मुझे मालूम होता कि तुम्हारे विचार ऐसे हैं तो

रेखा—तो शादी न करते, यही न? और अगर मुझे मालूम होता कि यह जंगल और गरीब मजदूर तुम्हारे लिये देवता हैं तो मैं भी शादी न करती। समझे?

दिवाकर—तो अब तलाक ले लो। रोकता कौन है?

आप जाते हैं या नहीं। अगर फिर कभी आपने इस तरह घूंस देने की कोशिश की तो मैं रिपोर्ट कर दूंगा। समझे?

रेखा—हाँ, हाँ... ! तुम तो यह चाहते ही हो ! इधर मैं जाऊँ और उधर तुम नयी ले आओ। तुम पुरुषों की दृष्टि में औरत है ही क्या? मगर कान खोलकर सुनलो, इतनी आसानी से मैं पीछा नहीं छोड़ सकती।

दिवाकर—तो क्या करोगी?

रेखा—अपने हक के लिये लड़ूँगी। तुम्हारी आधी तनख्वाह पर मेरा अधिकार है। कल पहली तारीख है। मैं साड़ियाँ खरीदने शहर जाऊँगी। जीप का इन्तजाम हो जाये।

दिवाकर—आधी तनख्वाह तुम्हारी साड़ियों पर खर्च कर दूँगा तो घर क्या भेजूँगा?

रेखा—मैं कुछ नहीं जानती। अब मैं तुम्हारे घरवालों के लिये अपना मन नहीं मार सकती।

दिवाकर—पिताजी को वैसे ही शिकायत रहती है कि मैं कम रुपया भेजता हूँ। अगर रेखा, आखिर तुम मेरी सीमाओं को देखती क्यों नहीं?

रेखा—तुम चाहो तो ये सीमायें टूट सकती हैं।

दिवाकर—पिताजी भी यही चाहते हैं।

रेखा—फिर कोई चिट्ठी आयी है?

दिवाकर—हाँ ! लिखा है, तारा की शादी के लिये दस हजार रुपये चाहिये। अब तुम्हीं बताओ रेखा, एक मामूली ओवरसियर इतनी रकम का प्रबन्ध कैसे कर सकता है?

गुलाबचन्द—(हँसकर) मैंने कहा, धीरे-धीरे हम दोनों एक-दूसरे को पहचान लेंगे। अभी आपको यहाँ आये दिन ही कितने हुये हैं, मैंने कहा।

रेखा—आप तो अपनी कारसे जारहे होंगे ?

गुलाबचन्द—मैंने कहा, जी हाँ। चाहें तो आप भी चल सकती हैं।

रेखा—आज नहीं, मुझे कल जाना है।

गुलाबचन्द—मैंने कहा, कल कार भेज दूँगा।

दिवाकर—उसकी कोई जरूरत नहीं है। अगर इन्हें जाना होगा तो सरकारी जीप से चली जायेंगी।

गुलाबचद—(हसकर) मैंने कहा, बात एक ही है। हमारी कार और सरकारी जीप में क्या फर्क है ? मैंने कहा, हम भी तो सरकार के ही हैं। (रुककर) सिर्फ फल मँगाने हैं या और कुछ भी ?

रेखा—और क्या ला सकते हैं ?

गुलाबचन्द—मैंने कहा, जो आप हुक्म दें। हम तो तावेदार हैं हुजूर के। (रुककर) मैंने कहा, मिसेज वर्मा तो बैटरी का रेडियो मँगा रही हैं।

रेखा—(विस्मय से) अच्छा ?

गुलाबचन्द—मैंने कहा, जी हाँ। हुक्म दें तो एक और लेता आऊँ। इस जगल में दिल लगने की और कोई सूरत भी तो नहीं, मैंने कहा।

दिवाकर—(तेज स्वर में) कृपा करके अब आप जाइये। हमें न फल मँगाने हैं और न रेडियो।

रेखा—तुम तो बेकार में ही बिगड़ रहे हो।

गुलाबचन्द—(निर्लज्ज हँसी हँसकर) मैंने कहा, अभी नया खून है।

"ठीक है। अगर पिता ही पुत्र का पतन चाहता है, अगर पत्नी ही पति को भ्रष्टाचारी बनाना चाहती है, तो ऐसा ही होगा। मै अपनी आत्मा की हत्या करूँगा, कागज के रग-बिरगे टुकडों पर अपने सिद्धान्तों को बेच डालूँगा, समाज और देश के प्रति गद्दारी करूँगा "

दिवाकर—आप जाते हैं या नहीं। अगर फिर कभी आपने इस तरह घूस देने की कोशिश की तो मैं रिपोर्ट कर दूगा। समझे ?

गुलाबचन्द—मैंने कहा, थू है घूस देनेवाले पर। अरे, प्रेम-व्यवहार में भेंट-उपहार देना पाप नहीं है। मैंने कहा, मैं कुछ गलत कह रहा हूँ, बेटी ?

रेखा—बेटी ?

गुलाबचन्द—मैंने कहा, और क्या ? आजसे मैंने तुम्हे बेटी बना लिया। मैंने कहा, क्या एक बाप अपनी बेटी को एक

छोटा-सा रेडियो भी नहीं ले सकता, ओवरटाइम करके ! (हँसकर) मैंने कहा, बाप बेटी के बीच में अब आप दखल नहीं दे सकते। तुम फ़िकर न करो बेटी, रेडियो आ जायेगा।

[गुलाबचन्द हँसता है। उसकी हँसी तथा पदचाप दूर जाकर विलीन हो जाती है।]

दिवाकर—(क्रोधकर) क्या शर्म छोड़कर उनसे रेडियो की मांग कर बैठी, क्यों ?

रेखा—इसमें बुराई क्या है ? मिसेज वर्मा भी तो मंगा रही हैं।

दिवाकर—मिस्टर वर्मा की तरह मैं अपनी आत्मा नहीं बेच सकता। अगर इस घर में उस ठेकेदार के बच्चे का दिया हुआ रेडियो आया तो अच्छा नहीं होगा।

रेखा—तो तुम्हीं ला दो। उसका नहीं लूंगी।

दिवाकर—मैं कहाँ से ला दूँ ?

रेखा—न घूस ले सकते हो और न ठेकेदार से भेंट ले सकते हो। आखिर चाहते क्या हो ? घुट-घुट कर मर जाऊँ ? (सिसक कर) रेडियो सुनकर घड़ी-दो घड़ी जी बहला लेना भी पसन्द नहीं ?

दिवाकर—तुम समझती क्यों नहीं रेखा ? गुलाबचन्द हमें अपने जाल में फांसना चाहता है। तुम क्या चाहती हो कि इस झूठी चमक दमक के लिये मैं अपने सिद्धान्तों की हत्या करूँ ? क्या तुम चाहती हो कि तुम्हारा पति घूसखोर कहलाये भ्रष्टाचारी कहलाये और दफ्तर व मठिया बनूँ !

रेखा—तुम्हारे सिद्धान्तों का मेरे पास एक ही जवाब है। अगर तुम्हें अपने सिद्धान्त प्यारे हैं तो मुझे अपने शौक। गुलाबचन्द जो कुछ भी देगा मैं लूंगी ज़रूर लूंगी।

[रेखा के दूर जाते हुये स्वर के साथ फेडआउट।]

अन्तराल के बाद

[रेडियो की घरघराहट का स्वर। फिर—"ए दिल मुझे बता दे तू किस पे आया है। है कौन वो कि जिसे निगाहों में पाता है"—फिल्मी गीत की गूँज।]

दिवाकर—(दूर से) रेडियो बन्द करो रेखा !

रेखा—(पास से) क्यों ? मैं तो धीमा किये देती हूँ।

[गीतका स्वर धीमा हो जाता है।]

दिवाकर—(पास आकर) रेडियो सुनने के अलावा और काम नहीं है क्या ?

[स्विच बन्द करने की आवाज गीत बन्द हो जाता है।]

रेखा—तुम चाहते हो, दिन-रात तुम्हारी हाँ-हुजूरी में लगी रहूँ ?

दिवाकर—तुम इतनी जल्दी बदल जाओगी, ऐसी आशा न थी। (दुःखी स्वर में) तुमने मेरा दिल तोड़ दिया रेखा।

रेखा—(व्यंग से) दिल टूटता भी

है, यह आज ही सुना।

दिवाकर—तुमने मेरा सुख-चैन छीन लिया, आत्मा की शान्ति छीन ली। गुलाबचन्द से रेडियो, सोफा-सेट और कालीन लेकर तुमने मुझे आंखें उठाकर चलने लायक नहीं रखा।

रेखा—गुलाबचन्द ने मुझे बेटी मान कर चीजें दी हैं। तुम्हें क्यों बुरा लगता है? तुम्हारे आदर्श तो अब भी ..

दिवाकर—(बीच में ही) लोग तो यही समझते हैं कि मेरे इशारे पर ही सब कुछ हो रहा है। (विनय के स्वर में) रेखा, अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। उसकी चीजें उसे लौटा दो।

रेखा—(विरोध के स्वर में) घर आयी लक्ष्मी को ठुकरा दूं? नहीं, मैं ऐसी पागल नहीं हूँ।

दिवाकर—इस जिद का नतीजा बुरा होगा, रेखा, बहुत बुरा होगा।

रेखा—(चुनौती के स्वर में) घर से निकाल दोगे?

दिवाकर—दिल से निकाल दूंगा। (दूर जाता हुआ स्वर) तुम मुझे खो बैठोगी।

रेखा—अरे, बाहर कहाँ जारहे हो? चाय तो पीते जाओ।

दिवाकर—(दूर से) तुम बैठी बैठी रेडियो सुनो। मैं चाय और कहीं पी लूंगा।

रेखा—(हंसकर स्वगत) चलो, यह भी झंझट खतम हुआ। (रुककर) कितना प्यारा गीत आ रहा था। सब गुड़-गोबर कर दिया।

[स्विच खोलने की आवाज। रेडियो की घरघराहट का स्वर।]

गुलाबचन्द—(दूर से पास आता हुआ स्वर) मैंने कहा, क्या हो रहा है, रेखा बेटी?

रेखा—रेडियो सुन रही थी। आइये।

[स्विच बन्द करने की ध्वनि के साथ ही रेडियो की घरघराहट बन्द हो जाती है।]

गुलाबचन्द—मैंने कहा, रेडियो ठीक काम दे रहा है, बिटिया रानी?

रेखा—जी हां।

गुलाबचन्द—मैंने कहा, अब तो तबियत नहीं ऊबती होगी?

रेखा—कुछ दिल बहल जाता है। काश! रेडियो से हर वक्त फिल्मी-गीत ही ब्राडकास्ट होते रहें।

गुलाबचन्द—(हंसकर) मैंने कहा,

" वह! मैंने सब कुछ सुन लिया है। (भावावेश में) तारा क्वांरी रह सकती है, मगर मगर देश की नदियाँ क्वांरी नहीं रहेंगी। बेटा दिवाकर! देखो, रात के अंधेरे को चीरकर उषा हंस रही है। . "

गुलाबचन्द—(हँसकर) मैंने कहा, मेरी बिटिया रानी बडी अच्छी है। (रुककर) बेटी, ओवरसियर साहब तो मुझसे बहुत नाराज हैं।

रेखा—क्यों ? कुछ कह रहे थे क्या ?

गुलाबचन्द—मैंने कहा, कह रहे थे, तुमने बाँध कमजोर बनाया है, मैं पास नहीं करूँगा।

[रेखा मौन रहती है।]

गुलाबचन्द—मैंने कहा, अगर तुम उनसे कह दो तो .

रेखा—(बीच में ही) मैं कह दूँ ? ह कैसे हो सकता है ? मैं उनके काम । कभी दखल नहीं देती।

गुलाबचन्द—मैंने कहा, मेरे लिये इतना काम तो करना ही पड़ेगा, बेटी। वे तुम्हारी बात नहीं टालेंगे।

रेखा—लेकिन

गुलाबचन्द—मैंने कहा, अगर तुम इतनी मदद नहीं करोगी तो मैं बरबाद हो जाऊँगा, बेटी। मैं तुम्हें सगी बेटी की तरह मानता हू। इसी नाते

[गुलाबचन्द का वाक्य अपूर्ण रह जाता है। दूर से रामलाल का स्वर सुनाई पड़ता है]

रामलाल—दिवाकर, ओ दिवाकर बेटा।

रेखा—अरे, यह तो बाबूजी की आवाज है। (धीमे स्वर में) देखिये, आप बाबूजी से कहियेगा। वे उनकी बात नहीं टालेंगे।

रामलाल—(पास आकर) बहू, दिवाकर घर में नहीं है क्या ?

रेखा—अभी-अभी बाहर गये हैं। आपने आने की सूचना क्यों नहीं दी ? हम जीप लेकर शहर आजाते।

गुलाबचन्द—मैंने कहा, यहाँ तक आने में काफी तकलीफ हुई होगी ?

रामलाल—तकलीफ-आराम तो लगा ही रहता है। आप

रेखा—यह यहाँ के ठेकेदार हैं—बाबू गुलाबचन्द। बहुत नेक आदमी हैं। मुझे सगी बेटी की तरह मानते हैं। आप इनसे बातें कीजिये। मैं अभी चाय लाती हू।

[रेखा की पदचाप दूर जाती है।]

गुलाबचन्द—मैंने कहा, आपका बेटा बहुत होनहार है। मगर एक कमी है।

रामलाल—मैं समझा नहीं आपका मतलब।

गुलाबचन्द—मैंने कहा, मैं आप से ही पूछता हूँ, बहती गंगा में हाथ न धोना कहाँ की अक्लमंदी है ? (रुककर) अगर आपके साहबजादे चाहें तो (हँसकर) मैंने कहा, बात-की-बात में हजारों कमा सकते हैं।

रामलाल—(गरजते स्वर में) तुझे इसीलिये पाल पोस कर बड़ा किया था ? खुद भूखा नगा रहकर तुझे पढ़ाया-लिखाया और जब कमाने लगा तो आँखें दिखाता है।

दिवाकर—(विनीत स्वर में) कुछ मेरी भी तो सुनिये, पिताजी।

रामलाल—मैं कुछ नहीं सुनना चाहता। सोचा था, पढ़-लिखकर तू कमायेगा, तारा के हाथ पीले करेगा, हमें सुख-चैन देगा। मगर तू

दिवाकर—मैंने कौन-सा अनर्थ किया है, पिताजी ? अपना पेट काटकर रुपये घर भेजता हू।

रामलाल—(व्यग से) पेट काटकर रुपये घर भेजता है। यह रेडियो, सोफा-सेट, कालीन यह सब कहा से आये ? बोल ?

[दिवाकर मौन रहता है।]

रामलाल—जवाब दे! इनके लिये तेरे पास रुपये हैं और घर भेजने के लिये

दिवाकर—(बीच में ही) यह चीजें हमने खरीदी नहीं हैं।

रामलाल—फिर क्या आसमान से टपक पड़ीं ?

दिवाकर—(पीड़ित स्वर में) रेखा से पूछिये।

रेखा—जी, ये चीजें गुलाबचन्द ठेकेदार ने

रामलाल—(बीच में ही) गुलाबचन्द ठेकेदार ने दी हैं! ठीक है। अपने लिये गुलाबचन्द से चीजे ले सकता है, मगर तारा की शादी के लिये रुपये नहीं ले सकता। क्यों ?

दिवाकर—जी

रामलाल—मैं जी जी नहीं सुनना चाहता। कान खोलकर सुनले। तुझे गुलाबचन्द का काम करना पड़ेगा। पूरे तीस हजार मिलेंगे। तारा का ब्याह भी हो जायगा, हमारा जीवन भी

दिवाकर—(बीच में ही) मगर... मगर मैं कोई भी गलत काम नहीं कर सकता।

रामलाल—तू चाहता है तारा उम्र भर क्वांरी रहे ? बूढे माँ-बाप दर-दर के भिखारी बनें। (रुककर) मैं गुलाबचन्द को वचन दे चुका हूँ। अगर मेरा वचन पूरा न हुआ तो समझ लूगा कि मेरे कोई बेटा नहीं। सुना ? मेरे लिये तू मर जायगा। तारा और तेरी मा का गला घोंट कर मैं भी कुयें में कूद कर जान दे दूगा।

रेखा—बाबूजी की बात मान क्यों नहीं लेते ? सभी तो आंधी के आम बटोरने मे लगे हुए हैं।

दिवाकर—मगर अपनी अन्तरात्मा

की हत्या कैसे करूं ! मैं जानता हूं कि बाँध का यह हिस्सा बहुत कमजोर है। उसे कैसे पास कर दूं ! नहीं मैं ऐसा नहीं कर सकता।

रामलाल—तो फिर पै अपने ही हाथों अपने बूढ़े बाप का गला घोंट दे। छे !

रेखा—तुम पास नहीं करोगे तो भी गुलाबचन्द का काम तो हो ही जायगा। बेकार में बाबूजी को क्यों दुःख पहुंचा रहे हो !

दिवाकर—मगर समाज और देश के प्रति

रेखा—(बीच में ही) समाज और देश के साथ-साथ परिवार के प्रति भी कोई कर्तव्य है तुम्हारा। फिर ये कोई कम नहीं। मगर मगर बाबूजी दुःख कर बैठें तो ...(सिसकती है।)

रामलाल—(रुद्ध कण्ठ से) बेटा, मेरे बुढ़ापे पर नहीं तो तारा की सूनी माँग पर तो तरस खा। वह तुमसे सिंदूर की भीख माँग रही है।

[धीमा करुण संगीत]

दिवाकर—ठीक है। अगर पिता ही पुत्र का पतन चाहता है, अगर पत्नी ही पति को भ्रष्टाचारी बनाना चाहती है तो ऐसा ही होगा। मैं अपनी आत्मा की हत्या करूंगा चाँदी के चंद सिक्कों के टुकड़ों पर अपने सिद्धान्तों को बेच डालूंगा समाज और देश के प्रति गद्दारी करूंगा—(रुंधे स्वर में) गद्दारी करूंगा।

रामलाल—(हर्ष से) शाबाश बेटे। मुझे तुमसे यही आशा थी।

[क्षणिक विराम]

रेखा—नींद आ रही है ?

दिवाकर—तुम लोगों ने जो काम था हो गया। अब और परेशान न करो।

रेखा—(कोमल स्वर में) मुझसे नाराज हो !

दिवाकर—भगवान के लिये चुप रहो। मेरे सिर की नसें फटी जा रही हैं। मुझे सोने दो मुझे सोने दो।

[पलभर बाद वाद्यवृन्द की धीमी ध्वनि के साथ स्वप्न-दृश्य प्रारम्भ। संगीत नज़दीक पास आती है और फिर पृष्ठभूमि में चली जाती है। श्रमिकों के गायन का स्वर उभरता है।]

हैया हो हैया !

हम मेहनत के दूत हैं !

हैया !

हम धरती के पूत हैं !!

हैया !!

है आराम, हैया !

हमें हराम, हैया !!

हैया हो हैया !!

[गायन की ध्वनि पृष्ठभूमि में चली जाती है। सहसा तूफान का स्वर उभरता

है। बिजली की कड़क और बादलों की गरज एकदम पास आती है। वर्षा का शोर। यह ध्वनियाँ फिर पृष्ठभूमि में चली जाती हैं। पलभर बाद बाँध ढहने की आवाज! श्रमिकों की चीख पुकारें। इन स्वरों के मध्य से उभर कर एक स्वर पास आता है—"आज की ताजी खबर! बाँध की दीवारें ढह गयीं। सैकड़ों मजदूर घायल! बाँध की दीवारें ढह गयीं!! बाँध की दीवारें ढह गयीं!!" यह स्वर पास आकर फिर दूर चला जाता है। दिवाकर की तेज चीख!]

रेखा—(घबराकर) क्या हुआ? अरे, तुम इस तरह काँप क्यों रहे हो?

दिवाकर—छोड़ो, छोड़ो, मुझे छोड़ दो! मैं निर्दोष हूँ मैं निर्दोष हूं!

रेखा—यह क्या बक रहे हो? उठकर बैठो। हाँ, अब बताओ, क्या बात है?

दिवाकर—(रुद्ध कण्ठ से) रेखा, बाँध टूट गया। निर्माण के देवता की मूर्ति खण्डित हो गयी। मैंने तूफान की आवाज सुनी, बाँध टूटने की आवाज सुनी, मजदूरों की चीखें सुनीं, अखबारवाले की पुकार सुनी!

रेखा—मैंने तो कुछ नहीं सुना। जरूर तुमने सपना देखा है।

दिवाकर—लेकिन यह सपना सच हो सकता है।

रेखा—कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हो? अब सो भी जाओ।

दिवाकर—थोड़ी देर के लिये सो गया था। अब जाग गया हूँ। (निश्चय की दृढ़ता से) जाओ, पिताजी से कह दो, मैं समाज और देश के साथ गद्दारी नहीं कर सकता। गुलाबचन्द का बाँध पास नहीं होगा, कभी नहीं होगा।

रेखा—लेकिन तारा की शादी?

दिवाकर—भाग्य में होगी तो हो जायेगी। देश के नव निर्माण के लिये हमें बड़े-से-बड़ा त्याग करना पड़ेगा। निर्माण का देवता बलि चाहता है।

[धीमा संगीत।]

रेखा—तुमने मेरी आँखें खोल दी हैं। मैं मैं अपने कर्मों पर लज्जित हूँ। मुझे माफ कर दो।

दिवाकर—यदि सचमुच तुम अपनी भूल पर पछता रही हो तो कल ही रेडियो, सोफा-सेट और कालीन लौटा देना।

रेखा—जरूर लौटा दूँगी और ...और नेकलेस भी

दिवाकर—नेकलेस?

रेखा—हाँ, मैं तुमसे झूठ बोली थी। नेकलेस भी गुलाबचन्द ने दिया था।

दिवाकर—सुबह का भूला शामको घर आजाये तो भूला नहीं कहलाता। चलो,

हम दानों पिशाचों से कह दें कि हम किसी भी मूल्य पर निर्माण के देवता की पुनीत प्रतिमा को कलंकित नहीं करेंगे।

रेखा—देवता की मूर्ति को कोई मनुष्य कलुषित कर ही नहीं सकता। मैंने मंत्र की थी मगर देवता ने अपने प्रभाव से मेरा भी मैल धो दिया।

दिवाकर—(हंसकर) तुम्हारा मतलब

रेखा—अरे किसे तो तुम्हीं निर्माण के देवता हो। चलो हम बापूजी को अपने निश्चय की सूचना दे दें।

रामनाथ—(प्रवेश करके) मुझे कुछ बताने की जरूरत नहीं है, बहू! मैंने सब कुछ सुन लिया है। (भावावेश में) वादल कगारों ढह सकती है मगर प्रेम की नदियां कगारें नहीं ढहेंगी। बेटा दिवाकर देखो रात के अंधेरे को चीरकर उषा आ रही है। (कुछ काला स्वर) आज मेरे जीवन की भी नयी सुबह है।

रेखा—हमारे जीवन की नयी सुबह—

[पृष्ठभूमि से—"हम महलों के नहीं, देवता! हम धरती के पूत हैं देवता! धरती की धूल।"]

दिवाकर—रेखा, निर्माण के सपने देखना तो वे लोग हैं जो पहाड़ों पर फूल खिलाते हैं धरती का स्वर्ग बनाते हैं। चलो हम भी इनके स्वर के साथ अपना स्वर मिलाकर नये निर्माण का गान गीत गायें।

[धरधार की ध्वनि पास आती है और फिर धीरे-धीरे दूर जाकर विलीन हो जाती है।]

३

संहार और निर्माण

श्री श्यामलाल वशिष्ठ एम० ए

धीरे धीरे प्रकृति की प्रतिमा विनाश के आंचल में सोने लगी और उपवन के सभी पुष्प-पात निष्प्राण होकर धरा के आंगन में विलीन हो गये। वृद्धावस्था से जर्जर उस मनुष्य ने जब जीवन की अन्तिम सांस भी निपटा ली तो संहार अपनी विजय पर अमानुषिक अट्टहास कर उठा। लेकिन तभी मृत्यु के उस गहन अन्धकार तथा सूनेपन में वसुधा के किसी कोने से एक नवजात शिशु का बाल-सुलभ रोदन सुन पड़ा और भोर होने पर सभी ने देखा पतझड़ में सूखे द्रुम नूतन कोंपलों को जन्म देकर वसन्त आगमन की ओर संकेत कर रहे थे। सृजन संहार की अबोधता पर मुस्करा रहा था।

लक्ष लक्ष मानवों के शोषण पर खड़े महलों, कोठियों और रत्न भण्डारों के बीच दबी मानव संस्कृति की मर्मवाणी निर्माण और श्रेय के लिए

हमें पुकार रही है!

श्री रामनाथ 'सुमन'

•

सांस्कृतिक निर्माण

समस्त सृष्टि का एक ही तात्पर्य है— निरन्तर नवीन जीवन की रचना। वनस्पति, पशु-पक्षी मानव सर्वत्र बात यही है। केवल स्तर भेद है। ब्रह्मदर्शन में कहा गया है कि ब्रह्म में स्वयं एक से अनेक होने की तरंग उत्पन्न हुई—एकोऽहं बहुस्याम—और वह एक से अनेक हो गया। वस्तुतः ब्रह्म की यह कामना एक से अनेक होने की अपने को गुम्फित करने की समस्त जीव-सृष्टि में व्याप्त है और समस्त प्रेरणाओं एवं क्रिया कलापों का उद्गम यही होता है।

मानव में विशेषता इतनी ही है कि अन्य जीवों की अपेक्षा उसमें विवेक अधिक है। इसलिये रचना-कर्म में अपना नियुक्त कर्तव्य करने के लिये उसमें निर्वाचन एवं स्वतंत्र रचना की विशेषता है। वह रचना ही नहीं करता, रचना के साथ पोषण एवं विकास का उत्तरदायित्व भी अपने ऊपर लेता है। इस उत्तरदायित्व के निर्वाह से क्रमिक विकास द्वारा मानव सभ्यता के लम्बे युगों में उसने सीखा कि आत्म-रक्षण के लिये आत्म-नियंत्रण आवश्यक है और आत्म-रक्षण का सबसे विकसित रूप आत्मसंयम है। इसी अनुभव ने उसे स्वार्थ पर अंकुश रखने की शिक्षा दी और प्रकृति के दायरे से उठना सिखाया।

आज की सभ्यता में ऐहिक सुखों की प्यास है। वह रूपजीवी है। वह नामरूप प्रधान है। उसने संस्कृति की ओर ले जाने के क्रम को उलट दिया है। शिक्षित-वर्ग कोष भी आज की चर्चा पर, आत्म-विवेचन

की चर्चा पर कहते हैं यह मानव प्रकृति के विरुद्ध है। ऐहिक सुखो की स्पृहा प्राकृतिक है। जीवन की तीन अवस्थायें होती हैं, विकृति, प्रकृति और सस्कृति। आज जीवन प्रकृति से विकृति की ओर जा रहा है। जब हम अपने भोग के लिए दूसरों को गिराते हैं, जब यह भाव बढ़ता है कि हम जियें दूसरे भले मरें, जब दूसरो के उत्पीड़न, विनाश या शोषण पर हम फूलने-फलने की निरर्थक कामना करते हैं तब हम विकृति की अवस्था में हैं। जब मानव में यह भावना उदय होती है कि हम जियें पर दूसरे भी जियें, या यह कि अपना जीवन अपने तक ही नहीं है, दूसरो को भी देखना है-या अपने ही लिये दूसरों को खोने देना है तब यह अवस्था 'प्रकृति' है। जब मनुष्य में यह उच्च वृत्ति उदय होती है कि दुखियो, पीड़ितो के लिये हम दुःख झेलें, दूसरो के सुख के लिये अपने सुख का त्याग करें, दूसरे जियें इसलिये हम मरें, हमारे मरण की सेज पर नवीन जीवन का अभ्युदय हो तब यह अवस्था 'संस्कृति' कहलाती है। इस तरह प्रकृति जीवन का मध्यविन्दु है। प्रकृति से सस्कृति की ओर जाना उन्नति है, निर्माण है, श्रेय है। प्रकृति से विकृति की ओर जाना पतन है।

तब सस्कृति का बीज आत्मार्पण है।

जितना भी कर सकें, करें!
जितने भी साधनों से कर सकें, करें!
जितने भी मार्गों से कर सकें, करें!
जितने भी स्थानोंपर कर सकते हैं, करें!
जितने भी काल के लिये कर सकते हैं, करें!
करें, करें!
आलस्य में न बैठें!
करते चलें!
शुभ कर्म ही मनुष्य का सच्चा मित्र है।

यह आत्मार्पण तभी सभव है जब मानव-हृदय स्नेहपूरित हो, जब वह इससे भरा भरा अपने को दूसरों के लिये उँडेलने में सचेष्ट हो। जब दूसरों से आत्मैक्य की अनुभूति हो और जब हम दूसरों के लिये जीना आरभ करें, दूसरों के लिये मर-मिटने को तत्पर हो। यह मातृत्व की भावना, सतति के लिये जीने और मरने की भावना, भारतीय सस्कृति की रीढ है। ज्यो-ज्यों मनुष्य अपने सामाजिक कर्तव्य के प्रति जागरूक होता है, उसकी बाहरी असुविधाएँ बढ़ती ही जाती हैं, उसे कष्ट सहना पड़ता है। उसे त्याग करना पड़ता है। जिसके पास चार रोटियाँ हैं वह अपने सामने दूसरों को भूखे मरते देख मानवीय अनुभूतियों के साथ कैसे अनुद्विग्न रह सकता है। वह अपने में से

देगा बल्कि संस्कारी हुआ तो अपना सब कुछ देकर स्वयं भूखे रहेगा; क्योंकि भूखे रहकर भी उसमें समर्पण का आनन्द है। उसकी बुभुक्षा विवशता के कारण नहीं है वरन आत्मदान के कारण है।

इसीलिए समाज में जो जितना संस्कृत होगा वह उतना ही त्यागी उतना ही अपरिग्रही होगा। धर्म और संस्कृति का मर्म ही त्याग है। हम संग्रही हों अधिकाधिक वस्तुओं का संचय करते जायँ धनधान्य से भरे हों तो निश्चित जानिये हमने धर्म का मर्म नहीं जाना है संस्कृति का दर्शन नहीं किया है। क्योंकि ये महल, ये कोठियाँ ये रत्नभण्डार वस्तुतः अनेक-अनेक मानवों के शोषण पर खड़े हैं। जीवन-धर्म की सामान्य आवश्यकता से एक कण भी यदि हम अधिक लेते हैं तो समाज में विषमता पैदा करते हैं, जो हमारा नहीं है उसे लेते हैं—चोरी करते हैं और अपने साथ समाज को पतन की ओर ले जाते हैं।

संस्कृति का यह मर्म हम भूल गये हैं। इसीलिए जीवन का देवता आज समाज के भीतर ही अवरुद्ध होकर रह गया है। वह कुण्ठित हो गया है। आज उसके जागरण की बेला में हृदय की सब कोमलता को बाहर आने दें; आज अपने को देने का व्रत लें, दूसरों के लिए जीने का व्रत लें। प्रेम करने का व्रत लें। हम दुराव छिपाव और अलगाव के क्रम को समाप्त करने का व्रत लें। प्रकृति से विकृति की ओर जाते हुए अपने कदम रोक दें और संस्कृति के सिंधु की ओर लौटने का व्रत लें, जहाँ मानव-संस्कृति की मंगलवाणी हमें पुकार रही है।

०

शैतान का अस्त्र [श्री जेम्स केलर]

निर्माण का कार्य बड़ी तेजी से चल रहा था। छोटे-बड़े हर तबके के लोग अपना सब भेद-भाव भूलकर जल्दी-से जल्दी उस काम को पूरा कर देना चाहते थे—युग-समृद्धि का द्वार खोलने का व्रत जो उन्होंने ले रखा था। तभी उन पर शैतान की दृष्टि पड़ गयी। उससे यह सब न देखा गया और उसने अविलम्ब अपना दाव फेंका। नतीजा यह हुआ कि दूसरे ही दिन से सभी लोग अपने-अपने किये पर गर्व करने लगे। कोई भी व्यक्ति अब यह स्वीकार करने को तैयार न था कि उस निर्माण के कार्य में उससे अधिक महत्त्वपूर्ण किसी और का योगदान रहा। देखते ही-देखते उनकी एकता संघर्ष में बदल गयी और वह काम अधूरा ही रह गया—युग-समृद्धि का द्वार व कभी नहीं खोल सके

—'नवनीत' के सौजन्य से

गांधीजी के रामराज्य का स्वरूप

कल्याणकारी समाज

श्री प० गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'

समाज निर्माण

सहस्रों वर्षों से कल्याणकारी समाज का निर्माण मनुष्य का लक्ष्य रहा है। आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व यूनान के चिन्तक अफलातून ने जब अपने गणतन्त्र से कवियों के बहिष्कार की बात कही थी, तब कल्याणकारी समाज का निर्माण ही उनका लक्ष्य था, क्योंकि उन्हे आशका थी कि अपनी अश्लील रचनाओं के द्वारा कविगण समाज के मानसिक सन्तुलन को नष्ट कर देंगे। मानव के दैनिक जीवन में अहिंसात्मक भावना का समावेश भारत के महान विचारकों—पतजलि, कणाद, बुद्ध आदि सभी महात्माओं का प्रधान उद्देश्य रहा है। बुद्ध के ही अहिंसा-संदेश को ईसा और उनके अनुयायियो ने उन भू भागों में पहुचाया, जहाँ बौद्ध धर्म के प्रचारक उसे लेकर नहीं पहुँच सके थे। आधुनिक काल मे कल्याणकारी समाज के निर्माण के लिए महात्मा गांधी ने भगीरथ प्रयत्न किया है। यह सब होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि इस दिशा मे हम अधिक प्रगति कर सके हैं। आज अश्लील से-अश्लील उपन्यास लिखकर भी उपन्यासकार समाज मे आदृत हो रहा है। पतजलि, कणाद, बुद्ध, ईसामसी और गांधी के नाम लिये जाने पर भी उनके प्रति क्रियात्मक सम्मान की ओर बहुत कम लोगों का ध्यान है। छोटे-से-छोटे क्षेत्रसे लेकर बड़े-से-बड़े क्षेत्र पर दृष्टिपात करें, सर्वत्र हमें घृणा, द्वेष, वैमनस्य, सकीर्णता आदि का अरुचिकर रूप दिखाई पड़ेगा। यह कम आश्चर्य की बात नहीं कि ऐसे वातावरण मे भी कुछ लोग कल्याणकारी समाज के निर्माण की चर्चा कर दिया करते हैं। लाउडस्पीकर लगाकर 'हरे राम, हरे राम' कह कर किया जानेवाला हरि सकीर्त्तन जैसे आजकल एक फैशन की चीज हो रहा है, वैसे ही भारत के स्वतन्त्र होने के अनतर कल्याणकारी समाज के निर्माण की चर्चा

भी बहुत प्रिय होती जा रही है।

कल्याणकारी समाज ऐसी वस्तु नहीं है कि उसकी चर्चा करने मात्र से वह आकाश से टपककर अनायास किसी पके मेवाके खेत की तरह हमारे हाथ में आ जाय। उसके लिए कठोर चिन्तन मनन और साधना की आवश्यकता है। क्या ये तत्व हमारे जीवन में यथेष्ट मात्रा में उपस्थित हैं? इसे जाने दीजिए, हम इसी प्रश्न पर विचार करें कि क्या हम अब अपने वर्तमान जीवन में इन तत्वों की आवश्यकता भी समझते हैं?

रक्तपात में व्यस्त हो चुका है और जैसे महायुद्ध के आगमन की आशंका से संत्रस्त पीड़ित है। इस असामंजस्य, अशान्ति और आतंक के वातावरण में कल्याणकारी समाज की कल्पना करना भी साहस का काम है, आकाश से फूल तोड़ लाने के लिए उद्यत होने के बराबर है।

आवागमन के साधनों में अनवरत वृद्धि हो रही है। एक देश का मनुष्य दूसरे देश के मनुष्यों के अधिकाधिक सम्पर्क में आ रहा है। जितने समय में हुएनत्सांग चीन से भारत में आया था, उतने समय में

रामराज्य ही में मर्यादा अनुशासन सेवा त्याग आदि का वह रूप रहा हुआ जो अब प्रागैतिहासिक एवं काल्पनिक कहकर टाल दिया जाता है; किन्तु जो इतना यथार्थ और प्रभावशाली था कि महात्मा गांधी को भी अपने आन्दोलन की सफलता के लिये उसी को लक्ष्य बनाना पड़ा।

यह सच है कि वर्तमान युग में हमारी मनोवृत्तियों और धारणाओं में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ है। इन्द्रियजन्य सुख भोग की अतिशय आतुरता उसकी एक विशेषता है जिससे व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति, व्यक्ति का समाज के प्रति संघर्ष बढ़ा है। फलस्वरूप संघर्ष ने विग्रह, अशान्ति, घृणा आदि की निरन्तर वृद्धि की है। उस संघर्ष ने भी विषमता की खाई को और अधिक चौड़ी बनाने में ही सफलता प्राप्त की है। यह संयम ही महापुरुषों के

आज सम्पूर्ण विश्व की परिक्रमा की जा सकती है। यह सब होने पर भी हमारे हृदय एक-दूसरे से दूर होते चले गये हैं। इस परिस्थिति में यह सोचना कि रेल, जहाज, वायुयान की अधिकाधिक वृद्धि से कल्याणकारी समाज का निर्माण संभव हो जायगा, केवल काल्पनिक जगत् में विचरण करने के तुल्य है। सच बात यह है कि जिस अनुपात में हमारे आवागमन के साधनों में वृद्धि हुई है ठीक उसी अनुपात में हमारे अन्तर में खाई एवं

> हमें बिना तर्क-वितर्क किये काम में लगे रहना चाहिये। जीवन को सरस बनाने का एकमात्र उपाय यही है।
>
> —वाल्टेयर

अहिंसा के प्रति आदर और अनुराग घटता गया है। जिस समाज में सचाई और अहिंसा नहीं रहेगी, उस समाज को कल्याणकारी समाज बनाना कदापि सभव नहीं है।

आवागमन के साधनों की वृद्धि का एक स्वाभाविक परिणाम यह हुआ है कि अब समाज का क्षेत्रफल किसी एक देश अथवा महादेश की सीमाओं तक सकुचित न रहकर विश्वव्यापी होगया है। किसी हद तक यह अच्छा भी हुआ है, लोकमत को विकसित होने का अवसर मिला है और दूर-दूर देशों में होनेवाले अत्याचारों का समाचार पाकर अपने विरोधी स्वर से उन पर अपना प्रभाव डालना भी उसने शुरू कर दिया है। इस लोकमत से ससार के अनेक देशो को खोयी हुई स्वतत्रता प्राप्त करने में भी कुछ सहायता मिली है। किन्तु इस वृहत्तर समाजके विकाससे जितना लाभ हुआ है, उससे कहीं अधिक हानि हुई है। जब आवागमन के साधन कम थे, भिन्न-भिन्न देश एक-दूसरे से प्राय असम्बद्ध थे और यदि कोई देश अपनी सीमा के भीतर कल्याणकारी समाज का निर्माण करना चाहता था, तो उसके सामने बाधा अत्यन्त अल्प थी। सम्राट् अशोक का शासन-काल इस दिशा में एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है। उन्होंने भारत में कल्याणकारी समाज का एक स्वरूप प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की, वे ऐसी नीति का सचालन कर सके, जिसके सहारे व्यक्ति को अनाचार और अन्याय से रक्षा प्राप्त हो सके। किन्तु यदि आज कोई भारत मे यह आशा करे कि वह सम्राट् अशोक की नीति को कार्यान्वित कर सकेगा और सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त परिस्थिति उसे ऐसा करने देगी, तो उसे शीघ्र ही अनुभव होगा कि वह दिवा-स्वप्न देख रहा है। आज एक ओर रूस और दूसरी ओर अमरीका विश्व के समस्त देशों को अपनी अपनी विचारधाराओं से प्रभावित कर रहे हैं और इन दोनों की विचारधाराओं का समन्वय न होने के कारण किसी अद्वैत विश्वनीति का न विकास हो सका है और न शीघ्र हो सकने के लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं। इस द्वैत भावना ने प्राय समस्त ससार को दो दलों में विभक्त कर दिया है और प्रत्येक दलपति ने अपने सगी-साथियो का निर्वाचन करते समय इस बात को

सकते हैं। शोषित मजदूरों और किसानों की सरकार बनाकर तथा जीवन के लिए श्रम-सिद्धान्त की अनिवार्य मान्यता घोषित करके उसने निरन्तर शोषण में निरत दानव की समाप्ति का मार्ग दिखलाया है। यदि उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए रक्त क्रान्ति पर अनिवार्य आग्रह किया है, तो यहाँ तक लोक-कल्याण की सिद्धि को सम्पन्न करने के लिए ही रक्तपात का अवलम्ब लिया जाता है, वहाँ तक तो उसमें आपत्ति के योग्य कोई बात नहीं है। किन्तु इस विचारधारा के सम्बन्ध में बहुत बड़ी कठिनाई यह है कि जहाँ मतभेद समाप्ति के समस्त शान्तिपूर्ण साधनों की परीक्षा ले लेने के बाद ही रक्त-पात एवं शस्त्र-प्रयोग उचित है, वहाँ वह आदिसे अन्त तक एकमात्र रक्तक्रान्ति उत्पन्न करके ही कृतकार्य होना चाहती है। कार्ल मार्क्स ने अपनी समस्या को हल करने के उत्साह में इस बातकी ओर ध्यान नहीं दिया कि अकेली आग हमारे जीवन को पूर्ण नहीं बना सकती, आगके साथ साथ पानी का होना भी आवश्यक है। भारतीय विचारकों ने आग की सम्भावित निरकुशता को सीमित रखने के लिए पहला स्थान पानी को दिया, वर्ण-व्यवस्था से शब्द लेकर यदि कहना चाहें तो कह सकते हैं कि क्षत्रिय के क्षात्रधर्म को मर्यादा के भीतर रखने के लिए उन्होंने ब्राह्मण के अहिंसा, क्षमा, सन्तोष, त्याग, तितिक्षा, ब्रह्मचर्य आदि तत्त्वों पर आधारित ब्रह्मधर्म की भी निर्धारणा की। कार्ल मार्क्स की विचार-धारा में इसी ब्रह्मधर्म का अभाव है। इस अभाव के कारण साम्यवाद ने उन लोगों के हृदय में अपार आतंक उत्पन्न कर दिया है, जो शोषक हैं अथवा शोषकों के प्रति-निधि हैं और जिनके अधिकार में अतुलनीय पूंजी एवं सम्पत्ति एकत्र हो गयी है। अमरीका इस समय संसार के सब राष्ट्रों की अपेक्षा अधिक धन-सम्पन्न है और वही साम्यवाद के प्रसार से सर्वाधिक विचलित है। अणुबम ने उसे सबसे अधिक शक्ति-

---

आज राजनीति का तो दिवाला निकल चुका है। बड़े-बड़े धर्म अधार्मिक लोगों के हाथ में जाकर निस्तेज हो गये है। अब तो एक सिर्फ हृदय-धर्म ही बचा है, जो हमें माता की गोद में मिलता है। बाकी सम्पत्ति-शास्त्र, अर्थशास्त्र का नाम धारण कर अनर्थ कर रहा है। अब तो हृदय-धर्म को दृढ़ता से पकड़ रखेंगे और बुद्धि को विचलित नहीं होने देंगे, तभी दुनिया का उद्धार है।

—काका कालेलकर

पाशी बना दिया है इस कारण वह अपने पसको क्षोभ में परिणत करने में भी समर्थ है। ऐसी अवस्था में जबतक रूस मार्क्स की विचारधारा के किसी संशोधित स्वरूप को अब न अपनायेगा तबतक वह अमरीका के निकट न पहुँचेगा और जब तक इन दोनों में समीपता न आयेगी तबतक कल्याणकारी समाज के निर्माण का कार्य सफलता की ओर अग्रसर न होगा।

यदि रूस को एक कदम आगे बढ़ना है तो अमरीका को भी अपनी जगह पर खड़े नहीं रहना है, उसको भी कुछ प्रगति करनी होगी। शक्ति और अहिंसा का समन्वय किये बिना उसका भी कल्याण नहीं है। यदि उसने निरंकुशतापूर्वक शक्ति की उपासना की यदि उसने अपने धन-नियंत्रण द्वारा राजनीति के अनुचित मदों की सिद्धि की यदि उसने विवेक से काम नहीं लिया तो प्रकृति की वे शक्तियाँ प्रतिहिंसात्मक हो उठेंगी जो मानव-जीवन में मदोन्माद एवं शक्ति-गर्व को प्रथम स्थान देने का सदैव विरोध करती रही हैं।

संक्षेप में रूस और अमरीका दोनों को पारस्परिक संघर्षों से ऊपर मानव-कल्याण के लिए उसको उस सिंहासन पर पुनः आसीन करना पड़ेगा, जहाँसे आध्यात्मिक भाषा में दोनों ही ने उसे उतार दिया है। इस कार्यके सम्पन्न होने के दो मार्ग हैं— (१) स्वेच्छा से प्रेमपूर्वक (२) विवश होकर शस्त्र चिकित्सा के माध्यम से। संयुक्त राष्ट्रसंघ यदि चाहे तो प्रथम मार्ग को अपनाकर स्वयं तथा विश्व की मानसिक परिस्थिति को शुद्ध कर सकता है, किन्तु यदि वह ऐसा नहीं करता तो आगामी महायुद्ध द्वारा यह शस्त्रोपचार होगा जिसको संसार कभी भुला नहीं सकेगा और इसमें अमरीका को तो विशेष क्षति होगी ही रूस तथा संसार के अन्य देश भी पीड़ा से कराह उठेंगे।

इस सिलसिले में गांधीजी की विचार धारा की भी कुछ चर्चा आवश्यक है। निस्संदेह बुद्धदेव की अहिंसा की अपेक्षा वह अधिक सक्रिय और संघर्षमयी है, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि यथार्थ जीवन के पाशविक आक्रमणों के उत्तर में वह सफलतापूर्वक अपनायी जा सकती है। गांधीजी के जीवन में ही काश्मीर की परिस्थिति विवादास्पद हो उठी थी और उन्होंने उसकी रक्षा के लिए भारत द्वारा किये गये युद्ध-प्रयास को आशीर्वाद दिया था। इससे स्पष्ट झलकता है कि आत्म-रक्षा के लिए किये जानेवाले शस्त्र-युद्ध के भी वे नितान्त विरोधी नहीं थे। जो हो, उनके अहिंसात्मक युद्ध को अधिकांश में भावनात्मक युद्ध ही के रूप में

ना पड़ेगा तथा मान लेना पड़ेगा कि हिंसावादी और सत्याग्रही होने पर भी रावण जैसे धृष्ट एवं अनैतिक शत्रु के उपस्थित होने पर राम की तरह शस्त्र-युद्ध करना दोष की बात नहीं है। वास्तव में राम की नीति को ग्रहण करके ही यथासम्भव शान्तिपूर्ण समझौते के प्रयत्न के असफल होने पर अपनी शस्त्र-शक्ति के प्रयोग में लग कर हम प्रकृति के शान्त और उग्र दोनों ही रूपों का समाधान कर सकेंगे। यानी नियन्त्रित हिंसा के सहयोग से हिंसा प्रखर तथा स्फूर्तिमयी न होगी तो वह उस बादल की तरह होगी जिसमें बिजली का अभाव है, उस समुद्र की तरह होगी जिसमें बड़वानल नहीं है।

गांधीजी की अहिंसा इस समय भारतीय जीवन में कोई प्रभाव नहीं रखती, एक साधनात्मक स्तर पर रह कर, प्रयत्न-पूर्वक सीधी की गई कुत्ते की पूँछ की तरह तन कर एक विशेष परिस्थिति में उसने सफलता प्राप्त की और जब उस परिस्थिति का अन्त हो गया तब अपना आसन छोड़कर उसने भारतीय जीवन को सामान्य स्तर पर पहुँच जाने दिया। लोक-जीवन को सुसंस्कृत स्तर पर स्थित करने के लिये आज यदि हम किसी की अहिंसा एवं नियंत्रित हिंसा के समन्वित स्वरूप को लेकर चल सकते हैं तो वह राम की अहिंसा और नियन्त्रित हिंसा का ही है। रूस और अमरीका को वहीं पहुंचना पड़ेगा, शेष संसार को भी वहीं पहुँचना पड़ेगा। वही रामराज्य है, जिसमें कल्याणकारी समाज का सच्चा रूप प्रस्फुटित हुआ। रामराज्य ही में मर्यादा, अनुशासन, सेवा, त्याग आदि का वह रूप खड़ा हुआ जो अब प्रागैतिहासिक एवं काल्पनिक कह कर टाल दिया जाता है, किन्तु जो इतना यथार्थ और प्रभावशाली था कि महात्मा गांधी को भी अपने आन्दोलन की सफलता के लिए उसी को लक्ष्य बनाना पड़ा।

कल्याणकारी समाज के निर्माण का अर्थ है रामराज्य की स्थापना करना। गांधीजी के इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए, जिसे आज अधिकांश व्यक्तियों ने भुला दिया है, संसार के प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्तिभर लग जाना चाहिए। इससे अधिक सराहनीय अन्य कोई कार्य आज संसार में नहीं है।

●

यदि हम अपने गाढ़े पसीने की कमाई करते हैं तो हम कदापि धनी नहीं हो सकते। धन बिना पाप के इकट्ठा नहीं हो सकता। हमारे मरने के पश्चात् इसका लाभ नहीं। अर्थ तो अनर्थ है।

भ्रष्टाचार

[१]

'नवभारत टाइम्स'
के सौजन्य से

राष्ट्र निर्माण में—

आत्म-सुधार की देश-व्यापी आवश्यकता

डा० श्री सीताराम
[पाकिस्तानमे भारतके भू० उच्चायुक्त]

अहिसा, सत्य अस्तेय आदि धर्म के दस लक्षणों की हमारे यहा धूम है, किन्तु प्रायः मौखिक या लेखों में

हमारे यहां उपदेशों का बाहुल्य है शास्त्रों में, रचनाओं में तथा महापुरुषों की जीवनियों में, ऐसा होते हुए हमारा पतन क्यो हुआ, जिससे निकलने का अब प्रयत्न है। हम शताब्दियों से पददलित क्यों रहे और क्यो हुए, यह विचारणीय है। चरित्र-बल की कमी से नैतिक पतन हुआ। लाकेष्णा, स्वार्थ-परता, भ्रष्टाचार आदि ने दीमक की तरह हमारी जड़ खोखली कर दी और हमारे उपदेशों का वाह्यस्वरूप रहकर उनको नित्य-जीवन में चरितार्थ करना हम भूल गए, यही कारण है। हमारे यहाँ हरिश्चन्द्र के सत्य-व्यवहार का डंका है, मोरध्वज, शिवि, दधीचि की सत्यपरायणता तथा त्याग के आदर्श सामने हैं। राजपूत, मराठों के साहस-शौर्य और कर्त्तव्य-पालन के अनेक दृष्टान्त हमारे सामने हैं, फिर भी हम रसातल को पहुँचते ही रहे, क्यों?

गोस्वामी तुलसीदासने ठीक कहा है—"पर उपदेश कुशल बहुतेरे, जे आचरहिं ते जनन घनेरे।" यदि हम अपना व्यक्तिगत चरित्र ठीक करलें और धर्मनिष्ठ कर्मनिष्ठ हों तो समष्टिरूप से समाजका चरित्र उठ जाय। दूसरों के दोप-अवगुणो पर ध्यान देने के स्थान पर यदि हममे प्रत्येक व्यक्ति अन्तरात्मा को वास्तविक रूपसे देखे तो कल्याण और आनन्द है। महाभारत में कहा है—

"राजन् सर्षपमात्राणि परछिद्राणि पश्यसि।
आत्मन बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यसि"

"दूसरे के तो सरसों बराबर छिद्र देखता है अपने बेल जैसे बड़े छिद्रो को छिपाता है।"

अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि धर्म के दस लक्षणों की हमारे यहां धूम है, किन्तु प्राय मौखिक या लेखों में। हमारे परस्पर आचरणों मे, समाज के अन्तर्गत व्यवहारों में अथवा स्वदेश-परदेश के व्यापार में ये लक्षण लोप हो जाते हैं—इसी कारण विश्वास, श्रद्धा कम हो गई है। उदाहरण के लिए कलकत्ते में गोपरस को दूध न

गीत

श्री दिवाकर

बोकर तो देखो बीज मनुजता के;
यदि घृणा उगे तो तुम मुझसे कहना।

जिनके यश से इतिहास समुज्ज्वल है,
तपते - तपते ही उनके दिन बीते,
पर जीवन-सगर में धीरज के स्वर,
कालाग्नि पचाकर युग-युग तक जीते।
सुख के सागर तक जो ले जाएगी;
सीखो उस दुःख की सरिता में बहना।

ये प्रलय - घटाएँ जो सिर पर छाईं,
कुछ और नहीं, अपने कर्मों का फल,
साहस का एक झकोरा काफी है,
मत व्यर्थ करो, लोचन का लोना जल।
दिनकर का हियतल, शीतल करके ही,
बरती धरती हरियाली का गहना।

मृगतृष्णा-सी यह माया की छाया,
तुम छू न सकोगे, भ्रम है, छलना है,
समता के दीपक, कमा में बाले—
पथ पर छाया तम-तोम निकलना है।
विश्वास विजय की पहली सीढ़ी है;
सीखो निष्ठा से डग भरते रहना।

हर आँसू की अपनी फुलवारी है,
हर दर्द बना केसर की क्यारी है,
महमह महका जिससे जग का आंगन,
कुछ और नहीं बस गन्ध तुम्हारी है।
संसार उसी की पूजा कर पाया;
जो सीख गया इसकी चोटें सहना।

श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर

●

स्नेहसूत्र में ग्रथित होकर समाज जब अपनी परम्परागत संस्कृति-सम्पन्न आत्म का साक्षात्कार कर अपने राष्ट्रीय जीवन की रचना करेगा, तभी उसे संसार में गौरव तथा प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। इन सबकी संभावना राष्ट्रीय चारित्र्य पर ही निर्भर है।

आजकल देश में पंचवर्षीय योजना, आर्थिक साम्य उपायों अनेक बड़ी बड़ी आदि योजनाएं तैयार की जा रही हैं, परन्तु भारतीयों में मनुष्यत्व, चारित्र्य, समाज-सेवा, समाज के साथ एकात्मता की भावनाओं का पुनर्जागरण तथा उनके दृढ़ीकरण की योजना की जोकि आज की मूलभूत आवश्यकता है उसमें कदम उठता हुआ भी कोई दिखाई नहीं देता।

चारित्र्य निर्माण आवश्यक क्यों ?

राष्ट्रीय चारित्र्य के निर्माण का कार्य आवश्यक क्यों है? इतिहास का सिंहावलोकन करने पर हमें स्पष्ट दिखाई देगा कि राष्ट्रीय-चारित्र्य विकसित होने से राष्ट्र वैभव-सम्पन्न होता है और उसके नष्ट हो जाने से अधःपतन के गर्त में पहुँच जाता है।

राजनैतिक समस्याएं समय समय पर उपस्थित होती रहती हैं और उनका तात्कालिक समाधान भी हो जाता है किन्तु अपने सम्पूर्ण समाज में राष्ट्रीय चारित्र्य निर्माण कर उसे स्थायी बनाना अखंडरूप से चलनेवाला कार्य है। जब तक राष्ट्र जीवित है—और वह चिरन्तन हो यही हमारी इच्छा है—तबतक इस महान कार्य की आवश्यकता है।

समाज की स्थिति

आज हमारे श्रेष्ठ नेता समाज में राष्ट्रीय चारित्र्य के अभाव से चिंतित बेचैन हो उठते हैं। वे अपने सहकर्मियों और जनता की ओर निहारते हैं तो सर्वत्र चारित्र्य हीनता के तांडव-नृत्य को देखकर उनका हृदय व्यथित होता है। अधःपतन की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति ही सब ओर दिखाई देती है।

दृढ़ चारित्र्य के बल पर उन्नति को प्राप्त होने की प्रवृत्ति का कहीं नामोनिशान नहीं है। स्वार्थ-सिद्धि के लिये चाहे जो भला बुरा कृत्य करने के लिये लोग तैयार हो जाते हैं। आज यह पुकार-सी मची हुई है कि राष्ट्र के सम्मुख हजारों समस्याएं मुंह बाये खड़ी हैं। इसमें संदेह नहीं की अन्न की, वस्त्र की तथा मकानादि की अनेक समस्याएं विकट हैं, परन्तु इस हेतु निर्मित योजनाओं को कार्यान्वित करनेवाले भी स्वार्थ से अछूते नहीं हैं और इस कारण योजनाएं सफल भी नहीं हो पातीं।

राष्ट्रीय चारित्र्य की मूल भावना

व्यक्ति जीवन की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। वह नष्ट हो गया तो भी कोई चिन्ता नहीं, किन्तु राष्ट्र सुखी एवं समृद्ध होना चाहिये—यही राष्ट्रीय चारित्र्य की मूलभूत भावना है। दुर्भाग्य से इसी भावना का हमारे समाज में अत्यधिक अभाव है। राष्ट्रीय-चारित्र्य की यह मूलभूत प्रवृत्ति विगत एक सहस्र वर्षों से लुप्तप्राय हो गयी है। मेरा मान-अपमान, सुख-दुख श्रेष्ठ, अथवा राष्ट्र का कल्याण, राष्ट्र का सम्मान श्रेष्ठ? जहाँ राष्ट्र-हित को ही प्राधान्य मिलता है, वहीं राष्ट्रीय चारित्र्य रहता है।

श्री गुरुजी

केवल वैयक्तिक सद्गुणों तक ही राष्ट्रीय चारित्र्य सीमित नहीं है। अपना जीवन-सर्वस्व राष्ट्रकार्य के हेतु समर्पित कर देने की सिद्धता ही राष्ट्रीय चारित्र्य का लक्षण है। राष्ट्र की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये वैयक्तिक चारित्र्य और राष्ट्रीय चारित्र्य दोनों की ही आवश्यकता है।

हमारा आचरण कैसा हो ?

हम समाज में कैसे बोलते हैं, यह भी देखना होगा। कुछ लोग यह भी प्रश्न कर बैठते हैं कि हमारी वैयक्तिक बातों की ओर ही क्योंकर ध्यान दिया जाता है। वस्तुतः उनका जीवन स्वार्थ-साधना से ही ओत-प्रोत रहता है।

परन्तु इतना कह देने मात्र से ही काम नहीं चलेगा। आज बड़ी-बड़ी संस्थाओं में भी चारित्र्यहीनता का साम्राज्य-सा फैला हुआ है। विशुद्ध मन-वचन से जन के सम्मुख स्वाभिमान उपस्थित होने का नैतिक साहस आज किसी में रह नहीं गया है। इस कुशंकामात्र से कि आप चारित्र्य सम्पन्न क्यों कर घोषित हो सकते हैं ऐसी भीषण अवस्था आज है।

किसी प्रकार का भेद न करते हुए एक समाज-घटक के नाते अन्तर्बाह्य नित्य चारित्र्य सम्पन्न हो राष्ट्र हितार्थ सर्वस्वार्पण की सिद्धता एवं प्रेरणा के भाव जागृत करने की नितान्त आवश्यकता है। आज की सबसे बड़ी समस्या यही है।

राष्ट्रोन्नति के दो चक्र

चारित्र्य एवं संस्कृति राष्ट्रोन्नति के दो प्रधान चक्र हैं। इनकी रक्षा तथा सम्मान कर आधिभौतिक सुख-साधनों को आत्मसात करते हुए समाज में व्याप्त होनेवाली छिन्न भिन्नता नष्ट कर भारतीय जन-समाज को हम एक स्नेहसूत्र में ग्रंथित करेंगे और एक रस एक रङ्ग अति प्रबल समाज-जीवन निर्माण करेंगे। यह सकल संसार के लिये शुभ संजीवनी सिद्ध होगा। विश्व-शान्ति का पाठ पढ़ानेवाली पवित्र भारतीय भावना की गंगा अखिल विश्व में प्रवाहित होगी।

लोग विश्व शान्ति की बातें तो करते हैं किन्तु विनाश और विध्वंस के बल पे। विश्व के भौतिक विकास को देखकर आत्मविश्वास का अभाव तथा भय मालूम देता है। भयभीत मन अशान्त होता है। अशान्ति से शान्ति कैसे उत्पन्न हो सकती है?

हमें भौतिक शक्तियों से डरने की आवश्यकता नहीं। आखिर ये मनुष्य निर्मित हैं। मनुष्य निर्मित शक्तियों से मनुष्य क्यों डरे? अपने ही बाहु से डरनेवाला कायर होता। मनुष्य जिन भौतिक शक्तियों का निर्माण कर सकता है, वह उनका परिहार भी कर सकता है।

राष्ट्रीय कार्यकर्ता के गुण

हमारा काम उन सभी वस्तु-सामग्रियों को, जो विभिन्न कारणों से आज छिन्न-भिन्न दिखाई देते हैं एकता के सूत्र में गूँथना और कर्तव्य का ज्ञान कराते हुए संगठन में व्यक्ति-व्यक्ति को उसका योग्य स्थान देना है, जिससे उसकी राष्ट्र-कार्य के लिये पात्रता सिद्ध हो सके। यह कहना तो सरल है किन्तु करना कठिन है। इस सम्बन्ध में अपने व्यवहार का जो मूल दृष्टिकोण होना चाहिये उसका ही विचार करेंगे।

प्राय: दृष्टिगोचर होता है कि अपने समाज के अनेक लोगों में न तो राष्ट्र-भावना है और न संगठन का ज्ञान है। कई वार यह भी प्रतीत होता है कि वे अत्यन्त स्वार्थमय जीवन विता रहे हैं। अत तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर अपने सम्बन्ध में धन्यता का तथा दूसरों के बारे में एक हीनता का भाव मन में पैदा होता है, किन्तु यह अनुचित है। यदि हमने सबको निकम्मा समझा तो काम कैसे और क्या करेंगे?

हमें अहंभाव से मुक्त रहना चाहिये। अपने पास अनन्त गुण होते हुए भी हम यह न भूलें कि दूसरों के पास भी गुण हैं। उन्हें अपनाने से ही कार्य को प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। भगवान ने जीवन का सब प्रकाश हमें दे दिया और शेष सबका हृदय तमाग्रस्त रखा, ऐसा तो नहीं।

"कृण्वतो विश्वमार्यम्" की घोषणा करनेवाले तथा अपने को स्वाभिमान से आर्य एवं अन्यों को म्लेच्छ कहनेवाले ऋषियों ने भी यह कहा कि म्लेच्छों में भी ईश्वर का दर्शन करने की पात्रता है। अपना स्वाभिमान न छोड़ते हुए सबको अपनाकर रखने का गुण हमारे पूर्वजों ने प्रकट किया।

सबका आदर, सबका सम्मान

जिस कार्य को हम धर्म के पुन: संस्थापन का, संस्कृति के पुनरुज्जीवन का तथा राष्ट्र को पुन देदीप्यमान स्वरूप प्रदान करने का कहते हैं, उसमें अपने मन का भाव यही चाहिये कि हम सबका आदर करते हुए सबको अपने साथ लेकर चलेंगे।

यही हमारी प्राचीन परम्परा के अनुकूल है, जो सबके सम्बन्ध में आदर, शुद्ध स्नेह तथा सबके सम्बन्ध में उदात्त भावना जागृत करते हुए अपने मन की घृणा, निन्दा को हटाकर श्रद्धा का भाव ही उत्पन्न कर व्यवहार करने की है। इसी व्यवहार से राष्ट्रीय पुनरुत्थान के इतने बड़े संगठन की धारणा हो सकती है।

हम यह समझकर चलें कि चारों ओर के लोग ही गुणवान, श्रेष्ठ एवं कर्तृत्वशाली हो सकते हैं, वे कोई मूढ़ या देशद्रोही नहीं।

कई लोगों द्वारा राष्ट्र-विरोधी विचार प्रकट किये जाने पर उनकी टीका-टिप्पणी करनी पड़ती है, किन्तु ऐसा करते हुए व्यक्ति के नाते उनका सत्कार एवं गुणों को स्वीकार करके ही चलना चाहिये।

अपने सम्बन्ध में धन्यता की भावना ही औरों को हीन दृष्टि से देखने के लिये प्रेरित करती है। हम सर्वज्ञ हो गये हैं, सम्पूर्ण कर्तृत्व हमारे पास है आदि विकारों को हम छोड़ दें।

दूसरों के दोष न देखें

हमें तो यह भाव लेकर चलना चाहिये कि लोगों में जो अच्छाइयाँ दिखती हैं उनकी वृद्धि करें तथा जो दोष दिखाई दें, उनका प्रदर्शन न करते हुए अपनी अच्छाई, परस्पर स्नेह एवं भावुकता के व्यवहार से बुद्धिमत्तापूर्वक नष्ट कर दें। इतना किया तो व्यवहार के शेष गुण इनमें से ही प्रकट हो जायेंगे।

किन्तु अहंकार को पहिचानना कठिन है। कभी-कभी मनुष्य में काम तथा उद्देश्य के सम्बन्ध में आत्म-विश्वास रहता है। यदि उसमें वाणी की कुशलता न रही तो वह आत्म-विश्वास भी लोगों को अहंकार ही दिखाई देगा। अतः हमें विवेक करना होगा कि आत्म विश्वास अभिमान नहीं।

आत्म-विश्वास तो रखना चाहिये किन्तु अभिमान को स्थान नहीं देना चाहिये। आत्म-विश्वास के नाम पर अहंकार के शिकार बनना अथवा अभिमान के लिये आत्म-विश्वास खो बैठना, दोनों ही अनुचित हैं।

इससे कार्य करने की पात्रता नष्ट हो जाती है। इस दृष्टि से ठीक-ठीक व्यवहार करना कठिन तो है किन्तु करना होगा। हम आत्म-विश्वास से काम करेंगे। आत्म-विश्वास से ही सोचेंगे कि हमारा कार्य श्रेष्ठ, त्रुटिहीन तथा सर्वपूर्ण है। सब इसका अवलम्बन करेंगे किन्तु इस आत्म-विश्वास में यह दुर्भाव नहीं प्रकट होना चाहिये कि शेष दुनिया निकम्मी है और यह कुछ नहीं कर सकती।

प्राचीन परम्परा से प्रेरणा लें

इस विचार का पोषण कैसे हो? हम तनिक भूतकाल पर दृष्टिपात करें। अपने राष्ट्र की महान् परम्परा में ऐसे अनेक महापुरुष उत्पन्न हुए, जिन्होंने अपने शील, पराक्रम, त्याग तथा तपोबल से आपत्तियों में अविचल, आकर्षण में अडिग तथा व्यामोह में स्थिर रहते हुए इतनी श्रेष्ठता प्रकट की कि उनकी तुलना में हमारा जीवन नगण्य सा ही है।

उनके सामने हमारे पास अहंकार करने लायक क्या है? हाँ अपने में आत्म-विश्वास की जागृति के लिये इस श्रेष्ठ परम्परा का आदर्श अवश्य है।

अपने इस भाव में से और गुण की निष्पत्ति होगी। हम जिस समाज का संघटन करते हैं उसमें सबके सत्कार का यदि ज्ञान है तो अपनी दृष्टि से कोई ऊँचा नीचा, छोटा-बड़ा नहीं। सबके प्रति समान व्यवहार एवं प्रेम होगा और वह भी अकृत्रिमता से। कृत्रिम व्यवहार से काम नहीं चलता। अन्तःकरण से एकात्मता का भाव उत्पन्न हुआ तो ही कार्य करने की पात्रता आयेगी।

गाँव पड़ा था। छोटी जाति के कहे जानेवाले लोगों की संख्या अधिक थी। कोई भी नगर पास न था। न रेलवे स्टेशन और न डाकघर। एक छोटा सा स्कूल अवश्य था और एक अल्प-शिक्षा प्राप्त वैद्य, जो अपने को डाक्टर कहता कहलवाता था।

गर्मियों की ऋतु में इस बार कुछ पानी बरस गया। ठंडक और उमस बारी-बारी से पन्द्रह-बीस दिन आती-जाती बनी रहीं। फिर पड़ी कड़ाके की धूप। कभी गरम लू और कभी सड़ी गर्मी का सन्नाटा। इसके बाद ही गर्मी ने निर्बाध पड़ाव-सा डाल लिया। लोग हाय हाय करने लगे। असाढ़ खिंच गया। सावन आने को हुआ। बादलों के नाम से कुछ थिगड़े आकाश में इधर-उधर दिख जाते थे, परन्तु मेहकी बूंदका नाम नहीं। के दस्त की बीमारी शुरू हो गई। एक चमार के घरसे चलकर बीमारी फैलाव पर आगई। दूरवर्ती नगर से स्वास्थ्य विभाग कर्मचारी आये। कुछ लोगोंके टीके लगाये, थोड़े से व्यक्तियों की दवादारू की और डाक्टर नामधारी वैद्य को कुछ दवाइयाँ देकर दूसरे गाँव जानेको हुये, क्योंकि वहाँ भी हैजा फूट उठा था। राम और श्याम नाम के दो उत्साही युवकों को बुरा लगा। वे दोनों स्वास्थ्य विभाग के उन कर्मचारियों के पास पहुँचे।

श्यामने कहा—'इस तरह गाव की सेवा नहीं हो सकती। यहाँका वैद्य कुछ नहीं कर सकेगा। आप लोगोंमें से कोई

एक यहाँ रहे और दवा बाँटता रहे।'

कर्मचारी ने असमर्थता प्रकट की—'हम थोड़े से ही हैं। यदि एक-एक गाँव में एक-एक आ रहा तो सकड़ों गाँव बिना किसी सहायता के रह जायेंगे।'

तर्क-वितर्क के बाद तै हुआ कि कुछ दवाइयाँ इन दोनों युवकों को दे दी जायँ तो ये वितरण करते रहेंगे।

स्वास्थ्य विभागके कर्मचारियों के विदा होते ही मानो बीमारी झुककर अपना उपचार करवाने लगी। श्याम और रामने काफी तानकर बीमारी से लोहा लिया। डॉक्टर नामधारी वैद्यके उपचार से अनेक रोगियों को लाभ नहीं हुआ, जितना इन स्वयं-सेवकों के श्रमसे। थोड़े ही समय में और कई युवक इनके साथ हो गए। स्वास्थ्य विभाग के केन्द्रसे इनके पास दवाइयाँ आने लगीं।

अपना कार्य आरम्भ करने के पहले सब युवक श्याम के घर पर जमा हो जाते थे। उनके चेहरों पर उत्साह की कालिमा दृढ़ता के साथ छनी रहती थी। श्याम और राम के चेहरों पर दीप्ति और भी अधिक थी।

सन्ध्या के उपरान्त वे सब फिर इकट्ठे होते। मौसम की खराबी का उनकी आकृति पर कोई प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता था। सब हर्ष-मग्न जैसे कोई बड़ी बाजी जीतकर आते हों। जब ये दोनों दिनभर का काम करके सोने के लिये जाते तो प्रार्थना करते थे—दोनों अलग-अलग क्योंकि उनके निवास-स्थान अलग थे।

यदि कोई देखनेवाला होता तो वह दोनों के चेहरों पर एक विचित्र ज्योति अंकित करता। वे अपने चेहरे आईने में देखते भी थे।

श्याम के चेहरे पर—कुछ करने की और करते के उत्साह की बाढ़, ओजकी चमक और दृढ़ता की चमक।

रामके चेहरे पर—लगन का तेज और डाक्टर नामधारी तथा छोटे वैद्य को हराने और स्वयं वैद्य न होने पर भी उसे (डाक्टर कहलानेवाले वैद्य को) नीचा दिखाने की भावनाओं पर ओठों पर मुस्कान की रेखा। परन्तु बीच-बीच में सात्विकता की भी थोड़ी सी झाँई।

एक दिन आया जब बीमारी गाँव को छोड़कर कहीं विलीन हो गई।

अब वे दोनों और उनके साथी क्या करें? घर का काम-काज कर लेने पर भी कुछ समय बच जाता था। उस बचे समय के लिये गाँव में कोई बीमारी कोई बीमार चाहिये था परन्तु वहाँ ऐसा कुछ न था जिसके लिये उतनी दौड़-धूप, उतनी श्रम करनी पड़ती जितनी हैजे की बीमारी के दिनों में करते थे।

एक काम कुछ समय उपरान्त आ ही गया—चुनाव, पञ्चायत का चुनाव।

वह वैद्य चुनाव में खड़ा हुआ और श्याम, राम तथा उनके वे साथी भी जिन्होंने उस महामारी के दिनों में त्याग-तपस्या की थी। कई पञ्च चुने जाने थे। प्रत्येक स्थान के लिये दो दो, तीन-तीन उम्मेदवार उठ खड़े हुये।

'उस वैद्यने बीमारी के दिनों में कितनी लूट-खसोट की थी। उसे वोट मत दो!' तरह तरह से यह बात श्याम, राम और उसके साथी कहते फिर रहे थे।

वैद्य और उसके साथी इन लोगों पर कीचड़ उछालने से भला कब चूकनेवाले थे? किसी पर दुश्चरित्रताका आरोप किया गया, किसी पर छोटी जातिवालों से अपने खेतों पर मुफ्त काम कराने का और भी गन्दे आरोप किये गये।

श्यामने कहा—'मैंने और मेरे साथियों ने कितना बलिदान किया है। कितने स्वार्थ-त्याग हम सबने किये हैं, उस महामारी में!!'

रामने घोषित किया—'जब सब तरफ हाहाकार मचा हुआ था हमने जनता की सहायता में अपना दिन-रात और खून-पसीना एक कर दिया था। वोट हमारे दल को मिलने चाहियें।'

जिस-जिस ने जो जो त्याग कार्य किये थे, ब्यौरे के साथ गिनाये और कुछ बढ़ाकर भी, क्योंकि वोटरों के मन में आस्था को गहरा जो करना था।

जैसे-जैसे चुनाव के दिन निकट आने लगे वैद्य पार्टी की तरफ से गालियों और निन्दाओं की बौछार और श्याम-राम के दलवालों की ओर से विरोधियों को उँगली उठाने का जवाब तमाचे से दिया जाने लगा। इस जवाब में प्रमुखता बढ़ा-चढ़ाकर अपने त्याग-तपस्या के बखानों की रहती थी।

जिस दिन वोट पड़े जनता के भारी बहुमतने श्याम-राम के दलको जिता दिया। जीत की घोषणा के बाद जुलूस निकला, नारे लगे इतने जोर के साथ कि विजेता पसीने में तर हो गये।

जब श्याम और राम सोने के लिये अपने अपने बिस्तरों पर गये, उल्लास खर्च हो चुका था। ओज की दमक न थी।

(शेषांश पृष्ठ ७३ पर)

जब श्याम और राम सोने के लिये अपने-अपने बिस्तरों पर गये, उल्लास खर्च हो चुका था। ओज की दमक न थी। दृढ़ता चुनाव के प्रचार में लय पा चुकी थी। चुनाव की विजय ने त्याग के ओज को पी लिया था। वे अपने को रीता-रीता-सा पा रहे थे।

यदि हमारी राष्ट्र निर्माण की योजनाएं मनुष्यों को नैतिकता का पथ अपनाने को प्रेरित नहीं करतीं तो देश में धन-धान्य और वैभव-सम्पत्ति के अम्बार से ऊँचे ढेर लगाकर भी हम थोड़े से स्वार्थ के पुतलों के सिवाय और किसी का कुछ भी कल्याण नहीं कर सकते।

राष्ट्र निमाण, स्वतन्त्रता और नैतिकता

श्री निरंकारदेव सेवक एम ए

बहुत से लोग कहते हैं संसार असार है। यहां हम जो कुछ भी देखते हैं वह सब मिथ्या, भ्रम, कल्पना और माया है। संसार की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जो अन्ततः नाश को प्राप्त न हो। मनुष्य ने विज्ञान में बहुत उन्नति की। अनेक अनुसन्धान किये, अनेक तत्वों और अद्भुत प्रयोगों की उपलब्धियां कीं किन्तु आज तक विज्ञान का कोई भी आविष्कार ऐसा नहीं हो सका जिससे मनुष्य जब तक इच्छा हो जीवित रहने का उपक्रम कर सके। दुनिया के सबसे प्रसिद्ध नाटककार वैज्ञानिक बर्नार्ड शॉ को भी जब मौत आई तो अपने शरीर को छोड़ ही देना पड़ा। फिर भी संसार के सब मनुष्य जब तक जीवित रहते हैं भविष्य के निर्माण के विषय में सोचते विचारते हैं। बहुतों को अपने नहीं तो अपने बच्चों के भविष्य के निर्माण के विषय में चिन्ता होती है। वह अन्तिम समय तक संसार की वस्तुओं को इस भ्रम से बचाने सजाने-संवारने के कार्य को अपना कर्तव्य समझता है जिससे और दूसरे मनुष्यों को अधिक से अधिक सुख और सुविधायें प्राप्त हों। धार्मिक और राजनीतिक समाज-संगठन भी अपने इलाके के मनुष्यों के लिए यही बातें सोचते विचारते हैं। राज्यों में सरकारें बड़ी-बड़ी योजनाएं बनाकर उन्हें पूरा करने के लिए अपनी समस्त शक्ति का उपयोग किया करती हैं। रूस में महान क्रान्ति के बाद ऐसी पंचवर्षीय योजनाओं को कार्यान्वित किया गया, जिनके बिना रूस आज जितना शक्तिशाली बना है, नहीं बन सकता था। दूसरे देशों में इसी तरह की योजनायें बनाई जाती रहती हैं।

हमारे देश भारतवर्ष में भी एक पंचवर्षीय योजना सफलतापूर्वक पूरी की जा चुकी है और अब दूसरी पंचवर्षीय योजना के कार्य का प्रारम्भ है। इस योजना से देश को बड़ी-बड़ी आशाएं बंधाई जा रही हैं। भविष्य के सम्बन्ध

की सुख-सम्पन्नता के बड़े-बड़े रंगीन स्वप्न दिखाये जा रहे हैं। मोटरों, हवाई जहाजों और उपयोग की जिन वस्तुओं को देखकर आज हम दूसरे देशों की वैभव-सम्पन्नता पर आश्चर्य करते हैं, वह किसी दिन हमारे देश में भी सुलभ होंगी। लोग रेलों और मोटरों की बजाय हवाई जहाजों पर अधिक सफर करने लगेंगे। रेडियो, मोटर और ऐसे ही दूसरे सामान जनता में प्रत्येक व्यक्ति को पानी और हवा की तरह सुलभ हुगे। हल-बैल की बजाय मशीनों से खेती होगी और भूमि का उत्पादन पहले की अपेक्षा सहस्र गुना बढ़ जायेगा। वर्षा यन्त्रों द्वारा हम अपनी इच्छा से जब चाहें कर सकेंगे। सूरज की किरणों की गर्मी और प्रकाश से पूरा पूरा लाभ उठाने के लिए हमारे पास बड़ी-बड़ी अद्भुत मशीनें होंगी। पहाड़ों और जगलों को हम बात करते फूक मार कर साफ कर सकेंगे। नदिया जहां बहती हैं, वहां रेगिस्तान और जहां पानी एक बूंद नहीं मिलता, वहां चमन बना देना हमारे बायें हाथ का खेल होगा। कपड़े और खान-पान की वस्तुओं का उत्पादन इतना अधिक बढ़ जायेगा कि आज की तरह कोई भी गरीब, भूखा या भिखमगा कहीं ढूँढ़े भी नहीं मिलेगा। सबके पास रहने को अच्छे मकान होंगे।

हम सबों ने व्यापार को ही जिन्दगी बना रखा है और यही कारण है कि व्यापार की जडता सक्रामक रोग के कीटाणुओं की तरह हमारी आत्मा में घर बना लेती है। हम जीवन में रस खोजते हैं, चारों ओर भटकते हैं, लेकिन वह हमें नहीं मिलता। अधे आदमी की तरह पैसे जैसे जडतत्व से हम चिपक जाते हैं।

व्यापार (द्रव्य की सेवा) जिन्दगी नहीं है। हाँ, जिन्दगी स्वय एक व्यापार अवश्य है, जिसके नियमों को जानकर हम सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं।

बिजली पानी पंखा हर प्रकार की सुविधायें प्राप्त होंगी।

कुछ इस प्रकार के मनोमोहक स्वप्नों पर विश्वास कराके जनता से यह आशा की जा रही है कि वह इस योजना को सफल बनाने के लिए तन, मन, धन से सहयोग दे। महाकवि विद्यापति की एक उक्ति याद आती है 'दुख सह-सह सुख पाओल ना। अर्थात् दुख सह-सह कर सुख प्राप्त करो न। हमारे वर्तमान शासकों का भी यही कहना है कि इस समय जनता चीजों के अधिक से अधिक महगे दाम दे, जिससे भविष्य में चीजें

उसे सस्ती मिलें। करों का अधिक से अधिक भार धन वहन करें जिससे सरकार अपनी योजनाओं को सफल बनाने में समर्थ हो सके। वर्तमान के अभाव और भविष्य के इस नव-निर्माण के बीच देश के मनुष्यों की मानसिक स्थिति को संतुलित रखना हमारे शासकों की एक सर्व प्रधान समस्या है। संतुलन यदि न रह सका तो योजना के सफल होने की तो बात ही क्या है देश की सुख-शान्ति भी खतरे में पड़ सकती है।

योजनाओं को सफल बनाकर देश को धन-धान्य और वैभव-सम्पत्ति से भर देनेका उद्देश्य यही हो सकता है कि देशके निवासी अधिक से अधिक सुखी और सम्पन्न हों पर यह सुख-सम्पन्नता प्राप्त करना भी अकेला उद्देश्य नहीं हो सकता। मनुष्य इसे इसलिए चाहता है कि वह अपने व्यक्तित्व को अधिकाधिक विकसित करने की सुविधा प्राप्त कर सके। व्यक्तित्व के विकास से तात्पर्य उन सब शक्तियों के विकास से है जो मनुष्य में स्वाभाविक और जन्मजात हैं। इन शक्तियों में सब से प्रमुख और अपनी स्वतन्त्रता की प्राप्ति है। कोई भी मनुष्य संसार में ऐसा नहीं जो स्वतन्त्रतापूर्वक न रहना चाहे। इस स्वतन्त्रता के रूप और उसके लिए किए गए प्रयत्नों के प्रकार सतत परिवर्तनशील हैं। सबके लिए एक ही प्रकार की स्वतन्त्रता सदा के लिए और वांछनीय नहीं हो सकती। सभ्यता संस्कृतियों का सारा विकास सारी देशों और समाज-संगठन एवं आदर्श सम्बन्धी और मान्यतायें मनुष्य ने अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति और उसकी रक्षा के लिए ही प्रयोग करके स्वीकार की हैं। हमारा समस्त राजनीतिक संगठन और आर्थिक व्यवस्था भी इस स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए ही की गई है।

समाज में प्रत्येक मनुष्य यदि अधिक रूप से सारी स्वतन्त्रता का उपयोग स्वयं करना चाहे और दूसरे किसी मनुष्य को उसकी अपनी स्वतन्त्रता का उपयोग न करने दे तो कोई भी व्यवस्था, संगठन, आदर्श या परम्परा हमारे समाज में प्रचलित नहीं रह सकती। मनुष्य स्वार्थवश अपनी स्वतन्त्रता को सब से अधिक महत्व देता है किन्तु वह उसे वहीं तक सीमित रखता है जहाँ तक वह दूसरों की स्वतन्त्रता में बाधक न हो। वह अपनी स्वतन्त्रता की ही तरह दूसरों की स्वतन्त्रता का भी आदर करता है। क्योंकि यदि वह ऐसा न करे तो उसकी अपनी स्वतन्त्रता भी खतरे में पड़ सकती है। यही भावना मनुष्यमात्र की नैतिकता का आधार है। समाज का कोई भी संगठन कोई भी

राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक या किसी भी प्रकार की व्यवस्था संसार में नहीं चल सकती, जबतक उसका आधार यह नैतिकता की भावना न हो। नैतिकता की इस भावना का भी नित-नूतन परिष्कार समय और परिस्थितियों के अनुसार होता रहता है, पर उसका मूल-रूप सदैव एक सा ही रहता है।

वर्तमान काल में जब से हमारे देश को राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है, मनुष्यों की नैतिकता का स्तर बहुत नीचे गिर गया है। छल-कपट, झूठ का प्रचार बहुत अधिक बढ़ गया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मनुष्य फूंक-फूंक कर कदम रखता है, तब कहीं छल-कपट, दम्भ और झूठ के कुचक्र या जाल से उसकी रक्षा हो पाती है। किसी सरकारी या गैर-सरकारी आफिस, बाजार-हाट, स्कूल-कालिज, अस्पताल में जाकर देखें एक पूरे सत्यवादी और ईमानदार मनुष्य को हर सांस में कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ऐसे वातावरण में मनुष्य आत्म-विश्वास खोकर अनैतिकता के पथ का अनुगामी हो जाता है। वह अपनी स्वाभाविक स्वतन्त्रता की भावना को भूलकर, अपने धर्म-ईमान को वेचकर भौतिक सुखों की आशा से परिस्थितियों का दास बन जाता है। नैतिकता क्या है इसे विचार ने का उसे अवसर ही नहीं मिल पाता। वह उन सब अनैतिकता के तरीकों को अपनाने में ही अपना कल्याण समझने लगता है, जिनसे बचने के लिए परिश्रम करने में उसे सफलता नहीं दिखाई देती। इसलिए देश को यदि अनैतिकता की ओर तेजी से अग्रसर होने से बचाना है, मनुष्य के खोये हुए आत्म-विश्वास फिर से जगाना है। उनमें भविष्य के सुख-स्वप्ना के लिए नवीन उत्साह भरना है तो प्रत्येक राष्ट्र-निर्माण की योजना को इस प्रकार से बनाना पड़ेगा, जिससे मनुष्य नैतिकता के पथ पर चलने के लिए प्रेरित और उत्साहित हो सकें। यदि हमारी निर्माण की योजनायें मनुष्यों को नैतिकता का पथ अपनाने को प्रेरित नहीं करतीं तो देश में धन-धान्य और वैभव सम्पत्ति के अबर-से ऊचे ढेर लगाकर भी हम थोड़े से स्वार्थ के पुतलोंके सिवाय और किसीका कुछ भी कल्याण नहीं कर सकते।

(पृष्ठ ६९ का शेषांश)

दृढ़ता चुनाव के प्रचारमें लय पा चुकी थी। चुनाव की विजय ने त्याग के ओज को पी लिया था। वह अपने को रीता-रीता-सा पा रहा था।

और राम के चेहरे पर न तो लगनका तेज था और न सात्विकता की कोई झांई। वह सब कहां चला गया था? वह अपने विरोधी को हरा देने पर भी भीतर-भीतर खोखलापन अवगत कर रहा था।

गद्य गीत—

निर्माण और नाश

मुनिश्री पुष्पराजजी

पथिक अविरल गति से चल रहा था।
सूर्य की प्रथम किरण में मंजिल पाने की धुन में बढ़ते हुए अमर बटोही ने
प्रथम दर्शन किये।
उज्ज्वल रश्मि के आलोक में पथिक ने दही और मथनी का आलोड़न देखा।
वह अनिमिष लोचन से देख रहा था—"देखें इस संघर्ष में कौन जीते ? किसे
गले में जयमाला पहनाई जाये ?"
देखते ही देखते मन्थन का निष्कर्ष पराजय रूप में नहीं परन्तु उपहार स्वरूप
नवनीत के रूप में उपलब्ध हुआ।
उसकी समझ में आया—"यह संघर्ष नहीं, किन्तु मन्थन है।"
अनंत के अंचल से एक स्वर लहरी पथिक के कानों से टकराई—
पथिक जरा मुड़कर देखो गगनचुम्बी नगराज (पर्वत) की ओर !
पथिक ने देखा भीषण तूफान से दो काष्ठ उपलों का परस्पर संघर्ष हो रहा था।
वह इस बार भी जय-पराजय की प्रतीक्षा करने लगा।
कुछ क्षणों में ही उस संघर्ष से स्फुलिंग कण उछलने लगे।
अग्निकणों में दोनों ने जलकर ज्वालामुखी का रूप धारण कर लिया
और तूफान के साथ असंख्य प्राणियों के जीवन से खिलवाड़ होने लगी।
पथिक को रहस्य समझते देर न लगी। वह चौंक गया।
"यह संघर्ष का निष्कर्ष है।" इसे ही 'संघर्ष' कहते हैं।
पथिक ने आज अपनी डायरी के पृष्ठों पर लिखा—
"मैं मन्थनवादी बनूँगा संघर्षवादी नहीं।"
"जीवन में विरोधी तत्वों के साथ मन्थन होना चाहिए संघर्ष नहीं"
"मन्थन से निर्माण होता है संघर्ष से विनाश"
"मन्थन से मक्खन निकलता है संघर्ष से स्वाहा (राख) होता है।"
'मन्थन निस्सार को पृथक कर दही को सारांश विशुद्ध नवनीत में परिणत कर
देता है'
"संघर्ष दोनों प्रतिद्वन्द्वियों को जलाकर विश्व के लिए खतरा पैदा कर देता है"

मैं करता हूं प्यार सदा निर्माण से !

[श्री परमेश्वर द्विरेफ]

मैं करता हू प्यार सदा इन्सान से
अन्धकार हटता मेरी मुस्कान से
चलता जाता अपना पन्थ बुहारता
जलता जाता, मैं न पन्थ पर हारता
मुक्त कंठ से करता वितरित गीत मैं
नहीं किसी के आगे हाथ पसारता
थककर, झुककर, गिरकर, उठना चाहता
मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं वरदान से

सीमाओं में काया मेरी बन्द है
किन्तु सजीले प्राण सदा स्वच्छन्द हैं
चट्टानें हैं, शूलों का जजाल, पर
फिर भी मेरी प्रगति नहीं कुछ मद है
झुक जाता हू मानवता के द्वार पर
मैं करता हूं प्यार सदा तूफान से

मेरा स्वर वन्दी का बन्धन खोलता
रुँधे कठ पर मधु मिश्री सी घोलता
थके, झुके पर कोई अत्याचार हो
तो चुपचाप नहीं रहता, मैं बोलता
सकट में भी मैं कर्तव्य सम्हालता
मै करता हू प्यार सदा बलिदान से

नहीं किसी का शोषण कर मै फूलता
मन के निमल झूले पर मै झूलता
आकुल प्राणों की भापा पहिचानता
नयनों के जल को न कभी मै भूलता
स्वर्ण-पाश पर मैं न बेचता भावना
मैं करता हूँ प्यार सदा ईमान से।

हैं और रात-दिन उसीके सपनो मे खोए रहते है। अभिनेत्रियों को प्यार-भरे पत्र लिखे जाते हैं। शादी के लिए निवेदन किए जाते हैं और भी न जाने क्या क्या भद्दी बातें लिखी जाती है, जिन्हे दुहराना अनुचित ही होगा। कुछ दिनों के बाद वे सपने मे देखते हैं कि वे दुल्हा बनकर किसी विशेप अभिनेत्री के दरवाजे पर जारहे हैं।

अभी पिछले दिनों की बात है। एक युवक बम्बई आया। उसके साथ एक अभिनेत्री की अनेक तसवीरें थीं। गरीब मा-बाप का लड़का था, लेकिन नौकरी के बहाने वह बम्बई के लिए चल पड़ा था। मां-बाप ने किसी प्रकार धन ,एकत्रित कर उसे भेज दिया होगा और बम्बई में आकर उसने नौकरी खोजने के स्थान पर उस विशेप अभिनेत्री के घर के चक्कर लगाने शुरू कर दिए। बेचारा उससे मिलने भी न पाया तो निराश होकर लौट गया। न जाने किस शुभ घड़ी में वह अपने घरसे चला था और घर लौटकर भी वह उस अभिनेत्री को न भूल सका। अपने एक मित्र को पत्र लिखा कि यदि सम्भव हो सके तो उसका एक पत्र वह उस अभिनेत्री को पहुँचा आए। यह दशा है हमारे नवयुवकों की। जीवन खोखले होते चले जारहे है लेकिन उन्हे तनिक भी परवाह नहीं। बम्बई के दोनों स्टेशनो पर हर रोज कोई न कोई हीरो बनने के सपने सँजोकर उतरता है। शायद ही इन स्टेशनों के इतिहास में ऐसा दिन बीता होगा, जबकि ऐसा न हुआ हो।

समाज में व्यभिचार फैलाने और राष्ट्रीय चरित्र पर आघात करने-वाले चित्रों के निर्माण के लिये, केवल जनता को ही दोषी नहीं ठहराया जा सकता। यदि कोई पीने के लिये जहर माँगे, तो क्या उसके होठों से जहर का प्याला लगा दिया जाता है ? यदि नही तो फिर जनता की माँग पर भावना-रहित, कामुकतापूर्ण, अश्लील और भद्दे चित्रों का निर्माण क्यों होता है ?

परन्तु इसका कारण क्या है ? यदि सूक्ष्मरूप से निरीक्षण किया जाय तो सिनेमा द्वारा फलाया हुआ विलासितापूर्ण वातावरण ही इसका मूल कारण है।

आज चलचित्र-निर्माताओं का उद्देश्य भोली जनता को उल्लू बनाना रह गया है। वे जनता की जेबें खाली करके अपनी जेबें भरने के लिए लालायित रहते हैं। मनोरंजन के नाम पर ऐसी फिल्मों का निर्माण किया जाता है, जिनमें असभ्य नाच-गाने, हल्की मनोवृत्ति को उभाड़ने-

गाने रस और उछल-कूद के अलावा कुछ भी नहीं होता। समाज-सेवा की बात फिल्म निर्माताओं के मन में सपनों तक में नहीं आती।

दर्शक जब कोई चित्र देखकर लौटता है तो उसकी बड़ी विचित्र दशा होती है। उस समय उसके मस्तिष्क में मेकअप की अलौकिक महिमा का चमत्कार व अभिनेत्री का रति-सा सुन्दर मुखड़ा घूमता होता है। नायक की प्रेमभरी बातें, नायिका की मोहकियां और रोमांच के दृश्य उसे बार बार याद आते हैं। इन्हीं कल्पनाओं में डूबा हुआ जब वह घर में पहुंचता है तो अपनी पत्नी से भी बहकी-बहकी बातें करने लगता है। वह बेचारी खाना लेकर साहब का इन्तजार कर रही होती है और साहब हैं कि प्रेम की बातें अलाप रहे हैं।

आज जिन फिल्मों का निर्माण हो रहा है, उनसे समाज का ढांचा हिल उठा है। नवयुवकों के जीवन चरित्रहीन, शक्तिहीन, दुबले और अव्यवस्थित हो गये हैं। सिनेमा देखने का शौक इस सीमा तक बढ़ गया है कि पेट काटकर भी लोग सिनेमा देखने जाते हैं। भूखे रह सकते हैं, लेकिन सिनेमा जरूर देखेंगे क्योंकि चित्र में मीनाकुमारी ने काम किया है।

समाज में व्यभिचार फैलाने और राष्ट्रीय-चरित्र पर आघात करनेवाले चित्रों के निर्माण के लिए केवल जनता ही ही दोषी नहीं ठहराया जा सकता। यदि कोई पीने के लिए जहर मांगे तो क्या उसके होठों से जहर का प्याला लगा दिया जाता है? यदि नहीं तो फिर जनता की मांग पर भावना-रहित अस्वस्थतापूर्ण गन्दे और भद्दे चित्रों का निर्माण क्यों होता है?

निर्माता कहते हैं कि अमुक प्रकार के चित्रों को जनता पसंद करती है। बिलकुल ठीक है। रोगी भी मर जाना पसंद करता है। निरंतर बीमार रहने से उसके मन में मर जाने की बात जोर पकड़ती जाती है लेकिन उसे मरने थोड़े ही दिया जाता है। उसे दवा दी जाती है जो कि कड़वी भी हो सकती है और मीठी भी। कड़वी चीज को मीठी वस्तु के साथ मिलाकर दिया जाता है तो फिर निर्माता ही रोग बढ़ाने का काम क्यों करें, समाज के लिए उपयोगी चित्रों को लेकर सामने आएं, जनता के विकारों को लोगों के सामने रखें लेकिन इस तरह कि वे विकारों को समझने के साथ-साथ उन्हें दूर करनेका विचार भी लेकर जाएं। देखें, जनता सुन्दर चित्रों की कब तक अवहेलना करती है। प्रश्न उठ सकता है कि चलचित्र-निर्माता अच्छी चीज क्यों दें? उनके पास हानि सहन करने के लिए धन भी अधिक नहीं। महीनों के

भूखे को भर-पेट खाना भी तो नहीं खिलाया जाता। उसके पेट में खराबी पैदा हो जाने की आशका रहती है। एक साथ पचना भी कठिन हो जाता है।

भारत स्वतत्र हो चुका है। अब उसे दुनियावालों के सामने एक आदर्श रखना है। केवल आर्थिक दृष्टिकोण से ही नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक दृष्टिकोण से भी और फिल्में इस दिशा में बहुत बड़े हथियार का काम करती हैं। भारतीय फिल्मों का प्रदर्शन अब विदेशों में भी होता है। विदेशी लोग उन चित्रोंसे हमारे बारे में अपनी धारणाए कायम करते हैं। इसलिए समय आ गया है कि चल-चित्र-निर्माता जाग जाएं और भारत के भविष्य को उज्ज्वल बनाने में सहयोग प्रदान करें।

तथाकथित सभ्यता के निर्माण की भूख में आज—

हम किस ओर जा रहे हैं?

आचार्य पं० सूर्यनारायण व्यास

कहते हैं कि हमारा 'स्तर' उठाया जानेवाला है। हमें सभ्य देशों के समाज की तरह जीने रहने की सुविधाए प्राप्त होंगी और हम सिर उठाकर 'सभ्य' की तरह रह सकेंगे। पता नहीं, हमारे सभ्य बनने की परिभाषा कौनसी होगी? और जीवन स्तर कैसा होगा? यदि हमारी 'सभ्यता' पश्चिम के भौतिकवाद की आधारशिला पर पोषित और विकसित होना चाहती है और हमारे 'स्तर' का मानदण्ड भी वही रहेगा तो निश्चय ही मानव की आवश्यकताए और उसकी ऊँचाई तो बढ़ती जायगी, पर उसकी मानवता का अध पात अवश्यम्भावी है। आज अत्यन्त उन्नत सभ्य समझा जानेवाला पश्चिम, भौतिक भावना से ऊब गया है। उसके जीवनानद की क्षणिकता ने उसे आत्मानद की ओर प्रेरित करना आरंभ कर दिया है। तब हम उसका और तीव्रता से अनुगमन कर अपनी 'सभ्यता' एव 'स्तर' का निर्माण करना चाहते हैं। पश्चिम का मानव अँधेरे पथ में भटक रहा है और हम आध्यात्मिक प्रकाश की अवहेलना कर उसी अँधेरे में भटकने की भूल करना चाहते हैं। भारतवर्ष वह देश है, जहां मानवता ने चरम उत्कर्ष साध्य किया है, परन्तु आजके भौतिकवाद

में पथ-भ्रान्त पश्चिमी मानव को 'मानव अधिकार-रक्षा' की चिन्ता से चिपका होना पड़ रहा है। एक-दूसरे के अधिकार को कुचलने के कुचक्र में उसकी समस्त शक्ति और गति गतिशीलता दिखला रही है। ऐसी स्थिति में पश्चिम के जिस उच्च-स्तर को छूने के लिये यत्नशील हैं उस स्तर पर पहुँचकर हृदय जैसी मूल्यवान और अमूल्य निधि रखनेवाला मानव मानवता को खोकर मशीन बनने का गर्व अनुभव करता है। हमारी सभ्यता में प्रतिस्पर्धा को पापमय माना जाता रहा है और हृदय की पवित्रता को पुण्य की पूँजी। पर जहाँ मानव इस पवित्र पूँजी को पश्चिमी सभ्यता की भेंट चढ़ाकर पाप का बोझा ढकेलने के लिए आतुर बन बैठता है उसके 'भौतिक-स्तर' की ऊँचाई का नाम चाहे वह भले ही 'आकाश' की चिरमिलन के गगनोन्मुख रूप को माने पर वास्तव में हमारी सभ्यता के अनुरूप वह गहरे पाताल-लोक के अन्धकूप की निचाई में ही गिर जाता है।

भारतवर्ष की सभ्यता में मानव को सर्वश्रेष्ठ माना है इस पर भी प्राणिमात्र की महत्ता को किसी प्रकार कम नहीं समझा गया है। हिंसक और घातक पशु-पक्षी जन्तु-कीट तक की जननी ही कीमत की गयी है अहिंसा की उत्पत्ति ही इसी भव्य भावना पर आश्रित है। प्राणिमात्र की रक्षा और आवश्यकता को महत्व दिया गया है। कुत्ते और आम्लाक तक को सम दृष्टि से देखने का उपदेश है। ऐसी अवस्था में किसी को मानव के प्रति उस सभ्यता में तिरस्कार करने की कल्पना ही नहीं की जा सकती। धर्म भेद व जाति-भेद के सवाल ही नहीं उत्पन्न हो सकते, पर आज अपने देश में जो कुछ देख रहे हैं, वह सब भेद-भाव सभी मानवीय भावों की अपेक्षा धार्मिक व सब अब भौतिक भावना की ही देन है, जिसने हमें वर्ग-संघर्ष, भेद भाव और मानवता की अवहेलना करने के लिये प्रेरित किया है और जिसके आधार पर हमारा 'अस्त' पड़ता चलनेवाला है एवं हम अधिक 'सभ्य' बनने को आतुर हैं। अनैतिकता का जनक भौतिकवाद है और हम इसीकी कराहना में आँखें मूंदकर स्वार्थ की साधना करते जा रहे हैं। इसका परिणाम यह है कि हम निरंतर मानवता के मूल्य को भुलाते जा रहे हैं। हमारा लक्ष्य स्वार्थ है, अपनी उन्नति है। समाज के प्रति, मानव के प्रति भी हमारा कोई कर्तव्य है परन्तु, ईमानदारी पवित्र-भावना या पुण्य भी है, इसकी किंचित कल्पना भी हम नहीं करना चाहते। जिस पुण्य-पाप की आध्यात्मिक भावना, पवित्र-परिभाषा ने हमारी मनुष्यता को बनाये रखा है उसे अपने भौतिकवादी भ्रम में पड़कर उपेक्षित (उपेक्षण) करके

आचार्य पं० नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ, कुलपति
[गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर]

भारतवर्ष को स्वतन्त्रता मिले दस वर्ष हो गये। इसकी प्रथम पञ्चवर्षीय योजना, जैसी भी थी, समाप्त हो गयी। उसमें बहुत कुछ हुआ, बहुत कुछ रह गया। मैं "बहुत कुछ रह गया" लिख रहा हूँ, इसलिए कि उस प्रथम योजना में यह त्रुटि रह गयी थी कि उसमें ग्रामों की ओर ध्यान नहीं दिया गया था। प्रधानमन्त्री श्री नेहरू ने इस बात को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है।

अब द्वितीय पञ्चवर्षीय-योजना का श्रीगणेश भी हो गया और 'यह करेंगे वह, करेंगे, ऐसा होगा, वैसा होगा, कष्ट सहकर भी इस योजना को पूर्ण करेंगे' ऐसी कल्पनाएँ हो रही हैं।

अरबों की स्कीमें हैं। पैसा, पास कम और काम उठाया इतना बड़ा और इतना भारी। कर्जा लिया जारहा है, कर-भार बढ़ाया जारहा है, लोग कर-भारों के मारे चिल्ला रहे हैं। सरकार कहती है कि यह तो करना ही पड़ेगा, यह तो सहना ही पड़ेगा, देश की आर्थिक दशा को ठीक करना हो तो सब कुछ सहन करना ही होगा इत्यादि।

कई अर्थशास्त्रियों का मत है कि इतना बड़ा काम पाँच वर्षों में कभी पूरा नहीं हो सकेगा। इसलिए 'पञ्चवर्षीय' ऐसा न रखकर 'पञ्चदसवर्षीय' या 'विंशति वर्षीय' योजना रखें, जिससे जनता पर कर-भार भी कम पड़ेगा और काम भी अच्छा होगा, पर सरकार अब तुल ही गई है। हमारा खयाल है कि काम तो बहुत होगा, पर जितनी बड़ी स्कीम है उसका चौथाई भी काम पूरा हो जाय तो हम इसे बड़ी कामयाबी समझेंगे।

अस्तु, बड़े बड़े बाँध बँधेंगे, सहस्रों सड़कों, पुलों का निर्माण होगा। घर-घर बिजली दौड़ाने का प्रयत्न होगा, रेलोंका विस्तार होगा और न जाने क्या-क्या होगा, क्योंकि पता नहीं इस योजना में कितना धन सार्थक व्यय होगा और कितना निरर्थक जायगा, इस बात को कौन कह सकता है? इसलिए कि सरकार का ध्यान सब प्रकार के निर्माणों की ओर गया है,

सच तो यह है कि आप ईमानदारों को चाहते ही कहाँ हैं!

आप तो चाहते हैं पूरे, पक्के परले सिरे के बेईमानों को जो आपके लिये धन-धन को सफ-चपोट करें, दुनिया के गले पर छुरी फेर दें।

हाँ, ईमानदारी का उनके इतना प्रभाव जरूर बना रहना चाहिये, जिसकी बदौलत वे आपसे व्यवहार में रत्ती-रत्ती ईमानदार रह सकें; आप पर भूल से— सपने में भी वार न करें; पर ही आप की खातिर बिना बेरहम सब पर वार पर वार किये चले जाएं रात दिन— निमिषार्ध को भी सोचे बिना।

ईमानदारी न सही, उसकी यह पूँछ भी महत्व की वस्तु है।

इसीलिए तब (क्या कहूँ!) की पूछ होती है। वे पूँछदार आदमी (कुछ और न समझ लीजिये) जाने क्या बन जाते हैं।

क्यों ठीक कह रहा हूँ न!

घबरायें मत मुस्काइये। जवाब दीजिये।

मन का चोर जब पकड़ में आ गया है तो छुप जाइये।

सच कहता हूँ आप या तो निपट भोले हैं अथवा अत्यधिक बुद्धिमान।

मुझे आपके भोलेपन पर तरस आता है बुद्धिमत्ता पर हँसी।

बेईमान की चाह मन में रखकर (भले ही 'स्व' के लिये ईमानदार हों पर 'स्व' 'पर' से अलग कहाँ है।) आप ईमानदार की खोज करने चले हैं! दुनिया के होकर, दुनिया में रहकर दुनिया को ही ठगने चले हैं।

यह असम्भाव्य कैसे सम्भव हो!

काश आप स्वयं ईमानदार होते और यह जानते कि 'स्व-पर' में अन्तर इतना है, अंश का समग्र से अलग अस्तित्व नहीं है, तो आप इस तरह भटकते नहीं।

तब आपकी चाह सच्ची चाह होती और खोज यथार्थ खोज होती।

और चाह की राह है ही; खोज स्वयं की जननी बनती ही है।

जैसे ही जैसे को वैसे मिले—सदा-परखा सिद्धान्त है।

अगर इतना भर होता ही आपको ईमानदारों की खोज नहीं करनी पड़ती। स्वतः लाखों मिले होते वे.. लाखों! दुनिया में कमी किस चीज की है!

कहिये, कुछ आया दिमाग में बैठ दिल में!

आ रहा है। बैठ रहा है। मैं देख रहा हूँ—

चुप-चुप दिल थामे हुए कुछ सोच रहे हैं आप।

बस, फिर न कहना—

"ईमानदार आदमी नहीं मिलते!"

●

आचार्य प० नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ, कुलपति
[गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर]

भारतवर्ष को स्वतन्त्रता मिले दस वर्ष हो गये। इसकी प्रथम पञ्चवर्षीय योजना, जैसी भी थी, समाप्त हो गयी। उसमें बहुत कुछ हुआ, बहुत कुछ रह गया। मैं "बहुत कुछ रह गया" लिख रहा हूँ, इसलिए कि उस प्रथम योजना में यह त्रुटि रह गयी थी कि उसमें ग्रामों की ओर ध्यान नहीं दिया गया था। प्रधानमन्त्री श्री नेहरू ने इस बात को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है।

अब द्वितीय पञ्चवर्षीय-योजना का श्रीगणेश भी हो गया और 'यह करेंगे वह, करेंगे, ऐसा होगा, वैसा होगा, कष्ट सहकर भी इस योजना को पूर्ण करेंगे' ऐसी वरगनाएँ हो रही हैं।

अरबों की स्कीमें हैं। पैसा, पास कम और काम उठाया इतना बड़ा और इतना भारी। कर्जा लिया जारहा है, कर-भार बढ़ाया जारहा है, लोग कर भारों के मारे चिल्ला रहे हैं। सरकार कहती है कि यह तो करना ही पड़ेगा, यह तो सहना ही पड़ेगा, देश की आर्थिक दशा को ठीक करना हो तो सब कुछ सहन करना ही होगा इत्यादि।

कई अर्थशास्त्रियों का मत है कि इतना बड़ा काम पाँच वर्षों में कभी पूरा नहीं हो सकेगा। इसलिए 'पञ्चवर्षीय' ऐसा न रखकर 'पञ्चदसवर्षीय' या 'विंशति वर्षीय' योजना रखें, जिससे जनता पर कर-भार भी कम पड़ेगा और काम भी अच्छा होगा, पर सरकार अब तुल ही गई है। हमारा खयाल है कि काम तो बहुत होगा, पर जितनी बड़ी स्कीम है उसका चौथाई भी काम पूरा हो जाय तो हम इसे बड़ी कामयाबी समझेंगे।

अस्तु, बड़े बड़े बाँध बँधेंगे, सहस्रों सड़कों, पुलों का निर्माण होगा। घर-घर बिजली दौड़ाने का प्रयत्न होगा, रेलोंका विस्तार होगा और न जाने क्या-क्या होगा, क्योंकि पता नहीं इस योजना में कितना धन सार्थक व्यय होगा और कितना निरर्थक जायगा, इस बात को कौन कह सकता है? इसलिए कि सरकार का ध्यान सब प्रकार के निर्माणों की ओर गया है,

जाता है, जानना भी। पर मुख्य निर्माण मनुष्य-निर्माण की ओर ध्यान कम है, जितना चाहिए उतना नहीं है। बाकी योजनाओं पर जितना धन व्यय होता उसका चतुर्थांश भी यदि मनुष्य-निर्माण पर नहीं होनेवाला।

मनुष्य निर्माण होगा यथार्थ शिक्षा से और इसके कमीशन बैठे, इनके कमीशन संसार में घूम आये इनकी इतनी बड़ी-बड़ी रिपोर्टें बन गईं पर हमारी सरकार अब तक यह निर्णय नहीं कर सकी कि भारत के

बैलगाड़ी की सभ्यता बहुत अच्छी है, क्योंकि उस युग में, उस समय के शासकों को 'मनुष्य निर्माण' की अधिक चिन्ता थी और वे समझते रहे कि मनुष्य-निर्माण के बिना संसार की समस्त योजनाएं व्यर्थ हैं।

मनुष्य निर्माण में मुख्य बात चरित्र है, जिससे मनुष्य मनुष्य बनता है। किसी समय हमारा भारत संसार की चरित्र शिक्षा का केन्द्र था और हमारे प्राचीन पुरातन गुरु ऋषि-मुनि शिक्षा-शास्त्रियों का संसारके लिए खुला निमन्त्रण था कि—

बच्चों को किस प्रकार की शिक्षा-दीक्षा दी जाय, जिससे मनुष्य निर्माण हो और यह मनुष्य-निर्माण तबतक सफल नहीं हो सकेगा, जबतक भारत में भारतीय ढंग की शिक्षा प्रचलित न हो। आजकल हमारी प्राचीन शिक्षा-दीक्षा, संस्कृति-सभ्यता की हँसी उड़ाई जाती है कि इस युग की मोटरकार, वायुयान की सभ्यता के दिनों में क्या लिये बैठे हो "बैलगाड़ी की सभ्यता" के दिनों की बात। हम कहते हैं कि इस वर्तमान युग की सभ्यता से हमारी

एतद्देश प्रसूतस्य,
सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्
पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ (मनु)

हे संसार के लोगो आओ और इस (भारत) देश के अग्रजन्मा ब्राह्मण शिक्षा शास्त्रियों से चरित्र-शिक्षा ले जाओ।

हमारे देश से अंग्रेज गया, उसका राज गया, अपना राज आया तो भी यही अंग्रेजी ढर्रे वही अंग्रेजों का—शासकों का—अन्धानुकरण चल रहा है, कोई नहीं सोच रहा है। सोच रहे हैं, तो उनकी

[स]मझ में ही नहीं आरहा है कि क्या करें ?
[आ]ज पाश्चात्य ढंग के अध्यात्मशून्य कोरे
[भौ]तिकवादी निर्माण में ही संलग्न है,
[क]वि अकबर ने क्या ही अच्छा कहा है—

[दे]खता जाता है यूरप,
आसमानी बाप को।
[उ]स खुदा समझा है इसने,
वर्क को और वाफ को।
[व]र्क गिर जायेगी इक दिन,
और उड़ जायेगी वाफ।
देखना अकबर, बचाये
रखना अपने आपको।

यूरोपवाले बिजली और भाप के पीछे पड़ गये हैं, हम भी बिजली और भाप के पीछे पड़ चले हैं। पाश्चात्यों का समस्त निर्माण बिजली और भाप पर निर्भर है और समझ बैठे हैं कि "कोन्योऽस्ति सदृशो मया" हम जैसा कौन है ? ऊपर बैठे हुए भूमा सर्व शक्तिमान तत्त्व ईश्वर को भूल रहे हैं यही विनाश है।

भारतीय पूर्वजों का निर्माण, सदासे मनुष्य-निर्माण पर निर्भर रहा है। मनुष्य मनुष्य बना कि सब योजनाएँ सफल हो जायेंगी। अब तो मनुष्य-निर्माण की चिन्ता इतनी नहीं, नहीं के बराबर, और निर्माण की चिन्ता है बिजली और भाप की।

पहिली पञ्चवर्षीय योजना में निर्माण का आधा रुपया व्यर्थ गया, क्योंकि निर्माण कार्य मे नियुक्त अधिकारी चरित्र-हीन थे। इस द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना में क्या होता है, ईश्वर ही जाने। कितना धन सार्थक होता है और कितना निरर्थक, कौन कह सकता है। हमको योजनाएँ चाहिएँ हमको उनसे घृणा नहीं, वह काम भी चले पर मनुष्य-निर्माण की योजना में सबसे अधिक बल लगना चाहिए। डॉ॰ देशमुख ने एक जगह स्पष्ट कहा है कि 'द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना में शिक्षा-प्रचार, प्रसार आदिमें कम धन रखा गया है।'

हमारा यह निश्चित मत है कि सबसे प्रथम देश के मस्तिष्क मिलकर, एक स्थान में बैठकर निर्णय करलें कि कौन-सी शिक्षा भारतवर्ष के लिए उपयुक्त होगी। आजकल जिस प्रकार की धर्महीन शिक्षा दीक्षा चल रही है और भारतवर्ष के अपार धन

हमारे अन्दर शक्ति का भंडार है, आनन्द का स्रोत है। सब शक्तियाँ हमारे अन्दर छिपी हैं—आन्तरिक मनुष्य ही अमर आत्मा है। हम और परमात्मा एक हैं, यह अनुभव करें और मुक्त हों। एकाग्रता द्वारा अपनी आन्तरिक शक्तियों को जाग्रत कर। अपने अन्दर गोता लगाएं और आत्मिक रत्न को ढूंढ़ निकालें।

की अपेक्षा हो रहा है यह देखा नहीं जाता। शिक्षा-दीक्षा में जबतक चरित्र-शिक्षा का प्रवेश नहीं होगा, तबतक मनुष्य मनुष्य नहीं बन सकेगा।

धर्मशून्य शिक्षा मजदूर बना सकेगी। नौकर-पेशा लोग बना सकेगी, 'रोटी कपड़ा मकान' का नारा लगानेवाले बेकारों की संख्या बढ़ा सकेगी जो अपने स्वार्थ का अधिक ध्यान रखेंगे। यह शक्ति अच्छी है उसकी आवश्यकता है पर इस प्रकार के नास्तिक, अश्रद्धावान उत्पन्न करनेवाली शिक्षा-दीक्षा किस काम की ? भारतवर्ष के सम्मुख यदि कोई कठिन समस्या है तो यही है और इधर ही सबसे कम ध्यान है।

एक ओर बेकार बनानेवाले सहस्रों स्कूल-कॉलेजों की मशीनें चालू कर दी हैं, जिनमें प्रतिवर्ष लाखों बेकार तैयार हो जाते हैं। सरकार इन बेकारों को खपा नहीं सकती—अब यह समझ रही है कि इन योजनाओं से सब ठीक कर सकेंगे।

धर्म निरपेक्ष रहना वर्तमान युग का धर्म है पर हम प्राचीनों का नहीं जिनका धर्म ही मुख्य अङ्ग रहा है। धर्म के तीन अंगों में शिक्षा को भी धर्म का मुख्य अङ्ग माना गया है।

त्रयो धर्मस्कन्धाः
यज्ञोऽध्ययनं दानमिति

धर्मरूपी वृक्ष के तीन स्कन्ध हैं जैसे बड़ी शाखा फूटी है, वैसे वृक्ष का भाग स्कन्ध कहलाता है जिसको तना कहते हैं। १-यज्ञ २-अध्ययन (शिक्षा-दीक्षा) ३-दान।

हमारी शिक्षा मनुष्य को मनुष्य बनाने में तीन का हाथ मानती है—मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद। बाल्यावस्था की गुरु माता, किशोरावस्था का गुरु पिता, बड़ी अवस्था का गुरु आचार्य इन तीनों की शिक्षा हो तब सच्चा मनुष्य मनुष्य बनता है।

आजकल अपना राज होते हुए भी अपने धर्म अपनी शिक्षा-दीक्षा, अपनी सभ्यता-संस्कृति माननेवालों का राज नहीं है और इसने पाश्चात्य ढंग के प्रजातन्त्र को अपना लिया है, जो भारतीय ढंग से सर्वथा न्यारा है। यह भारत भूमि जो सदा से धर्मभूमि रही है धर्म को छोड़कर जीवित नहीं रह सकती। धर्म-निरपेक्ष रहेगी तो कोरे भौतिकवादियों की भूमि बन जायगी। अध्यात्मशून्य होकर भौतिकवादी बनने से भारत का कभी भला नहीं होगा।

आज संसार में अणुबम की चर्चा है अर्थात् विनाश की चर्चा है महानाश की चर्चा है। सबों को ताकने रहने से

(क्रमशः पृष्ठ ९९ पर)

आज नया-निर्माण बुलाता हमको !

श्री नर्मदाप्रसाद त्रिपाठी

साथी, जागो, आज नया-निर्माण बुलाता हमको !

उठो, गगन में आग लग चुकी
जगो, क्षितिज में ज्वाल वल चुकी
नई क्रांति की लहर उठी है जग में
देखो, यह क्षितिजी ज्वाला घिर आई !
साथी, जागो, दलितों का परित्राण बुलाता हमको !

छोडो, छोडो, प्रिय-प्रेयसियों के वन्धन
देखो, देखो, दलितों का दारुण क्रन्दन
प्रिय, महलों की यह चमक-दमक झूठी है
ये चुम्वन, नर्त्तन, मधुशाला रूखी है
साथी, जागो, जन-जन का भगवान बुलाता हमको !

यह कुटियों की लहर, महल को खा लेगी
यह दलितों की क्रांति, गगन को छा लेगी-
अत्याचारो औ' व्यभिचारों में आग लगा-
हर कोने में ज्योति सृजन की वालेगी
साथी, जागो, आज नया इन्सान बुलाता हमको !

नहीं मानेंगे। एक ही कानून से यह राष्ट्र बना हुआ है। यह कानून हमारे हृदय का कानून है और इसलिए हम दूसरे कानून को नहीं मानते हैं। उसने सरकारी कानून का खुल्लमखुल्ला विरोध शुरू किया। बड़े-बड़े नेता पहले कानून के अन्दर रहकर सारी बातें सम्हाल कर, वकीलों से बचाव तैयार करके काम करते थे। लेकिन गांधीजी के आने के बाद छोटे छोटे लोग भी सरकार के सामने खड़े होने लगे। जब से लोगों ने हिम्मत से कह दिया कि हम आपके कानून को मानते ही नहीं हैं तो आपके कानून से बनाया हुआ राज्य भी हमें नहीं चाहिए, जब से यहां के लोगों ने अपनी आवाज उठायी, तब से अंग्रेजों का राज्य यहां से क्षीण होने लगा। राज्यसत्ता जो चलती है, वह भय पर आधारित है। किसी की सत्ता दूसरे देश पर प्रजा में एक भय निर्माण करके उसके आधार पर ही चलती है।

कौन-सी चीज लें ?

भारत देश कम से कम दस हजार वर्ष पुराना है। जब दुनिया में दूसरे देशों की हस्ती नहीं थी, तब भी चीन और भारत थे। इतना प्राचीन यह देश है। लेकिन आज माना यह जाता है कि भारत दस साल का देश है। स्वराज्य मिले दस साल हुए। तब इस बालक का जन्म हुआ। भारत दस साल का बालक है और इंग्लैंड की पार्लियामेंट ६००-५०० साल की है। हमारी पार्लियामेंट तो आठ सालकी है। हम तो अभी बिल्कुल छोटे बच्चे हैं। इस तरह दस हजार साल के अनुभवी पुरुष को बच्चा ठहराया गया है।

हमारे यहां गांव-गांव में ग्राम पचायत का तरीका था। पांच मुख्य मनुष्यों की एक सभा होती थी जो फैसला करती थी। पांचो सहमत होकर ही फैसला देते थे। इसलिए तो "पंच बोले वहां परमेश्वर" ऐसा कहा जाता है। परन्तु अब तो अगर ५१ और ४९ हुए तो ४९ वाले हार गये और ५१ वालों की ओर प्रस्ताव पास हो गया। उसके परिणाम स्वरूप अल्पमत और बहुमतके झगड़े बढ़ गये। भारतमें जाति भेद, भाषा-भेद, धर्म-भेद आदि क्या कम था कि इसमें यह पक्ष भेद भी डाल दिया। पक्ष-भेद के कारण गांव-गांव में जाति-भेद को बढ़ावा मिला है।

यह पश्चिम से आई हुई अक्ल है। इसने हमारे टुकड़े बना दिये हैं। हमको लगता है कि हम मूर्ख ही हैं। हम तो दस ही साल के हैं। इसलिए हमको तो इंग्लैंड और अमेरिका में जो चलता है सो देखना चाहिए। लेकिन मूर्खों, जरा सोचो तो इंग्लैंड में जाति-भेद नहीं है। वहां की पद्धति का यहां अनुकरण करते हो, परन्तु

वहाँ तो जाति-भेद मौजूद है। फिर उनके मुताबिक करोगे तो क्या काम होगा। परन्तु लोग सोचते हैं कि अपनी कोई चीज है ही नहीं। हमें तो कुछ लेना है या इंग्लैंड और अमरीका से ही लेना है। देखो! यह मत समझो कि अमरीका और इंग्लैंड से कोई लेने लायक, सीखने लायक चीज नहीं है। बहुत सी चीजें सीखने लायक हैं। परन्तु कौन-सी सीखनी चाहिए और कौन-सी छोड़नी चाहिए—यह तो देखना चाहिए जो चीज लेने से अपना नुकसान होता है, वह चीज अच्छी-सी-अच्छी कैसे ले सकते हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि हजारों साल के बाद हमें भारत बनाने का मौका मिला है।

कितनी भयानक बात है?

अब हमको तय करना है कि हमको अपने देश का राज्य अस्त्र की सत्ता से चलाना है कि प्रेम की सत्ता से। अमरीका में जो राज्य चलता है वह बल के आधार पर चलता है। उन्होंने एटम व हाइड्रोजन बम बनाये हैं परन्तु उससे भी उनको तृप्ति नहीं है बल्कि भी भय अभी मिटा नहीं। रूस से चार हजार मील दूरी पर वे डर में जल रहा है। दोनों एक-दूसरे के डर के कारण सेना बढ़ा रहे हैं। इंग्लैंड डरता है कि सेना बढ़ाने में हम ही पीछे क्यों रहें। बेचारे फ्रांस को दुख हो रहा है कि सेना बढ़ाने के लिये अपने पास पैसे नहीं हैं। सब सेना बढ़ा रहे हैं, एटम, हाइड्रोजन बम बना रहे हैं। किसी पर के डर से नहीं। उनके लिये तो बन्दूक काफी है। अब तो वे ज्यादा हैं भी नहीं। मनुष्य ने मनुष्यके डर के कारण सेना बढ़ाई, एटम, हाइड्रोजन बम बनाये। कितनी भयानक बात है! हमको पाकिस्तान का डर, पाकिस्तान को हमारा डर। छोटों को छोटों का डर और बड़ों को बड़ों का डर। सर्वत्र डर ही डर छाया हुआ है। भयभीत बने हुए राष्ट्रों को बचाव का आधार प्रकट दिखाना है कि प्रेम से राज्य करना है। अगर शस्त्र बढ़ाना है तो भारत के गरीबों के लिए हम कुछ नहीं कर सकते हैं। आप लोगों से जो भी टैक्स हमको मिलता होगा उसका बहुत भारी हिस्सा हमको सैन्य सामग्री के लिये खर्च करने में जायेगा। सिर्फ पैसे की बात नहीं। हमको इंग्लैंड अमेरिका को गुरु बनाना पड़ेगा। उनके हम शिष्य बनेंगे। वे गुरु बनेंगे तो हमारी चोटी उनके हाथ में रहेगी। साम्राज्य की आजादी रहेगी। तो हमको तय करना है कि हमें राज्य किस तरह पर चलाना है।

क्या आपको भी यही करना है?

आपको सोचना चाहिए कि भारत के सबके जरूरी तत्त्व से हल करने में यहाँ की कोई कमज़ोरी दिख नहीं सकती। अगर आप सेना के जरिये अपने मसले हल करना

चाहते हैं तो आपकी सरकार कमजोर रहेगी। इस वास्ते अमेरिका और रूस का शिष्यत्व स्वीकार करना पड़ेगा, जैसे आज पाकिस्तान बन रहा है। पाकिस्तान आज अमेरिका की मदद ले रहा है। उस देशकी कुल सेना आज अमेरिका के हाथमें है। पाकिस्तान का प्रधान मन्त्री समझता है कि बगदाद पैक्ट में अमेरिका जैसे को आना चाहिए, क्योंकि उसमें आज हम हैं या तुर्की है। वह कहता है कि हम भी शून्य हैं, दूसरे भी शून्य हैं और तीसरा भी शून्य है। शून्य-शून्य-शून्य जोड़ने से शून्य ही होता है, इसलिए ताकत तब पैदा होगी जब उसके साथ अमेरिका जैसा देश जुड़ जायगा। एक स्वतन्त्र देश का प्रधान मन्त्री अपने देश को शून्य समझता है और अमेरिका को परिपूर्ण समझता है। क्या यही आपको भी करना है? अगर आप लश्कर की ताकत पर देश को खड़ा करना चाहते हो तो यही करना होगा। किन्तु अगर ऐसा करना नहीं चाहते हों तो अपने देश की जो हजारों साल की ताकत है—प्रेम की ताकत—उसको अपनाओ। अशोक का नाम तो हम लेते हैं, परन्तु उसका काम भी हम करें। भारत में असंख्य सत्पुरुषों की वर्षा हुई है। उन्होंने हमको प्रेम सिखाया, सहयोग सिखाया। उसी ताकत से हम अपने मसले हल करें।

भारत में हमको सब प्रकार की एकता स्थापित करनी चाहिए। हम मांग करते हैं कि यहां एक राष्ट्रभाषा होनी चाहिए। हिन्दुस्तान में जो दस बीस हैं वे निकम्मी हैं, इसलिए राष्ट्रभाषा सीखनी है—ऐसा नहीं है। किसान की सेवा दरअसल उनकी भाषा में करना है। लेकिन सारे हिन्दुस्तान का प्रेम बढ़ाना है। एक-दूसरे का प्रेम जोड़ना है, तो वह किस भाषा में करेंगे? तमिलनाड का सन्देश पंजाब में पहुँचाना है और पंजाब का सन्देश तमिलनाड में, तभी भारत एकरस बनेगा। परन्तु वह राष्ट्रभाषा से ही हो सकेगा।

ताकत कब बढ़ेगी?

रामानुज के जितने शिष्य उत्तर भारत में हैं उतने दक्षिण में नहीं हैं। स्वामी रामानन्द, तुलसीदास आदि उन्हीं के शिष्य हैं। क्योंकि रामानुज ने संस्कृत का अध्ययन किया, संस्कृत में ग्रन्थ लिखे। उनके ग्रन्थों का अध्ययन आज काशी में हो रहा है। उस जमाने में संस्कृत राष्ट्रभाषा थी। इसलिए उनका सन्देश सारे भारत में पहुंचा। अगर शंकराचार्य मलयालम में ही लिखते तो उनका सन्देश दक्षिण में ही रह जाता। इसलिए इस जमाने की राष्ट्रभाषा हिन्दी है, तो हम हिन्दी सीखेंगे,

हमें भारत को एकरस बनाना है। वह भारत की पद्धति से होगा, पश्चिमी पद्धति से नहीं होगा। इसलिए हम भारत को एक बनाना चाहते हैं तो एक मन की आवश्यकता है। वह भी प्रेम द्वारा करना है। ग्रामदान छुआछूत भेद, जाति का मिटाना यह सब प्रेम के लिए करना है। इस तरह जितना कर्म करना है सब प्रेम के तरीके से करना है तभी भारत की ताकत बढ़ेगी।

इससे आप समझेंगे कि यह सिर्फ भूमि का मसला हल करने की बात नहीं है। हम भारत की समस्या प्रेम से हल करके, प्रेम की सत्ता स्थापित करना चाहते हैं और यह भी चाहते हैं कि भारत की सरकार प्रेम के आधार पर खड़ी हो। अगर कोई चीज करनी है तो यह कि परस्पर सहयोग और प्रेम की ताकत बनाना चाहते हो कि लश्कर की ताकत बढ़ाना चाहते हो—इसका फैसला आपको करना है। अगर लश्कर की ताकत बढ़ानी है तो ग्रामदान-भूदान की कोई जरूरत नहीं है। फिर तो एटम हाइड्रोजन बम आदि पैदा करना होगा। वह दूसरा रास्ता है। वह अगर नहीं चाहते हो, प्रेम का तरीका चाहते हो तो विकल्प है—ग्रामदान भूदान परस्पर सहयोग परस्पर प्रेम, एकता और समता।

●

(पृष्ठ ८९ का शेषांश)

उसकी जिम्मा है। पर इस तरह यह विनाश सर्वनाश नहीं है इस तरह अस्त्रास्त्र-शस्त्र से भरे हुए आसुरी वृत्ति के लोग नहीं मानेंगे। वैषम्यवाद ही एक तत्त्वोपाय है और वैसी सम्यक् भारतीय शिक्षा-दीक्षा में ही है। नहीं तो महती विनष्टि है ही। संसार ने अभी सत्य तत्त्व को समझा ही नहीं। हाथ-पैर मार रहे हैं पर मार्ग-भ्रष्ट हो रहे हैं। धर्म के मूल एवं उसके सूक्ष्म तत्त्व को समझना ही अणुव्रत है।

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्

एक ओर अणुबम है और दूसरी ओर अणुव्रत है। अणुबम भौतिकवादियों का अस्त्र है अणुव्रत अध्यात्मवादियों का अस्त्र है—विजय तो अणुव्रत की होगी पर देर है, अन्धेर नहीं है—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति,
न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः,
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति—

यहाँ संसार में आकर यदि मनुष्य ने सत्य तत्त्व को यथार्थ रीति पर जान लिया तो खैर, नहीं तो महती विनष्टि महाप्रलय उपस्थित। इसीलिए हम कह रहे हैं कि पहिले मनुष्य निर्माण, पीछे सब निर्माण।

कहानी

काला घोड़ा : काला सवार

श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

गोधूलि वेला में सुखला अपने बैलों को दाना-पानी देकर हमेशा की तरह बच्चों को लेकर नहर के किनारे आया करता था। उसके दो बच्चे थे—राधा और राजन।

आज उसका मन उदास था। रह-रह कर वह राधा-राजन पर शंकित दृष्टि डाल देता था। सारे गाँव में जोरों की अफवाह थी कि एक काले घोड़े पर एक काला सवार आधी रात के समय गाँव में घूमा करता है। वह हर आदमी से सिर्फ इतना ही पूछता है कि तुम कौन हो और वह मर जाता है। उस विचित्र पुरुष का घोड़ा घास नहीं, बच्चे खाता है, जानवर खाता है। समीप के गाँव से वही घोड़ा पचास बच्चे खाकर आया है।

गाँव में दो रोज से आतंक था। लोगों ने खेतों में सोना छोड़ दिया था और बच्चों को स्कूल में भेजना।

गाँव का मास्टर और सरकारी अफसर सारे गाँववालों को बार-बार समझा रहे थे कि इस प्रकार का कोई घोड़ा सवार नहीं है और न ही पड़ोसी गाँव के पचास बच्चे मरे हैं, पर बरसों से अन्ध-विश्वास के दकियानूसी आवर्तन में पीड़ित ग्रामीणों का उन समझदार व्यक्तियों की बात का जरा भी विश्वास नहीं होता था। वे उनकी बात सुनकर उल्टे गड़े मुर्दे उखाड़ने लगे।

किसना बाबा बोला, "यह कलयुग की हवा है, किसी चीज पर कोई भरोसा ही नहीं करता। हरखा! तू जानता है न, जब तेरा जुगलू छोटा था तब एक गरुड़ जितना पक्षी आया था। क्या वह बच्चों को उठा-उठा कर नहीं ले जाता था?"

"यह तो आँखों देखी बात है। हम लोग रात-रात भर कांसे की थालियाँ बजा-बजा कर जागरण किया करते थे। बच्चों को बांधकर रखते थे।" हरखा ने उत्तर दिया।

"कई लड़कों के कपड़े जंगलों में पाये गये थे न?"

सरकारी अफसर क्या करते? चुप हो जाते थे।

कहानी

काला घोड़ा : काला सवार

श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

गोधूलि वेला में सुखला अपने बैलो को दाना-पानी देकर हमेशा की तरह बच्चों को लेकर नहर के किनारे आया करता था। उसके दो बच्चे थे—राधा और राजन।

आज उसका मन उदास था। रह-रह कर वह राधा-राजन पर शंकित दृष्टि डाल देता था। सारे गाँव में जोरों की अफवाह थी कि एक काले घोड़े पर एक काला सवार आधी रात के समय गाँव में घूमा करता है। वह हर आदमी से सिर्फ इतना ही पूछता है कि तुम कौन हो और वह मर जाता है। उस विचित्र पुरुष का घोड़ा घास नहीं, बच्चे खाता है, जानवर खाता है। समीप के गाँव से वही घोड़ा पचास बच्चे खाकर आया है।

गाँव में दो रोज से आतक था। लोगों ने खेतों में सोना छोड़ दिया था और बच्चों को स्कूल में भेजना।

गाँव का मास्टर और सरकारी अफसर सारे गाँववालों को बार-बार समझा रहे थे कि इस प्रकार का कोई घोड़ा सवार नहीं है और न हीं पड़ोसी गाँव के पचास बच्चे मरे हैं, पर बरसों से अन्ध-विश्वास के दकियानूसी आवर्तन में पीड़ित ग्रामीणों का उन समझदार व्यक्तियों की बात का जरा भी विश्वास नहीं होता था। वे उनकी बात सुनकर उल्टे गड़े मुर्दे उखाड़ने लगे।

किसना बाबा बोला, "यह कल्युग की हवा है, किसी चीज पर कोई भरोसा ही नहीं करता। हरखा! तू जानता है न, जब तेरा जुगलू छोटा था तब एक गरुड़ जितना पक्षी आया था। क्या वह बच्चों को उठा-उठा कर नहीं ले जाता था?"

"यह तो आँखो देखी बात है। हम लोग रात-रात भर कांसे की थालियां बजा-बजा कर जागरण किया करते थे। बच्चों को बांधकर रखते थे।" हरखा ने उत्तर दिया।

"कई लड़कों के कपड़े जगलों मे पाये गये थे न?"

सरकारी अफसर क्या करते? चुप हो जाते थे।

"तुम भी इस सवार पर यकीन करते हो ?" मास्टर ने उस पर पैनी दृष्टि डालते हुए कहा।

"विश्वास तो नहीं करता पर गांव में इस चर्चा से जो मुर्दनी और डर छाया हुआ है, उससे मैं भी डरपोक बनता जा रहा हूँ।"

"तुम्हारे जैसे साहसी आदमी को चाहिए कि गांववालों को हिम्मत बधाये। हम चाहते हैं कि शीघ्र ही नई सड़क बना कर गांव की कायापलट करदें।"

"अरे, यह रही नाव, गय तेजी से दौड़ रही है।"

पश्चिम से अन्धकार का सागर उफानें भरता हुआ सवार पर छा रहा था।

मास्टर ने वापस मुड़कर कहा, "मैं समझता हूँ कि हमें बड़ी पचायन बुलाकर इस अफवाह का खण्डन कर देना चाहिए।"

दीनानाथ ने कहा, "मैं भी यही सोचता हू।"

रात रानी तारों की चुनरी ओढ़ कर नीलगगन में मुस्करा रही थी।

"दीनानाथजी! ठाकुर की स्थिति दिन पर दिन गिरती जा रही है। समाप्त होनेवाले तत्व यदि नई मान्यताओं को स्वीकार करके पुनर्निर्माण में लग जायं तो उन्हें नई काया दी जा सकती है। यदि वे पुन अपनी पूर्ववत् दशा में पहुचने का दुष्प्रयास करेंगे तब उनका विनाश जरूरी है। नींवें सदा बदलती थोड़े ही हैं, ढांचा युग के अनुकूल रग बदलता रहता है।"

सुखला ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह एक उच्छ्वास छोड़कर रह गया।

राधा और राजन आपस में बातें कर रहे थे।

राजन आकाश में तैरते सफेद बादल के टुकड़े को सकेत करके राधा से कह रहा था, "राधा, यह जो सफेद ऊँट है न, इस पर मैं बैठूँगा।"

राधा ने मुस्कराकर कहा, "यह जो सफेद रथ है न, उस पर मैं बैठ कर जाऊगी।"

× × ×

प्रभात हो गया था।

सूर्यकी किरणें अभी पूर्णरूप से बिखरी भी नहीं थीं कि सुखला घबराया हुआ भागा-भागा दीनानाथ के पास आया। श्वांस उसकी फूल गई थी। वह कुछ देर तक सुस्ताकर रोदन भरे स्वर में बोला, "सरपचजी मैं डूब गया, मैं लुट गया।"

दीनानाथ आश्चर्य चकित रह गये। रुकते-रुकते बोले, "भाई, बात क्या है?"

"मेरे दो बैल चोरे गये।"

ला—"वासू के खेत के आगे बिजली गिरने से जो गड्ढा हो गया था, उसमें एक आदमी गिर पड़ा है। पता नहीं जिंदा है या मरा हुआ।"

देखते-देखते सारे गांव में हल्ला हो गया। लोगों ने इसे भी काले सवार और काले घोड़े की करामात समझी।

बड़ी भीड़ वहाँ पहुची। गर्दन के बल गिरे उस आदमी को निकाला गया। मुँह साफ किया, पहचाना। ठाकुर का छोटा भाई था।

तभी सुखला ने कहा, "अरे, मेरे बैल वे खड़े हैं।"

वह भागा-भागा गया। उसने अपने बैलों को पकड़ कर चूम लिया। उसकी आँखें इस बार प्रसन्नता से भर आईं।

मास्टर ने कहा, "यह बैल लेकर भाग रहा था दीनानाथजी, पर प्रभु सबको देखता है। इसे अपने कर्म का फल मिल गया।"

"अब ?"

"इन लोगों को कहदो कि काला सवार और काला घोड़ा और कोई नहीं है, ये हमारे बाधक हैं जो हमें फलता फूलता देखकर जलन के मारे बावले हो रहे हैं और हमारी प्रगति में रोड़े अटका रहे हैं। हमें कलसे ही सड़क-निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर देना है और इन तत्वोंसे कड़ा मुकाबला भी करना चाहिए।"

"और यह लाश ?"

"पुलिस के हवाले करदो।"

धीरे-धीरे भीड़ छँट गई।

दूसरे ही दिन सारा गाँव फावड़ा और गैंतिया लेकर चल पड़ा।

धरती के आराधक कह रहे थे—धरती हमारी है, धन हमारा है, जो दीवार बनेगा, उसे हम मिटा देंगे।

●

नये निर्माण के लिए

नये-निर्माण के लिये हमारी विचार-चेतना को वह दिशा लेनी होगी, जहा अनुभव और प्रयोग का मूल्य प्रधान हो, दर्शन पद्धतियों का नहीं। तब गुण-सम्बन्धी लक्षणों का भी उतना ही महत्व होगा, जितना मात्रा-सम्बन्धी लक्षणों का। काया और जीव दो न रह जायेंगे और देह और मन दोनों के ही व्यापार हमारी पहुच के भीतर होंगे। सच तो, विज्ञान का उद्देश्य ही तब मानव को समान-भाव से भौतिक और आत्मिक हित-साधना होगा।

—डा० एलेक्सी कारेल

नाश में निर्माण का स्वर कैसे ?

प्रो० प्रेमचन्द विजयवर्गीय एम० ए०

निर्माण एक सापेक्षिक स्थिति और क्रिया है। प्रकृति में जिस प्रकार प्रकाश के साथ अंधकार और जीवन के साथ मृत्यु एक सापेक्षिक संबन्ध में बंधे हुए हैं, उसी प्रकार निर्माण के साथ विनाश भी। दोनों की संतुलित स्थिति में ही जीवन और सृष्टि का गतिशील अस्तित्व है एवं उनकी एकाधिकता में प्रलय या अपस्तित्व का उपक्रम। निर्माण और विनाश का सम्बन्ध समष्टि की दृष्टि से सहअस्तित्व का तथा व्यष्टि की दृष्टि से पौर्वापर्य का है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि जब कि समष्टि में निर्माण और विनाश की प्रक्रिया साथ-साथ होरही है व्यष्टि में निर्माण के बाद ही विनाश और विनाश के बाद ही निर्माण संभव है; पर चाहे समष्टि में हो चाहे व्यष्टि में, निर्माण और विनाश दोनों ही या तो प्रकृतिजन्य होते हैं या प्राणीजन्य। एक में उनकी प्रक्रिया सहज होती है, दूसरे में सप्रयत्न। इनमें सप्रयत्न तो प्राणी-अधीन है ही, प्रथम कोटि की प्रक्रिया भी धीरे-धीरे अब प्रमुख प्राणी मनुष्य के नियन्त्रण के अधीन आगई है और आती जारही है। प्रस्तुत प्राकृतिक निर्माण और विनाश की प्रक्रिया पर मनुष्य का नियन्त्रण क्रमे-क्रमे इतना व्यापक और दृढ़ हो चला है कि प्रकृतिजन्य प्रक्रिया भी अधिकांश में प्राणीजन्य—मनुष्यजन्य—प्रक्रिया के अन्तर्गत समाविष्ट होगई है।

निर्माण (और विनाश) की इस प्रक्रिया के साथ दूसरी मुख्य बात उसके साधन की आती है। प्रकृति के पास विनाश के उपकरणों के रूप में अग्नि, जल, विद्युत, भूकम्प आदि हैं तो पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश के रूप में ये पंचतत्व ही निर्माण के उपकरण भी। प्रकृति में निरन्तर इनसे निर्माण होता रहता है—

नुष्य की उत्पत्ति के पूर्व भी होता रहता था और सच पूछा जाय तो मनुष्य भी प्रकृति के निर्माण की एक लम्बी प्रक्रिया का ही परिणाम है। यों तो जीव-जगत में भी निर्माण की प्रक्रिया चलती है, जिसमें सबसे प्रधान है जीवोत्पत्ति की प्रक्रिया और जिसके साधन हैं स्थूल रूप में प्रजनन के अंग और सूक्ष्म रूप से 'काम'। कुछ जीवों में जैसे पक्षियों में एक और निर्माण की—नीड़-निर्माण की—प्रवृत्ति तथा क्षमता भी पाई जाती है, पर निर्माण

वह मिट्टी, कपड़े, लकड़ी आदि सहज सुलभ उपकरणों के द्वारा घर, गुड्डे, बर्तन आदि जीवनोपयोगी सामग्रियों का निर्माण करने में प्रवृत्त होता है, पर इससे भी अधिक बड़ी बात यह है कि वह अपनी निर्माण-कारी वृत्ति को बाह्य अभिव्यक्ति देकर उससे रचनात्मक आनन्द प्राप्त करना चाहता है। यह एक प्रकार की आत्मरत है, जिससे उसे तृप्तिजन्य सन्तोष की अनुभूति होती है। उसमें उसकी सृजनात्मक कलामयी शक्तियों का सीमागत पूरा-पूरा उपयोग

निर्माण आज भी हो रहा है—विशाल नदियों में बाँध बंध रहे हैं, पर मन की चंचल वासनाएँ बाँधे नहीं बंधती, 'रॉकेट' चाँद को छू आना चाहते हैं, पर मानव की अन्तश्चेतनासे धरती का पाश छोड़े नहीं छूटता, 'एटम' विश्व पर विजय कर लेना चाहता है, पर हमारी आत्मा से 'पौने चार हाथ' का शरीर नहीं जीतते बनता! यह है युग का निर्माण, जो स्वयं विनाशक बन गया है।

के (और विध्वंस के भी) क्षेत्र में यदि सबसे अधिक क्षमता किसीमें आई है तो वह मनुष्य में। वह इसलिए कि मनुष्य एक प्रज्ञावान प्राणी है। बौद्धिक दृष्टि से वही सर्वाधिक विकसित प्राणी है।

निर्माण की यह प्रवृत्ति वैसे तो मनुष्य में जन्म से ही पाई जाती है। बालक जो मिट्टी के घरोंदे बनाते हैं, निर्माण के क्षेत्र में मनुष्य की वही आदिम प्रवृत्ति और प्रक्रिया होने से। बालक अनुकरण अवश्य करता है और अनुकरण-वृत्ति के ही कारण

होता है। इसलिये बालक की इस निर्माण क्रिया को केवल स्थूल समझना एक भूल होगी, उसका एक सूक्ष्म अन्तरंग पक्ष भी है, जो सृजन की अन्तश्चेतना में निहित और व्याप्त होता है।

सृजन की यह अन्तश्चेतना क्या है? फ्रायड उसे 'काम-वासना' कहेगा, एडलर उसे अभाव या क्षति-पूर्ति कहेगा, दूसरे शब्दों में प्रभुत्व कामना, और उपनिषदों ने आत्म-प्रेम को सब क्रियाओं का मूल कारण माना है। जो कुछ भी हो, सृजन

की मूल वृत्ति मनुष्य में होती अवश्य है और वह जितनी ही सूक्ष्म होगी निर्माण और उसकी प्रक्रिया भी उतनी ही सूक्ष्म होगी। निर्माण के मूल में जैसे एक अन्तर वृत्ति होती है, उसी प्रकार उसके सम्मुख अपना उद्देश्य भी होता है। वह उद्देश्य फिर चाहे धर्म अर्थ काम और मोक्ष में से कोई एक या अनेक हो सकता है। जिस प्रकार निर्माण की मूल चेतना का स्वरूप निर्माण की स्थूलता और सूक्ष्मता का आधार होता है उसी प्रकार निर्माण के उद्देश्य का स्वरूप उसकी सात्विकता या असात्विकता का।

मनुष्य के निर्माण-क्षेत्र में युग विकास के साथ कितनी वस्तुओं का समावेश आज तक हो चुका है उसकी तालिका बनाना भी कठिन है, पर यदि उसके समस्त निर्माण का मूलभूत विभाजन करना चाहें तो हम उसे बहिर्निर्माण और अन्तर्निर्माण संज्ञा दे सकते हैं। स्थूल निर्माण के अन्तर्गत चौसठ कलाएं भोग्य पदार्थ, उपभोग्य पदार्थों के उत्पादन-साधन तथा आत्म-रक्षा और विनाश के साधन मोटे रूप से रखे जा सकते हैं तथा अन्तर्निर्माण के अन्तर्गत व्यक्तित्व (मन बुद्धि, आत्मा, आचार आदि) का निर्माण। ऊपर मैं निर्माण की मूल चेतना और उसके उद्देश्य की बात कह आया हूँ वहाँ उसको मोटा और स्पष्ट कर देना चाहिए। मैं मानता हूँ कि निर्माण की विभिन्न अवस्थाएं होती हैं। निर्माण की एक अवस्था से (या चेतना-स्तर से) दुकान दूसरी से उपयोगी यंत्र तीसरी से उपभोग्य पदार्थ, चौथी से कला-कृतियों और पाँचवीं से दर्शन की सृष्टि होती है। मैं यह नहीं कह रहा कि निर्माण-चेतना के ये ही पाँच स्तर हैं। ये तो केवल उसकी विभिन्नता के द्योतकमात्र हैं। इनके बीच-बीच में सृजन-चेतना के अलग-अलग स्तर और होंगे, पर एक स्थूल रूप से प्रकट करते हुए ये स्तर मनुष्य की निर्माण चेतना की दो विरोधी सीमाएं अवश्य स्थापित कर सकते हैं।

अकेले कला के क्षेत्र में ही ज्यों-ज्यों हम स्थापत्य कला से संगीत कला की ओर बढ़ेंगे स्थापत्य कला, मूर्तिकला, चित्रकला, काव्यकला और संगीतकला का निर्माण करनेवाली चेतना क्रमशः सूक्ष्मतर होती जाएगी। साहित्य के एक विनम्र विद्यार्थी के नाते मैं तो यहाँ तक कह सकता हूँ कि अकेले काव्य-कला में ही गीति-काव्य और प्रबन्धकाव्य की रचना करनेवाली चेतना एक नहीं होती; तो फिर निर्माण की सब विधाओं और शास्त्रों के मूल में क्रियाशील चेतना क्यों न भिन्न होगी। इसी प्रकार मेरा यह भी विश्वास है कि उद्देश्य

आधार पर निर्माणकारी चेतना त्विकता और असात्विकता के दो सीमांतों के बीच व्याप्त होती है। मानवीय विनाश का उद्देश्य लेकर युद्धास्त्रों का निर्माण करनेवाली चेतना असात्विकता का अर्थ है तो मनुष्य की सद्गति की कामना लेकर दर्शन का सृजन करनेवाली चेतना सात्विकता की इति। इसीसे एक की परिसीमा है अणुबम और दूसरे की परिणति है 'अणुव्रत'।

आरम्भ में जिस प्रकार हमने 'निर्माण और विनाश की प्रक्रिया को समष्टिगत और व्यष्टिगत दोनों कहा था, उसी प्रकार आधार और उद्देश्य को लेकर भी मानवीय चेतना का भेद हम स्थूल और सूक्ष्म तथा सात्विक और असात्विक रूपमें समष्टि और व्यष्टि दोनों की दृष्टि से कर सकते हैं अर्थात् चेतना स्तर की दृष्टि से स्थूलता और सूक्ष्मता तथा सात्विकता और असात्विकता समष्टि और व्यष्टि दोनों में होती है। निर्माण की प्रक्रिया में व्यष्टि और समष्टि की चेतना पारस्परिक समाश्रित होती हैं। अत आधार और उद्देश्य की दृष्टि से भी चेतना का यह भेद व्यष्टि और समष्टि में समाश्रित होगा। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि यदि सामान्यत' व्यष्टि की निर्माण चेतना का आधार स्थूल और उद्देश्य असात्त्विक है तो

हम स्वयं ही अपने भाग्य-विधाता हैं। हमने स्वय ही अपने ससार की सृष्टि की है। हम अपने भाग्य के स्वय ही उत्तरदायी हैं। हम अपने कष्ट और आनन्द के स्वयं ही शिल्पी हैं।

समष्टि चेतना का भी वही होगा और इसी प्रकार सामान्य व्यष्टि की सूक्ष्म और सात्त्विक चेतना के अनुरूप ही समष्टि की चेतना भी होगी। समष्टि चेतना व्यष्टि चेतना पर केवल प्रभाव डालती है, पर व्यष्टि चेतना तो समष्टि चेतना का निर्माण करती है। जब यह कहा जाता है कि आजके युग मे धर्म और दर्शन का अभाव है तो मैं उसका यह अर्थ समझता हू कि आजकी सामान्य व्यष्टि चेतना में उस स्तर का अभाव है जहां से धर्म और दर्शन का निर्माण होता है। सचमुच मानवीय चेतना का वह उच्चतम स्तर था, जिसने विश्व को भारत का 'दर्शन' दिया और नि'सन्देह मनुष्य की चेतना की यह निम्नतम स्थिति है, जिसने युग को अमरीका का उद्जन बम दिया है।

निर्माण के ये दो रूप हैं पर कितने भिन्न, कितने विपरीत! वह अन्तर्निर्माण का दर्शन था, यह बहिर्निर्माण का विस्फोट है। सृजन के इन दो सीमातों के

बीच निर्माण की कितनी युगानुयुगीन क्रिया-प्रक्रिया हुई—इतिहास जानता है। निर्माण आज भी हो रहा है—विशाल नदियों में बाँध बंध रहे हैं पर मन की चंचल वासनाएं बंधि नहीं सकतीं; रॉकेट चाँद को छू जाना चाहते हैं, पर मानव की अन्तश्चेतना से कहीं पाप कैसे नहीं छूआ? स्वयं जिस पर विजय कर लेना चाहता है पर हमारी आत्मा से पौने चार हाथ का शरीर नहीं जीतते बनता। यह है युग का निर्माण जो स्वयं विनाशक बन गया है, आज अणुबम अपने स्वयं से स्वयं भस्म हो रहा है तो क्या फिर विनाश के भस्मावशेष ही भावी निर्माण की भूमिका बनेंगे? या मानवीय सर्व चेतना से निर्माण की नई दिशा निकलेगी। विनाश की चेतना से निर्माण का स्वप्न पूरा न होगा और न स्थूल, बल्कि चेतना से नव-मानव का जन्म। हमारे स्वप्नों की प्रजा अभी भविष्य के गर्भ में है। आइए उसे पोषण भरने के लिये हम सब अपनी अन्तश्चेतना का नया आँचल फैलाएँ।

●

अणु का व्रत

—आचार्य श्री गुरुदयाल मल्लिक

मैं एक अत्यन्त छोटा व्यक्ति हूँ
मगर जो आह्वान मैं लेकर आया हूँ
वह विराट् और विशाल है।
क्यों?
वह आह्वान अनन्त की तरफ से है।
मैं स्वयम् भी इसी अनन्तका उपासक हूँ
मगर यह अनन्त कौन है?
वही जिसका अन्त नहीं है।
किन्तु अन्त तो हर एक व्यक्ति का या वस्तु का होता है ऐसा लोग कहते हैं नहीं।
कारण?
कुछ ऐसे तत्त्व हैं जो अनन्त हैं जैसे प्रेम।
प्रेम अनन्त है और प्रभु भी इसलिये प्रेम प्रभु है।
सत्य अनन्त है और प्रभु भी इसलिये सत्य प्रभु है।
सो मैं कहता हूँ कि यद्यपि मैं केवल एक क्षुद्र अणु ही हूँ मेरी शक्ति जब वह जाग्रत और जीवन्त हो जायगी, अपार है।
और मैं सदा अनन्त की ही आराधना किया करूंगा ऐसा मेरा अखण्ड व्रत है।
व्रत भी तो एक अणु समान है न।
कैसे?
वह भी मनुष्य को जो कुछ अनन्त है उसको पहले पहचानने और फिर उसकी पूजा करने की प्रेरणा देता है।
तो जय हो अणु की।
और जय हो व्रतधारी की।
दोनों—अणु और व्रत—अनन्त के परिचय और प्रेम पत्र हैं।

डा० रामचरण महेन्द्र एम० ए० पी-एच० डी०

हमारे हृदय में ज्ञान का दीपक जल रहा है, जो हमें सही दिशा में अग्रसर होकर आत्म-निर्माण की प्रेरणा दे रहा है। प्रकाश स्वरूप प्रभु ! पथ प्रदर्शक प्रभु ! अपने ओज और तेज से पूर्ण अन्तरात्मा के रूपमें हमें निरन्तर उन्नतिकी ओर, आत्म-विकास की ओर बढ़ने का संकेत दे रहे हैं।

हमारे मन में अनेक बार सद्ज्ञान और विवेक की यह दिव्य आभा जलती रहती है। मन में एक पुकार-सी मची रहती है। जब हम नहीं सुनते तो अन्ततः विलुप्त हो जाती है। जब हमारे मन में भव्य संकल्प उठते हैं, आत्म-निर्माण के पवित्र संकल्प उत्पन्न होते हैं, आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती है तो समझ लें कि दिल का दीपक जल रहा है। संकल्प की शक्ति ईश्वरीय शक्ति है। यदि हमारे संकल्प सत्य और शिव हों तो निर्माण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम उठा समझें।

हमारी आत्मा द्वारा बतलाया हुआ मार्ग ही श्रेष्ठ है। संसार में सुख-शान्ति-तथा अच्छे व्यक्तित्त्व का निर्माण तब होगा जब मनुष्य अन्याय, आलस्य, हिंसा और असत्य व्यवहार को छोड़ देगा, अज्ञान के स्थान पर ज्ञान का, अधर्म के स्थान पर धर्म का प्रयोग करेगा।

गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है "न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" (गीता ४-३८) ज्ञान के समान पवित्र और कोई वस्तु इस संसार में नहीं है। सद्ज्ञान और सद्विचार ही निर्माण में हमारे सहायक हो सकते हैं। मनुष्य की महत्ता—उसका विचार और संकल्प है। यही वे गुण हैं जो उसे अन्य प्राणियों से ऊँचा उठाते हैं। मनुष्य संसार के सब प्राणियों का राजा इसीलिए है कि उसे अच्छे और उपयोगी विकास पथका ज्ञान है। शारीरिक दृष्टि से मनुष्य की अपेक्षा बहुत से पशु आगे बढ़े हुए हैं, परन्तु ज्ञान के अभाव में ही उन्हें मनुष्य का दासत्व स्वीकार करना पड़ा है। यह ज्ञान, ये उत्तम विचार, यह सद्संकल्प ही मनुष्य की श्रेष्ठतम सम्पत्ति है। चतुर व्यक्ति साधनहीन होकर भी अपने सद्विचार और पुष्ट संकेतों के बल से लक्ष्मी, विद्या, प्रतिष्ठा, बल, पद,

कीर्ति, ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। ये सब मनुष्य के ज्ञानरूपी वृक्ष के ही सुन्दर फल हैं। संसार के सारे सुख ज्ञान पर ही निर्भर हैं।

इतना सब जानते हुए भी हम देखते हैं कि अनेक व्यक्ति दुःखरूपी अज्ञान अविचार और अन्धकार को मिटाने का कोई प्रयत्न नहीं कर रहे हैं। अन्धे मनुष्य की तरह इधर-उधर भटकते फिरते हैं। अपने अज्ञानरूपी असुर के फंदे में पड़े पड़े बेबसी और अभाव का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनकी बुरी प्रवृत्तियाँ ही वे असुर हैं, जो उन्हें बढ़ने नहीं देते। हमारी वासनाएं बुरी तरह बढ़ रही हैं— तृष्णा, क्रोध विनाश वृद्धि पर हैं। इन्द्रियाँ विषयों की ओर दौड़ रही हैं। उनकी कृत्रिम आवश्यकताएं अनियंत्रित रूप से बढ़ रही हैं। ये विकार, ये अनाचार सब अस्वाभाविक हैं। मानव के लिए कदापि उचित नहीं हैं। स्वभाव से मनुष्य सात्त्विक दैवी प्रकृति का है। वह ईश्वर का पुत्र है। कुप्रवृत्तियों ने मन में इसीलिए आधिपत्य जमाया है क्योंकि सद्प्रवृत्तियों की शक्ति क्षीण हो गई।

वास्तव में विकार और आसुरी प्रवृत्तियों से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। हम शरीर नहीं हैं, वरन् आत्मा-महान् आत्मा—परमात्मा हैं। हम तुच्छ इन्द्रियों के गुलाम नहीं हो सकते, इन्द्रियाँ हमें वश में नहीं कर सकतीं। पाप और अज्ञान में इतनी शक्ति नहीं कि वे हमारे ऊपर सवार होकर हमें बहुत अधिक दिन तक सताते रहें। हमें चाहिए कि अपनेको दीन-हीन, पतित पराधीन न मानें। अपनी महानता को पहचानें। अपने आत्म-तत्त्व में छिपे हुए दैवी तत्त्वों को समझने, खोजने और प्राप्त करने में तत्परता से जुट जाएं। हम सत् हैं चित् हैं आनन्द हैं। अपनी इस वास्तविकता का अनुभव करें और स्वाधीनता का, विवेक का आनन्द प्राप्त करें। इन तत्त्वों के लिए परमात्मा ने यह सृष्टि की क्रीडाभूमि बनाई है। हमें उसमें पवित्रता, पुण्य, देवत्व और नव-निर्माण की ही दृष्टि रखनी चाहिए।

आइये नए और उपयोगी विचारों तथा सृजनात्मक योजनाओं के लिए हम अपनी आँखें खुली रखें। ऐसे चिन्तन करें। पवित्रता, आशा, उत्साह, प्रेम, प्रसन्नता, उत्साह और आत्म विश्वास की भावनाएं बढ़ाएं और प्रभु से प्रार्थना करें—

"नमो गोविन्दमाधव मुकुन्दमाधव पाहिमो!"

प्रकाश स्वरूप प्रभु! पथप्रदर्शक प्रभु! हमें बोध दे पूर्ण ज्ञानमय विचारधारा का धन दो।

पं० हरिशंकर शर्मा

जब राजनीति से धर्म्म हटाया जाता है,
बढ़ता अधर्म्म अन्धेर-अँधेरा छाता है।

जो लोक और परलोक - सिद्धि का साधक है,
'अभ्युदय' और 'निःश्रेयस्' का आराधक है,
जिसमें संकीर्ण भावना कभी न आती है,
जिसकी प्रभुता प्रतिक्षण पीयूष पिलाती है,
वह परम तत्त्व सर्वथा भुलाया जाता है,
जब राजनीति से धर्म्म हटाया जाता है।

सद्धर्म्म सदा सुख - शान्ति - सुधा बरसाता है,
नय न्याय - नीति का शुभ सन्मार्ग सुझाता है,
मानवता में वर बन्धु भाव उमगाता है,
वसुधा का वृहत् कुटुम्ब रूप दरसाता है,
इस विधि - विधान में सार न पाया जाता है,
जब राजनीति से धर्म्म हटाया जाता है।

अत्याचारों से भूमि काँपने लगती है,
सोती सुनीति, दुर्नीति दानवी जगती है,
तब स्वार्थ - असुर दुर्दम्भ - दर्प दिखलाता है,
निजता - परता का क्षुद्र भाव भर जाता है,
मानव मानवता पर विष - वज्र गिराता है,
जब राजनीति से धर्म्म हटाया जाता है।

मत पन्थ सम्प्रदायों को धर्म बताते हैं
वे अन्ध दीप को दिनकर कह भरमाते हैं
क्या कभी धर्म मूढ़ता ने युद्ध रचाए हैं,
कब सत्य - अहिंसा ने नर रक्त बहाए हैं
विपदा वारिधि में विश्व डुबाया जाता है,
जब राजनीति से धर्म हटाया जाता है।

संग्राम भूमि में तोपें आग उगलती हैं
अगणित लोगों की देहें जीती जलती हैं
होकर अनाथ लाखों जन घुट घुट रोते हैं
भूखों मर मर कर प्राण करोड़ों खोते हैं
दुर्भिक्ष दुष्ट दानव मानव देश खाता है
जब राजनीति से धर्म हटाया जाता है।

शासन सत्ता जब धर्मयुक्त हो जाती है,
बनकर विनीत अति सौम्य रूप सरसाती है
जनता भी नैतिकता को ही अपनाती है
तब शान्ति क्रान्ति मित सुख-समृद्धि बरसाती है
सद्भाव स्नेह का दृढ़ गढ़ बांधा जाता है—
जब राजनीति से धर्म हटाया जाता है।

●

परेशानी की क्या बात है ?

[श्री नरेशकुमार शाह]

भाई मैंने सोचा है—मुझे अब शादी कर लेनी चाहिये। उर्दू के एक सुप्रसिद्ध कवि ने परेशान-सा होकर कहा।

"तो परेशानी की क्या बात है—कर लीजिये। मजाक ने परामर्श दिया। "लेकिन—बात यह है कि मैं किसी विधवा से शादी करना चाहता हूँ।

आप शादी कर लीजिये। मजाक ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया, "विधवा तो वह बेचारी हो ही जायगी।

हमें नव-निर्माण करना है, नव रचना करनी है। फिर हम सो क्यों रहे हैं। नव-निर्माण पुरानी बुनियादों पर होगा क्या? यदि हाँ तो क्या वही नव-निर्माण कहलायेगा?

सर्वोदय की निर्माणकारी भूमिका

श्री नेमिशरण मित्तल एम० ए०

राजनीतिक आजादी की लड़ाई जब हम लड़ रहे थे, उस समय हमारे काम के दो पहलू थे—एक था विदेशी प्रभुत्व के प्रति सविनय अवज्ञा का प्रदर्शन और उस अहिंसात्मक असहयोग के प्रत्युत्तर स्वरूप प्राप्त दमन का सहन, दूसरा पहलू था भारतीय समाज की सृजनात्मक भावनाओं का विकास। इसी दूसरे पहलू को बापू ने रचनात्मक कार्यक्रम नाम दिया।

किसी भी क्रान्ति के दो पक्ष होते हैं। एक ओर वह प्रचलित मूल्यों और परिस्थितियों को आमूल बदल डालने के लिये कटिबद्ध होती है, दूसरी ओर उसे समाज के भीतर क्रान्ति का भार वहन करने की क्षमता रचनात्मक कार्यों द्वारा पैदा करनी होती है। सर्वोदय आज के युग में एक अभूतपूर्व क्रान्ति का दर्शन है। इसका काम बुनियादें बदलने का है।

प्रश्न यह उठता है कि पहला काम बुनियादें बदलने का है या रचना अथवा, निर्माण का? उत्तर बहुत साफ है कि जहाँ क्रान्ति की कल्पना स्पष्ट होती है, वहाँ निर्माण का प्रश्न पहले नहीं उठता। मूल प्रश्न है आधारभूत मूल्य बदलने का। इसका यह अर्थ नहीं है कि निर्माण का काम गौण या कम महत्व का है। स्थिति यह है कि दोनों काम बराबर महत्व के हैं। अन्तर इतना ही है कि पहले यह तय करना होगा कि निर्माण किन बुनियादों पर करना है।

कभी-कभी विचारवान लोग भी ऐसी शंका करते हैं कि सर्वोदय विचारवाले देश और संसार की प्रत्येक बड़ी-छोटी सामयिक समस्या पर अपना दृष्टिकोण उपस्थित करने में हिचकिचाते हैं। वास्तविकता यह है कि जिस प्रकार प्राकृतिक-चिकित्सा शरीर

सम्बन्धन कतई नहीं है। इतना ही व्यवस्थापक वर्ग में भी पूंजीवादी मता के लक्षण साफ जाहिर होते है। कर्त्ताओं में प्रथम से चतुर्थ श्रेणीभेद, वेतन और पद के भेद मौजूद है, सके कारण श्रमिक से लेकर संस्थाके मन्त्री क एक पूजीवादी नौकरशाही का दर्शन ता है, जिसमें हरेक एक-दूसरे से ऊँचा और नीचा है।

यह आलोचना नहीं, वस्तुस्थिति का दर्शन है। ऐसा हुआ, क्योंकि हमारे काम की पद्धति ही ऐसी रही। आज तो प्रश्न यह है कि ऐसा हुआ क्यों? सर्वोदय की सिद्धि का लक्ष्य लेकर चलनेवाले महामानव मानवेतर विकारों के कीचड़ में कैसे घस ? इसलिये, क्योंकि मूल्य-क्रान्ति नहीं थी, बुनियादें नहीं बदली थीं। आज व्यावहारिकता के नाम पर क्रान्तिकारी मूल्यों को ठुकराकर पुरानी रूढ़ियों का अधिष्ठान खोजा जाता है। यह सब इस बात का प्रमाण है कि रचनात्मक काम में क्रान्ति करने की कोई शक्ति नहीं है, वह क्रान्ति से निष्पन्न परिस्थितियों का समायोजन और सरक्षण कर सकता है। क्रान्ति की ज्वाला वैचारिक मूल्य-परिवर्तन में से प्रज्वलित होती है और उसी की आज विज्ञान के युग में सबसे बड़ी जरूरत है।

खुश रहना बच्चों का जन्मसिद्ध अधिकार है। एक स्वस्थ शिशु आम-तौर पर खुश रहता है, इसलिये उसके स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखें। भोजन से अधिक भोजन करने के ढगको अधिक महत्व दें।

सर्वोदय की दृष्टि बहुत साफ है। आर्थिक तौर पर वह स्वावलम्बी और उद्योगी ग्राम्य गणराज्यों की कल्पना करता है, जिनमें सहयोग के आधार पर उत्पादन की प्रक्रिया इस प्रकार की हो, जिसमें सर्व प्रथम मनुष्य की बुद्धि और देहकी शक्तियों का सम्यक विनियोग सम्पन्न हो एव इसके बाद पशु-शक्ति का विनियोग रहे। इन दोनों सजीव शक्तियो के उपयोग के बाद भी यदि विज्ञानाश्रित यान्त्रिक सुधार हमें पर्याप्त पदार्थ-मात्रा न जुटा पाये तो आवश्यकता निर्धारित करके सीमित उत्पत्ति के नियम के अनुसार भाप, बिजली आदि प्राकृत-शक्तियों का उपयोग समाज हित की दृष्टि से किया जाए। मूल्यांकन की दृष्टि सर्वोदय में यह है कि वस्तु का कोई मूल्य नहीं, मूल्य है जीवन में। जीवन ही अन्तिम मूल्य है और उसकी रक्षा एव वृद्धि के लिए वस्तु या माटिगत पदार्थ (मैटीरियल गुड्स) का उपयोग एव उत्पादन वांछनीय

है। वस्तु की सार्थकता उसकी आवश्यकता मिटाने की शक्ति में निहित है अतः वस्तु का मूल्य आवश्यकता है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। जहाँ आवश्यकता हो वहाँ वस्तु उपस्थित हो जाय ऐसी अर्थ रचना ही अर्थकारी है अन्यथा हम उसे अनर्थकारी या व्यर्थकारी कहेंगे। वितरण के लिए उसका सूत्र है—हरेक को उसकी अन्न आवश्यकताओं की पूर्ति कर, किसी भी सामाजिक संदर्भ में कम की जाये। आर्थिक दायित्व के रूप में उसकी प्रत्येक सक्षम नागरिक पर यह है कि वह अपनी प्रत्येक शक्ति का विनियोग सामाजिक हित की दृष्टि से करे, क्योंकि इससे (१) उसकी शक्तियाँ सक्षम बनेंगी यानी उसका विकास होगा जो उसके सर्वांगीण विकास के लिए अनिवार्य है। प्रत्येक व्यक्ति का सर्वांगीण विकास सर्वोदय का लक्ष्य है। (२) समाज में विपुल वस्तु और शक्ति की प्रचुरता रहेगी ताकि समाज का कोई भी सक्षम या अक्षम सदस्य अभाव के कारण अविकसित न रहने पाये।

अधिक सरल भाषा में कहें तो कहेंगे—समान नागरिकों के लिये प्रकृति और मात्रा में समान पदार्थ यानी समान मजदूरी—समान वेतन। काम का दाम से कोई नाता नहीं है। काम शक्ति भर—दाम जरूरत भर। मेरी शक्ति कम है जरूरत अधिक, तो उस व्यक्ति की अपेक्षा जिसकी शक्ति और जरूरत कम है मेरा दाम अधिक रहेगा। यही है सम्यक् सम-सामाजिक जीवन। इसी का अर्थ है सहकार सहयोग सहअस्तित्व सर्वोदय और यही है मानवीय जीवन की सर्वोच्चता का व्यावहारिक या सिद्ध आचरण। जहाँ इस मर्यादा का उल्लंघन होता है वहीं मानवता विषमता के गर्त में गिर जाती है। जरूरत से ज्यादा जो लेता है वह या तो विलास करेगा या संग्रह। विलास विकास का वैरी है और विनाश का आमंत्रण। संग्रह अप्राकृतिक है, प्राकृतिक जीवन के लिये पर्याप्त सामग्री न जुट पाए और उस सामग्री को अनावश्यकता-वश संग्रहीत रखा जावे इसमें से विग्रह, चोरी और युद्ध का जन्म होता है। संग्रह अनास्तिक आचरण इसलिए है कि उसमें आगामी कल के प्रति अविश्वास छिपा है। जो आज है कल नहीं होगा, उसका ही संग्रह हो सकता है। पदार्थ नित्य है यह वैज्ञानिक ने कहा। प्रकृति नित्य है यह वेद ने कहा। इस दृष्टि से अनित्यता का अस्तित्व है ही नहीं। अतः जो नित्य है उसका संग्रह अनास्तिकता है यानी नित्य को अनित्य मानना है।

गहराई से देखें तो इसका दर्शन हमें तो इस प्रकार होता है कि परमेश्वर ने

और पुरुष की सृष्टि की। प्रकृति में की अनुभूति और तृप्ति का साधन है। पुरुष में है पुरुषार्थ। तृप्ति के नों का जब पुरुषार्थ के जल से सिंचन है तब तृप्ति का जन्म होता है। यह भूख के उदर में समा जाए यहीं से पुरुषार्थ का जन्म होता है। इस चक्र पुरुषार्थ पुरुष की धन्यता के लिए है और तृप्ति भूख में समा जाने के लिए। पुरुषार्थ तृप्ति को बटोरकर और बांधकर नहीं रख सकेगा और अगर वह मोहवश ऐसा कर बैठा तो मानो मानवता पर वज्रपात ही हो गया। इधर वन्दिनी तृप्ति में सड़कर मादकता उत्पन्न होती है उधर पुरुषार्थ निष्क्रिय होकर कुंठित होता है। पुरुषार्थ का कुंठन अर्थात् पुरुष का, मनुष्य का कुंठन। यह विषम लीला यहीं समाप्त नहीं होती, अतृप्त क्षुधा, बेचैन भूख, क्रुद्ध जठराग्नि विप्लवकारी रूप धारण करके अपनी ज्वाला में मानवता के सत्, रज और तम को जला डालती है और मनुष्य हारा-सा, ठगा-सा दिग्मूढ़ बनकर रह जाता है। उसकी लाचारी उसी के मोह का परिणाम होती है।

सर्वोदय विचार हाथ उठाकर कहता है कि तृप्ति पर से, उत्पादन पर से पुरुषार्थ का यानी व्यक्तिगत परिश्रम का स्वामित्व समाप्त होना चाहिये। पुरुषार्थ मनुष्य का धर्म है, उसके जीवन की शर्त है, उसके विकास के लिए अनिवार्य है। पुरुषार्थ फलाकांक्षा की सिद्धि का साधन नहीं है वह स्वतन्त्र है। उसका अपना मूल्य है, महत्व है। उत्पादन पर और उसके भौतिक साधनों पर आवश्यकता का स्वामित्व है— तृप्ति पर भूख की मालकियत है। सम्पत्ति की सार्थकता विपत्ति का निराकरण करने में है न कि उत्पादक की तिजोरी में कैद होने में। सम्पत्ति की परिभाषा ही यह है कि वह वस्तु सम्पत्ति है जो विपत्ति के पेट में समाकर उसे मिटा सके। सरल शब्दों में कहेंगे कि रोटी पर भूखे का और वस्त्र पर नंगे का अधिकार है, उन्हें किसी भी कारण इनसे वंचित नहीं किया जा सकता।

तो जब निर्माण का—रचना का प्रश्न उठता है तो हम गुरु गम्भीर स्वर में घोषणा करते हैं कि हमें नव-निर्माण करना है, नव-रचना करनी है। फिर हम सो क्यों रहे हैं। नव-निर्माण पुरानी बुनियादों पर होगा क्या ? यदि हां, तो क्या वही हमारा नवनिर्माण कहलायेगा। आज की नई पीढ़ी को इस प्रश्न का उत्तर देना है। मानवता दिखती है पतित, पर यह रोग का भयंकर उभाड़ है जिसके पीछे एक निर्मल भविष्य छिपा हुआ है। वर्तमान सामाजिक

(शेषांश पृष्ठ ११२ पर)

भ्रष्टाचार

[२

मंत्री की सिफारिश—

पुलिस अफसर की सिफारिश—

प्राचीन भारत में

राष्ट्र-निर्माण की प्रवृत्तियाँ

श्री कृष्णदत्त वाजपेयी एम० ए०

राष्ट्र के सर्वतोमुखी निर्माण के प्रति प्राचीन भारत का शासन ही नहीं, जनसाधारण भी जागरूक था। हमारे पुराने साहित्य तथा अभिलेखों से इस बात की पुष्टि होती है। लोकहित के विविध कार्य राज्य द्वारा तो सम्पादित होते ही थे, जनता भी उनमें योग देना अपना कर्तव्य समझती थी। श्रमदान की आजकल काफी चर्चा सुनाई पड़ती है। पहले भी श्रमदान होता था। परन्तु उसमें दिखावा कम और कामकी सच्ची लगन अधिक होती थी। जनहित के कार्यों में सब प्रकार से सहयोग देना लोग गौरव की बात समझते थे। विद्यालय, मन्दिर, औषधालय, सड़क, तालाब, कुए, पुल आदि के निर्माण में न केवल लोग धन-जन द्वारा सहायता पहुंचाते थे, अपितु अपने भी शरीर द्वारा कार्यों में हाथ बंटाते थे।

बौद्ध जातक-साहित्य में वर्णन मिलता है कि किस प्रकार तीस भद्र पुरुषों का एक समूह बोधिसत्व के नेतृत्व में सार्वजनिक कार्य करने के लिए तयार हुआ। ये लोग हाथों में कुदाल, फावड़े आदि लेकर सवेरे निकलते थे और जनमार्गों को ठीक करते थे। यदि कहीं सड़कों पर पत्थर पड़े मिलते तो उन्हें हटाते, झाड़ी-झखाड़ों को साफ करते और ऊंची-नीची जगहों को समतल बनाते थे। इन लोगों ने जनता की सुविधाके लिए जलाशय खोदे और अनेक इमारतों का भी निर्माण किया। एक बार ऐसा हुआ कि एक सार्वजनिक भवन का निर्माण करते समय नीचे का भाग तो पूरा कर लिया गया, पर उसकी छतके लिए

इतिहास के पृष्ठों पर

(पृष्ठ १११ का शेषांश)

मूल्य अपना मूल्य खो चुके हैं, आज हमें मानवता को प्रतिष्ठित करने के लिये नये मूल्य चाहिये और नये मानदण्ड। यह प्रलाप नहीं है, विश्वास संयुक्त संकल्प है। नये युग के नये इन्सान की प्रतिज्ञा है— उदय ही नहीं सर्वांगीण उदय होगा। सबका, प्रत्येक मानव का उदय और इस उदय की प्रथम शर्त होगी प्रेममूलक विचार-परिवर्तन और उदात्त सहिष्णुता।

> निश्चयहीन मनुष्य के लिये यह कभी नहीं कहा जा सकता कि वह खुद अपना मालिक है। वह समुद्र की एक लहर की तरह है या उड़ते हुए उस पंख की तरह जिसे हर झोंका इधर से उधर उड़ा देता है।
>
> —जोन फोस्टर

आवश्यक मकानों की कमी थी। मकान की यह सामग्री एक महिला के पास थी परन्तु इन कार्य-कर्ताओं के पास इतना धन नहीं था कि उससे सामग्री खरीद सकते। महिला ने कहा, "मैं सामग्री तो दे दूंगी और वह भी बिना मूल्य, पर इसके साथ एक शर्त है और वह यह कि मुझे भी श्रमदान में सहायक बना लिया जाय।" लोगों ने इसे सहर्ष स्वीकार किया और पूरी इमारत बनकर तैयार हो गई। प्राचीन भारतीय स्त्रियों की सेवा-भावना एवं श्रमकार्य में सहयोग का यह कितना सुन्दर उदाहरण है।

भारतीय विद्यार्थी तो श्रमदान से कभी नहीं हिचकते थे। गुरु-सेवा तथा अपने कामों के साथ दूसरों के कामों में हाथ बंटाना उन्हें खूब मिलता था। तित्तिर जातक (संख्या ५१७) में एक कथा है कि काशी में एक विद्वान ५ विद्यार्थियों को विद्या की शिक्षा दिया करते थे। एक दिन उन्होंने सोचा कि काशी के सामान्य वातावरण में स्वाध्याय और अध्ययन यथोचित ढंग से नहीं हो पाता, अतः अन्यत्र उपयुक्त स्थान पर चलना चाहिए। इसके लिए उन्होंने हिमालय के एक शांत स्थान को चुना।

विद्यार्थियों को उन्होंने इसकी सूचना दी और उनसे आवश्यक सामग्री निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचाने को कहा। विद्यार्थियों ने वैसा ही किया और थोड़े ही समय में अपने श्रम द्वारा उन्होंने वहाँ निवास के योग्य झोंपड़ियाँ तैयार कर लीं। अब वहाँ व्यवस्थित रूप से अध्ययन-अध्यापन का कार्य चलने लगा। जब आस-पास के विद्यार्थियों ने सुना कि काशीपुरी का एक विद्वान यहाँ शिक्षण-कार्य कर रहा है तब उन्होंने भी विद्यार्थियों के लिए खाने-पीने की वस्तुएं प्रदान कीं। किसी ने अन्न दिया, किसी ने वस्त्र। एक व्यक्ति ने गायें भेंट कीं, जिससे लोगों को दूध की सुविधा हो सके। विद्यार्थियों को भोजन-वस्त्रादि देना उनके यहाँ बड़े पुण्य का कार्य समझा जाता था और लोग इस प्रकार के दान के लिए उत्सुक रहते थे।

संस्कृत साहित्य में श्रमदान सम्बन्धी अनेक उल्लेख मिलते हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से पता चलता है कि सार्वजनिक कार्यों में लोग मिल-जुलकर काम करते थे।

ग्रन्थ में एक जगह आया है कि यदि कोई जनता के हितका कार्य करे तो लोग उसकी आज्ञा माने, न करनेवाला दण्ड का भागी समझा जाय। सार्वजनिक नाटकों आदि के आयोजन के लिए जो काम किया जा रहा हो यदि उसमें कोई व्यक्ति भाग न ले तो उसे नाटक न देखने दिया जाय। यदि वह लुक-छिप कर सुनने या देखने की कोशिश करे तो औरों की अपेक्षा उससे दुगुना वसूल किया जाय—"सर्वहितमेकस्य ब्रुवत कुर्युराज्ञाम्। प्रेक्षायामनंशद स्वस्वजनो न प्रेक्षेत। प्रच्छन्न श्रवणेक्षणे च सर्वहिते च कर्मणि निग्रहेण द्विगुणमंशं दद्यात्" (अर्थशास्त्र, ३,१०)।

कौटिल्य ने आगे यह भी लिखा है कि जो लोग अपने परिश्रम से सार्वजनिक उपयोगवाली सड़कों को तथा अन्य इमारतों को बनाते हैं, अपने गाँवों को दर्शनीय बनाकर उनकी रक्षा करते हैं, उन पर राजा प्रसन्न रहता है—"राजा देशहितान् सेतून् कुर्वतां पथि सक्रमात्। ग्रामशोभाश्च रक्षाश्च तेषां प्रियहितं चरेत्।"

उपर्युक्त तथा अन्य उल्लेखों से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में श्रमदान द्वारा सहयोग का बड़ा महत्व था और लोग इस प्रकार के कामों में भाग लेना श्रेयस्कर समझते थे। शासन द्वारा किए जानेवाले विविध जनोपयोगी कार्यों का पता अर्थशास्त्र, शुक्रनीति, स्मृति ग्रन्थों आदि से चलता है।

प्राचीन भारत में शारीरिक श्रम के अतिरिक्त यन्त्रों से भी काम लिया जाता था। रक्षा तथा युद्ध के अलावा यन्त्रों का प्रयोग विविध निर्माण-कार्यों के लिए भी होता था। रामायण (लंका कांड, २२-५९) में गहरा पत्थरों को ढोनेवाले यन्त्र का उल्लेख मिलता है—

"हस्तिमात्रान्महाकाया
पाषाणाश्च महाबलाः।
पर्वताश्च समुत्पाट्य
यन्त्रैः परिवहन्ति च।"
(लंका कांड २२-५९)

प्राचीन इमारतों और विशाल मूर्तियों के निर्माण में बड़े पत्थरों को ढोने के लिए कभी कभी बड़े यन्त्रों का प्रयोग किया जाता रहा होगा। अन्यथा भारी इमारती पत्थरों और मूर्तियों को एक स्थान से दूसरे तक पहुँचाने का काम असम्भव दिखाई पड़ता है। पत्थर ही नहीं, धातु की जो भारी प्रतिमाएं आदि मिली हैं उनके निर्माण तथा परिवहन में यन्त्रों की सहायता अपेक्षित रही होगी। उदाहरण के लिए मेहरौली में कुतुबमीनार के पास लोहे की कीली तथा अन्य ऐसी वस्तुएं पर्याप्त होंगी। चौबीस फुट ऊँची तथा साढ़े छः टन वजनी इस कीली ने वर्तमान इंजीनियरों

—मुनिश्री नथमलजी—

इस आधे शतक से 'रचनात्मक' शब्द का आसन सबसे आगे बिछा हुआ । उस प्रयत्न का आज कोई मूल्य नहीं का जाता, जो रचनात्मक न हो । अणुव्रत न्दोलन का मूल्य आंकनेवाले कहते हैं—ह बहुत बड़ा रचनात्मक कार्य है । कुछ ग अणुव्रत को इसलिए मूल्यवान नहीं नते कि यह 'रचनात्मक' कार्य नहीं । इसके साथ कोई रचनात्मक प्रवृत्ति ड़ी हुई नहीं है । आखिर कार्य का ल्य होना 'रचनात्मकता' पर निर्भर है । णुव्रत आन्दोलन रचनात्मक है या नहीं ? यह बड़ा जटिल प्रश्न है । किन्तु 'रचनात्मक' हुए बिना आज इसकी गति भी नहीं हो सकती । यह 'रचनात्मक' है तो अच्छी बात है । अगर वैसा नहीं है तो उसके संचालकों को इसे वैसा बनाने के लिए जी-जान से जुट जाना होगा ।

इस सतत गति और क्रियाशील जगत् में 'अरचनात्मक' भी कुछ है, यह नहीं माना जा सकता, किन्तु यह दार्शनिक बात है। जमाना दर्शन से दो कदम आगे बढ़ चुका है। आज के लोग केवल देखना व जानना नहीं चाहते, वे बदलना चाहते हैं। परिवर्तित युग का सत्य भी नया होता है। आज का 'रचनात्मक' दृष्टिकोण यह है कि मनुष्य श्रम करे, श्रम के द्वारा कमाई हुई वस्तु को भोगे। दूसरों के श्रम पर न जिए, आलसी बन बैठा न रहे, मूल्यांकन की दृष्टि को बदले, श्रमिक को छोटा न माने, अपनी जरूरता को पूरा करने के लिए स्वयं कुछ-न-कुछ पैदा करे। इस दृष्टिकोण की तुलना में पिछला जमाना अवश्य अरचनात्मक रहा है। कर्मभूमि के आदिकाल में मनुष्य श्रमिक था। आगे चल वह श्रम-विमुख हो चला। समाज संगठित हुआ। बुद्धिवाद बढ़ा, साधन बढ़े, मान और अपमान की धारणायें बनीं। अनुपयोगी वस्तुओं में मूल्य का आरोप हुआ और मनुष्य ने अपने सहज-भाव से मुंह मोड़ लिया। संक्षेप में कहा जा सकता है—सामाजीकरण या संगठनात्मक

स्थिति ने मनुष्य को स्वभाव विमुख बना दिया। यह श्रम से अश्रम की ओर जाने का इतिहास है।

साम्यीकरण के अभाव में बुद्धि का पार नहीं होता। ज्ञान आत्मा का सहज धर्म है। बौद्धिक विकास का क्रम स्पर्धा पर आधारित है। स्पर्धा की भूमि अभाव है। उसने बुद्धि को बढ़ाया, बुद्धि ने साधनों का विस्तार किया। भूख एक है, प्यास एक है, किन्तु उन्हें मिटाने के लिए आज अनगिनत साधन हैं। साधन-सामग्री ने मनुष्य को छुटपन और बड़प्पन में बांट दिया, जिसे साधन अधिक सुलभ हों वह बड़ा और जिसे कम सुलभ हों वह छोटा। बड़ा अन्वेषणा पूजा पाने लगा और छोटा उसे पूजने लगा। इस कृत्रिम भेद से अनात्मक वस्तुओं में कृत्रिम मूल्य का आरोप हुआ। खान-पान के लिए अनुपयोगी वस्तुएं मूल्यवान बन गईं। मनुष्य का मोह आहार से छूट गया। मोह की आंख से मनुष्य ने देखा—श्रम करना छोटी बात है। वह श्रम से अश्रम की ओर झुक गया। 'रचनात्मक' युग समाप्त होगया।

रचनात्मक और नाशात्मक ये दोनों एक ही पहिये के दो सिरे हैं। एक ऊपर उठता है दूसरा नीचे चला जाता है। दूसरा ऊपर आता है, पहला नीचे चला जाता है। ये दोनों मिल दुनिया की गाड़ी को आगे धकेल रहे हैं।

मनुष्य का सहज भाव है कि वह अपने जमाने को सर्वोत्कृष्ट देखना चाहता है। जमाना अपनी गति से चलता है। उसमें कारण-कार्य की नियत परम्परा प्रतिफलित होती है। आज जो '[illegible]' का जमाना है, वह समाजीकरण और उसकी छत्रछाया में पलनेवाली मिथ्या धारणाओं का परिणाम है। जब इसे रचनात्मक युग होगा, वह सामूहीकरण और उसके पहले पली मिथ्या धारणाओं के विघटन का परिणाम होगा।

मनुष्य में परिणाम के प्रति जो अभिलाषा होती है वह कारण के प्रति नहीं होती। वह स्वर्ग चाहता है, स्वर्ग की साधना नहीं चाहता। आज बहुत लोग चाहते हैं मिथ्या धारणाएं दूर हटें, कृत्रिम भेद-रेखाएं मिट जाएं, सब समान हो जाएं और स्वात्मनिर्भर बन जाएं। यह परिणाम की चाह तीव्र हो रही है। कारण की चाह बहुत ही क्षीण है।

समाजीकरण इतना हो रहा है कि व्यक्ति छोटा पड़ गया है। वैयक्तिकता की बात कोई सुनना ही नहीं चाहता। व्यक्ति का समाज से भिन्न जैसे अस्तित्व ही न हो वैसे वह बनता जा रहा है। बना वह नहीं हुआ है। सामाजिकता

व अनुभूति नहीं है। वह कुछेक के
ल में विचारों से पनपी है और बहुतों
र डंडे के बल से थोपी गई है। आज
ा समाजवाद व्यक्तिवाद के विकृत स्वरूप
ी प्रतिक्रिया है। वह मनुष्यों के भौतिक
हितों को समतल बनाने में सफल भी हुआ
है, किन्तु वह अब भी परिणाम की धूरी
के आसपास घूम रहा है, कारण कि खोज
बहुत दूर है। व्यक्तियों और वस्तुओं का
राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। आवश्यकता
पूर्ति की चिन्ता का भार कम भी हुआ है,
किन्तु मानवीय दुर्बलता का प्रतिकार नहीं
सका। मान व अपमान, छोटा
र बड़ा होने की वृत्ति सामूहीकरण की
न प्रतिक्रिया हो सकती है। उत्पादन
ा है, नाम का मूल्य बढ़ा है, किन्तु उसका
ाधार है—पदार्थ और समाज। यह सारा
रिणामवाद है। इसमें रचनात्मकता के
स्माव की प्रतिकार शक्ति नहीं है।

अणुव्रत आन्दोलन को 'अरचनात्मक'
कहने में मुझे जरा भी हिचक नहीं होनी।
परिस्थितियों के भार से मनुष्यों को
रचनात्मक प्रवृत्ति की ओर ले जानेवाला
वाद व नीति क्षणिक उपचार है। वह
मानव-स्वभाव का परिवर्तन नहीं है। मानव
का स्वभाव (कहना चाहिए विभाव लेकिन
वही आज स्वभाव जैसा हो रहा है) अस-
यम में रम रहा है, पदार्थ पर टिका हुआ
है। अणुव्रत आन्दोलन का लक्ष्य नयी
मोड़ देना है। उसे अपने-आप में टिका
सयम रमाना है। समस्या का स्थायी
समाधान सयम है। मोह इतना बढ़ गया
कि संयम की खोज कठिन हो रही है।
व्यक्ति अकेला आता है और वैसा का वैसा
चला जाता है। वह जीवन भर सम्बन्धों
की जोड़-तोड़ में रहता है। जानकारी का
उपयोग कर्म में नहीं हो रहा है। यही
मोह है। बुरे-भले को जान लेना ज्ञान
मात्र है, बड़ी बात है बुराइयों को छोड़
भलाई के रास्ते चलना। इसमें बाधा
डालनेवाला मोह है। मोह और असयम
एक ही स्वभाव की दो अभिव्यक्तियाँ हैं।
पदार्थ से मोह हटते ही सयम आ जाता
है अथवा सयम जागते ही पदार्थ का मोह
टूट जाता है। निर्मोहता ही संयम है।
राजनीति के सारे वाद पदार्थ-मोह से जुड़े
हुए हैं। मनुष्य-मनुष्य में मोह व्याप्त है।
इसीलिए वे सहजतया उनके गले उतर जाते
हैं। बात स्पष्ट है। जहाँतक जीवनकी आव-
श्यकताओं को पूरा करने का प्रश्न है वहाँ तक
उनसे हमारा झगड़ा भी क्या है? रोटी की
व्यवस्था जीवन का सामान्य प्रश्न है। उसे
कौन कैसे हल करता है, उसे हम महत्व ही
क्यों दें? हमें महत्व इसे देना चाहिए कि
पदार्थ पर किसकी कैसी निष्ठा है? पदार्थ
की निष्ठा में कमी आ सके, उसीमें सयमके

आन्दोलन को समझना है।

गरीबी का निराकरण व रोटी का प्रश्न समाजवाद, साम्यवाद व सर्वोदय से सुलझता है, इसके आधार पर हम सारे नक्शे को बदलना नहीं चाहते हैं। हमारी चिन्तना का आधार यह है कि मानव स्वभाव में कौन कितना परिवर्तन लाता है और उसके मूल्यांकन में कौन कैसी प्रतिक्रिया पैदा करता है। सत्ता और शक्ति पर आधारित वाद संयम के विकास को गति नहीं देते। आगे फिर वे एकबार लोगों को भुलावे में डाल दें। अणुव्रत आन्दोलन पदार्थ की सुविधा के साथ साथ संयम की ओर बढ़ने की दिशा नहीं है। संयम का स्वतंत्र मूल्यांकन और विकास की दिशा है। इससे पदार्थ की सुविधा मिले इसलिये संयम करना उसका अवमूल्यन करना है। संयम का अपना स्वतंत्र मूल्य है। वह जीवन की पवित्रता के लिए किया जाय। पवित्रता के साथ वैयक्तिकता का विकास हो जाता है। उसके विकास में साधनों की अपेक्षा स्वल्प हो जाती है। आवश्यकता पूर्ति के साधनों की दुनिया में छीने-झपटन का भाव विकसित नहीं होता। यह रचनात्मक युग के निर्माण की सही दिशा है।

रचनात्मक आन्दोलन बहुत चल रहे हैं। वे जीवन की सुख-सुविधा के कार्य क्रम प्रस्तुत करते हैं। प्रासंगिक कठिनाइयों को निवारण की दिशा देते हैं। आज आन्दोलन के पास ऐसा सीधा कोई कार्यक्रम नहीं है, फिर भी इस एक अध्यात्म आन्दोलन को हमारे मार्ग-दर्शन समझ हैं। इसमें कोई बड़ा दर्द होनेवाला नहीं दीखता।

प्रश्न रह-रह कर यही उठता है क्या कोरे संयम का आन्दोलन सफल हो सकेगा? इसके लिए आप निश्चिन्त हो जाएं। सफाई की एक रेखा भी निष्फल नहीं होती। यह पदार्थ नहीं है जिसकी सफलता व विफलता संख्या से नापी जाए। अंधकार में प्रकाश की एक रेखा भी पथ दिखा सकती है। अणुव्रती वही होगा जिसे पदार्थ का तीव्र मोह नहीं है। तीव्र मोह से संग्रह और संग्रह के लिए हिंसा होती है। अणुव्रती का मार्ग अहिंसा प्रधान होगा। अल्प हिंसा, अल्प प्रयोग एवं अल्प परिग्रह में रचनात्मक प्रवृत्ति स्वयं सध जाती है। दूसरों के नाम पर नहीं भी चलता है, जो महाहिंसा महा प्रयोग और महा परिग्रह का जीवन जीए। ऐसा व्यक्ति सच्चा अणुव्रती हो नहीं सकता।

रचनात्मक प्रवृत्तियों से संयम की ओर झुकाव हो भी सकता है और नहीं भी। संयम के पीछे स्वावलम्बन और आत्म-निर्भरता स्वयं आती है। ज्यों-ज्यों संयम का विकास होता है त्यों-त्यों आत्मनिर्भरता

बढ़ती जाती है। साधना क्रम के अनुसार एक जिनन्दल्प की कक्षा है, उसके अधिकारी सारा काम अपने हाथों करते हैं। वाहरी वस्तुओं से उनका लगाव वहुत ही कम होता है। इसमें सदेह नहीं कि सयम ही सारी समस्याओं का समाधान है, भले फिर वह प्रत्यक्ष रूपसे या अप्रत्यक्ष रूप से। यह स्वय भले अरचनात्मक हो किन्तु रच-नात्मकता इसी के आस-पास फलती-फूलती है। इसीलिए हमें कोरी रचनात्मक प्रवृत्ति का मोह छोड़ कुछ अरचनात्मकता को भी गति देनी चाहिए।

(पृष्ठ ११६ का शेषांश)

परिमाण में निर्माण होना। अपेक्षित साधनों के अभाव तथा लोगों की आवश्य-कताओं के सीमित होने के कारण वड़ी मशीनों के प्रचलन का प्रश्न न उठता था। अधिकांश कार्य मनुष्यों के हाथों द्वारा सम्पादित होते थे। शासन के अतिरिक्त विभिन्न व्यवसायियों, उनके निकायों तथा जन-सगठनों ने अपने-अपने जिम्मे कुछ निर्माण कार्य ले लिए थे, जिनका वे सचालन करते थे। इसमें वे लोगों की आवश्यकताओं का पूरा ध्यान रखते थे। जनसाधारण, व्यवसायी एव शासन के वीच प्राचीन भारत में जो एकसूत्रता रही, वह उन्हें वहुत समय तक एक-दूसरे से बाँधे रही और उसने देश की आर्थिक एव सामा-जिक स्थिति को दृढ़ता प्रदान करने में वड़ा योग दिया।

एक देवता का निर्माण

भारत माता का जो भव्य प्रासाद सवने मिलकर वनाया है, जिसके जगती पीठ से लेकर शिखर पर्यन्त के चित्र-विचित्र रूप सम्पादन में अनेक व्यक्तियों ने अपना-अपना योग दिया है, उस मन्दिर का देवता एक है और वही सवका आराध्य है। आज इतिहास की शरण लेकर अपने-अपने देवताओं का भी निर्माण करते जा रहे हैं। यह घातक मनोवृत्ति है। भारतीय इतिहास का आद्य देवता प्रजापति है। उसका आराध्य-तत्व भारत महाप्रजा है। उस अखण्ड तत्व को हम नहीं भूल सकते। सप्त पुरियों के यशोगान में, सप्त नदियों के आवाहन में अथवा हिमालय से समुद्र-पर्यन्त मातृभूमि के स्वरूपाराधन में हमारा मन वहीं रमता है, जहा जन, धर्म और भाषाओं के नानात्व में एक ही भूमि धर्म से धारण की हुई है। उसकी अविचाली देहली पर हम सवके मस्तक प्रणत हैं। भारतीय इतिहास का यही दर्शन है, जिसका विकास और सम्वर्धन इतिहासज्ञों की ऋषि-दृष्टि को करना है। — डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

निर्माण की दिशा में

आज हमें क्या सीखना है ?

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

हम भारतीयों को अपनी सभ्यता, अपने चरित्र तथा अपनी संस्कृति पर अभिमान है, होना भी चाहिये, यदि आँख खोलकर कोई विदेशों का भ्रमण करे तथा उनके सम्पर्क में आये तो उसे प्रतीत होगा कि वास्तव में हम इन अमुक-अमुक बातों में रूसी, अमेरिकन, अंग्रेज आदि से कहीं ऊँचे, कहीं आगे हैं और युगों में भी वे हमारी महिमा को न तो पा सकेंगे, न पहचान सकेंगे। अपनी विदेश यात्रा में यदि मुझे कुछ आत्मबल या श्रद्धा करने योग्य सभ्यता मिली तो वह जर्मनी में, विशेषकर पश्चिमी जर्मनी में। पूर्वी जर्मनी में अनुचित निरीश्वरवादिता के कारण प्राचीन जर्मन संस्कृति भी समाप्त सी होती जा रही है।

पर, आश्चर्य यह है कि हमारी अपनी विशाल सभ्यता-संस्कृति की पृष्ठभूमि को लेकर जो भारतीय विद्यार्थी विदेश जाते हैं वे पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध में अपने को अपने देश तथा उसकी सभ्यता को भूल जाते हैं, यह एक बड़े खेद की बड़ी शर्मनाक बात है। मैंने लन्दन में वहाँ के हजारों भारतीय विद्यार्थियों को उन्हीं के सामने अपने देश की पुरानी रूढ़ियों की, विचारों की, स्त्रियों के पुनर्विवाह की तथा इसी प्रकार के अन्य महत्त्वपूर्ण धर्म-कार्यों की निन्दा करते सुना है। उस समय मेरे आश्चर्य का पारावार न रहा जब एक भारतीय हिन्दू विद्यार्थी ने मुझसे कहा कि गीता का हिन्दी में कोई अनुवाद ही लन्दन में उपलब्ध नहीं है और वह विद्यार्थी ईसाइयत व बाइबिल के प्रचार की मांग कर रहे थे।

बाइबिल ईसाइयों का महान् धर्म-ग्रन्थ है और उसका प्रचार होना ही चाहिए किन्तु जिस देश को भी मद्भगवद्गीता का अमूल्य निधि सुलभ हो उसे और कुछ नहीं चाहिये। पर भारत सरकार, प्रदेश की सरकार या अपने परिवारों के पैसे से यूरोप में विशेष शिक्षा पाने के लिए गए हुए विद्यार्थी यह भूल जाते हैं कि उनको अपनी सभ्यता का प्रतिनिधि राजदूत बनकर विदेशों में जाना चाहिए, उसकी आलोचना करने

घर में हो सकती है, बाहर नहीं ।

अधिकांश भारतीय विद्यार्थी पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं, चरित्र-भ्रष्ट हो जाते हैं और अपने घर की देवी उन्हें फूहड़ या गवार प्रतीत होती है । कुछ लोग जो यहां से अपने बच्चों का विवाह करके बाहर भेजते हैं, उस समय सर पीट लेते हैं जब उनका लड़का मेम ले जाता है और घर की गृहणी जीवन भर कलपती रहती है । अविवाहित विद्यार्थियों का अच्छा खासा प्रतिशत मानो चरित्र खो बैठा है या विवाह करने पर वाध्य होता है । जिस देश की सभ्यता मे नारी की प्रतिष्ठा तथा चरित्र की मर्यादा सिखाई गयी हो, उस देश की सतान यदि अपना चारित्रिक सतुलन खो बैठे तो कितने खेद की बात होगी ।

किन्तु, एकबार पश्चिमी सभ्यता में डूब जाने के बाद भारतीय चेतना जागृत भी हो जाती है । यह समझ में आने लगता है कि हमारे देश में पति-पत्नी, पिता-माता, पिता-पुत्र तथा परिवार के ज्येष्ठ का स्थान और सम्बन्ध जो आदर्श ढग से बनाया गया है तथा सिखाया गया है, वास्तव में उसी मे शान्ति तथा सुख है, उसी में सन्तोष तथा जीवन का आनन्द है ।

सन् १९५५ में मुझे लन्दन में एक बड़े ही होनहार तथा तेजस्वी भारतीय

"भविष्य पर अधिक निर्भर न रहे । भूतकी चिन्ता न करें । जीवित ठोस वर्तमान मे जीवन-यापना करें । काम कर, काम करें काम करें । प्रयत्न करें, प्रयत्न करे, प्रयत्न करें । पुरुषार्थ करें, पुरुषार्थ करें, पुरुषार्थ करें । अपनी सारी शक्ति को लगा डालें । हम अवश्य ही सफल होंगे । हम सारे प्रलोभनो एव बाधाओ पर विजय प्राप्त करेंगे ।"

विद्यार्थी मिले । वे मेरे सम्बन्धी भी थे । वहा का रग-ढग देखकर मैंने उनसे पूछा—

"क्यो भाई, कहीं तुम भी किसी विदेशी छोकरी के चक्कर में न पड़ जाना । तुम्हारे बूढ़े पिताजी का दिल टूट जावेगा ।"

उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि ऐसी कोई बात नहीं है । १९५६ में जब वे अपने घर वापस आए तो उनके भाई आदि बड़े उत्साह से उनका स्वागत करने के लिये बम्बई पहुचे । इधर उनके वृद्ध पिता को वायु डाक से एक पत्र मिला, जिसमें एक महिला ने लिखा था—

"कृपया मेरे पति को जल्दी वापस भेजिएगा ।"

जब वे महाशय कानपुर आये तो मैंने उनसे पूछा कि यह सब क्या हुआ— तो उन्होने यही उत्तर दिया—

"जब आप यहां थे तब तो कुछ नहीं था पर जो होना था, वह हो गया।"

मैं और अधिक क्या कहता! भारत से हमारे उस साथी ने कहा कि उनके लिए जीवन तथा देश सब कुछ बदल चुका है। वे इंग्लैंड वापस चले गए। पत्र व्यवहार होता रहा। एक पत्र में मैंने उनको लिखा—"भारतीय इतिहास को न भूलना।" ४ जून १९५७ को उन्होंने मुझे जो पत्र लिखा, वह भारतीय सभ्यता की बड़ी भारी विजय थी। उन्हें ऐसा लग चुका था कि भारतीय सभ्यता ही उनके लिए सब कुछ है और अपने परिवार को भी उन्हें भारतीय बना देना होगा। बना दिया। उनके ४ जून के पत्र का कुछ अंश ज्यों का त्यों मैं उद्धृत कर देता हूं—

"और भाई साहब, मेरा भारतीय इतिहास से प्रेम कम क्यों होने लगा! फिर, केवल ऐतिहासिक घटनाओं को स्मरण रखना तो लाभदायक नहीं—ऐतिहासिक घटनाओं तथा उनके क्रम से मनुष्य को क्या कोई शिक्षा मिल सकती है? यदि हां तो ऐतिहासिक अध्ययन का यही तात्पर्य है। भगवान ने मनुष्य को विवेक दिया है और मनुष्य का कर्तव्य है कि इस देन का पूर्ण रूप से उपयोग करके भौतिक तथा अभौतिक विषयों का ज्ञान प्राप्त करें और बुद्धि द्वारा ज्ञान का उचित रूप से उपयोग करे। बुद्धि और विवेक नर को पशु से अलग करते हैं। पिछली कुछ शताब्दियों के ऐतिहासिक क्रम से ऐसा ज्ञान होता है कि हम भारतीयों में एकता की अत्यधिक आवश्यकता है पर हम आज भी जाति, भाषा, धर्म आदि के कारण विभाजित हैं। अधिकतर भारतीयों को देश से जाति, भाषा या धर्म अधिक प्यारा है। धन और अपमान में काफी अन्तर है पर इसका उपाय क्या है? शिक्षा? अन्तर्जातीय सम्मेलन?

"मुझको दिखता है—मेरा अपना अनुमान है कि इस समस्या का उपाय गांधीजी की शिक्षाओं में पाया जा सकता है—न कि श्री नेहरू की। सामाजिक आर्थिक समस्याओं को सुलझाना जरूरी है पर नैतिक स्तर को ऊंचा करना उससे भी जरूरी है। हां यदि हमारे नेता भारतवर्ष को यूरोप या अमेरिका के समान देखना चाहते हों तो दूसरी बात है। मेरे अनुमान में हम भारतीयों को पश्चिमी सभ्यता को बहुत सोच समझकर लेना चाहिए और केवल न्यूनाधिक मात्रा में। मेरे विचार में श्री विनोबा भावे जी की शिक्षाएं हम लोगों को अधिक लाभदायक सिद्ध होंगी।

"यहां हाल ही में [illegible] व गांधीवाद पर कुछ वाद-विवाद हो रहा

(शेषांश पृष्ठ १९९ पर)

[श्री जयदेव शर्मा 'कमल']

काँटे प्यासे हैं कलियाँ ! दिल चीर दो !
अपना खून बना उनके हित नीर दो !!

ल और काँटे मधुवन के मीत हैं।
ोमलता - कटुता के दोनों गीत हैं।
ोनों रस लेते अपने अनुराग में—
ोनों की मनमानी न्यारी प्रीत है।
वसन्त के नाते ही कलियाँ पीर दो !
काँटे प्यासे हैं कलियों दिल चीर दो !!

पहिन कटीला हार - डार लहरा रही।
उपवन के हित फाग - राग बिखरा रही।
शांति - शांति पाती है उनकी छाँह में—
जीवन को मस्ती अपने पहिरा रही।
मधु के प्याले नहीं हृदय की पीर दो !
काँटे प्यासे हैं कलियाँ दिल चीर दो !!

काँटों की कटुता बदलो निर्माण में।
प्राण डाल दो तुम अनगढ़ पाषाण में।
पाषाणी काया का हो उपयोग भी—
बसे प्यार की छाँह निठुर उस प्राण में।
भावी कलियों के हित मन्द समीर दो !
काँटे प्यासे हैं कलियों दिल चीर दो !!

निर्माण के मुख्य आधार

विचार-शुद्धि और सम्यक् विश्वास

श्री दीनानाथ सिद्धान्तालंकार

गांधी युग में देश ने एक नयी करवट ली, एक नये युग का प्रादुर्भाव हुआ और प्रत्येक भारतीय के हृदय में एक अद्भुत मस्ती आ गयी। गांधीजी द्वारा देश का नेतृत्व सम्भालने से पहले देश भक्ति का स्वरूप विद्रोहियों को गोली देना और गुप्त विध्वंसकारी संस्थाएं बनाकर उन्हें जान से मार डालना था। हम उस समय के युवकों के साहस और मातृभूमि की सेवा की भावना का मूल्य न्यून नहीं करना चाहते। उस समय की परिस्थितियों को देखते हुए सम्भवतः ऐसा करना सर्वथा अनुचित भी नहीं कहा जा सकता। पर गांधीजी ने राजनीतिक मंच पर आते ही इस स्थिति को बदल दिया। उन्होंने कहा—देशभक्ति केवल नकारात्मक भावना नहीं है किन्तु इसका विधेयक स्वरूप भी है।

१९२१ के असहयोग आन्दोलन में सरकारी शिक्षणालय, अदालत, विदेशी वस्त्र, मद्य की दुकानों और धारा सभाओं का बहिष्कार—इस पंचमुखी बहिष्कार के साथ-साथ आन्दोलन का विधेयात्मक स्वरूप भी पंचमुखी था, अर्थात् हिन्दू-मुस्लिम एकता, छुआ-छूत निवारण, मद्यनिषेध, चरखा-खादी और राष्ट्रीय शिक्षा। असहयोग आन्दोलन के स्वरूप में अनेक सुधार और परिवर्तन हुए पर गांधीजी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम में कोई परिवर्तन नहीं किया। इसके विपरीत, उन्होंने प्रत्येक कांग्रेसी के लिए कम-से-कम दो घंटे शरीर श्रम करना और चरखा कातना, उद्योग व अन्य इसी प्रकार का कोई रचनात्मक काम करना अनिवार्य ठहराया। विदेशी शासन के साथ संघर्ष का स्वरूप ज्यों-ज्यों तेज होता गया, गांधीजी का रचनात्मक कार्यक्रम पर त्यों-त्यों जोर बढ़ता गया। उन्होंने कई बार स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा की कि रचनात्मक कार्यों को ठुकरा कर अगर मुझे स्वराज्य मिले तो मैं उसे लेने से इन्कार कर दूंगा। स्वराज्य प्राप्त होने के बाद तो गांधीजी को रचनात्मक कार्यों में इतनी दृढ़ आस्था हो गयी थी और न इसे देखने के लिए इतना अधिक उत्सुक थे कि उन्होंने कांग्रेस को राजनीतिक संस्था के रूप में भंग करके इसे

लोक-सेवकी और रचनात्मक संस्था का रूप देकर मसविदा तैयार किया था। गांधीजी अगर हत्यारे गोडसे की गोली का शिकार न होते तो आज १० वर्ष के बाद देश निर्माण के मार्ग पर कितना अग्रसर हो गया होता—इसकी कल्पना करना भी सहज नहीं है।

आज देश में रचनात्मक और निर्माण कार्यों का अर्थ केवल बाँध, सड़क कुँआ, स्कूल की इमारत, बिजली घर इत्यादि बनाना ही समझ लिया गया है। चरखा, खादी, शिक्षा, एकता, शराबबन्दी इत्यादि—गांधीजी की कल्पना के ये सब निर्माण कार्य अब सरकारी मशीन के अङ्ग बनकर कागजों की मोटी फाइलों में बन्द पड़े हैं। गांधीजी द्वारा विदेशी शासन के विरुद्ध अहर्निश संचालित प्रबल राजनीतिक संघर्ष के बावजूद जितना खादी और तकली का प्रचार उस युग में था, उसका चौथा भी आज, बावजूद अपनी राष्ट्रीय सरकार होने और खादी को सब प्रकार की सुविधाएं प्राप्त होने पर भी, नहीं है। इस विपरीत स्थिति का कारण क्या है?

जरा सोचें, आज हमारे निर्माण कार्यों में कितना दिखावा और मिथ्या प्रचार है? हमारे विचारों में पवित्रता नहीं है और न ही उसमें विश्वास व आस्था है। मंत्री-गण पुलिस के पहरे में सरकारी मोटर गाड़ियों में बैठ गांवों में किसी सड़क, बांध व स्कूल का उद्घाटन करने जाते हैं, इन अवसरों के लिए सुरक्षित श्वेत खादी पोशाक और गांधी टोपी पहने कुछ नामधारी 'जनसेवक'—कांग्रेस सदस्य—मिनिस्टर के आने से घंटा-आध घंटा पहले पहुंच जाते हैं, फोटोग्राफर और प्रेस रिपोर्टर साथ होते हैं, और "राष्ट्रपिता" 'बापू' "गांधी" "निर्माण कार्य" "नेहरूजी" "पंचवर्षीय-योजना" "अन्तर्राष्ट्रीय' "शान्ति" इत्यादि कुछ ठेठ, घड़े घटाये शब्दों के साथ "स्टीरिओ टाइप" भाषण और कुछ तथाकथित सांस्कृतिक कार्यक्रम के साथ दो घंटे में सारी कार्यवाही समाप्त हो जाती है और अगले दिन समाचार पत्रों में बड़े-बड़े शीर्षकों में मंत्रियों के भाषण, उनकी विभिन्न पोजों के फोटो और पोल में कुछ "जनसेवकों" के नाम भी प्रकाशित होजाते हैं। बस, यही है आज के निर्माण-कार्य का वास्तविक नग्न चित्र। इस सारे पूर्व-

आज के तथाकथित निर्माण कार्यों में जिस चीज का सबसे पहले बहिष्कार किया जाता है, वह है विचार-शुद्धि, अपने कार्य में श्रद्धा और विश्वास, इसके बदले जिसे सर्वाधिक प्रिय समझा जाता है वह है सस्ती वाहवाही और अगले चुनाव के लिये वोट 'कैच' करने का ढंग!

(पृष्ठ १२४ का शेषांश)

था—आश्चर्य और हर्ष की बात तो यह है कि कई प्रमुख नागरिकों ने शासन से यह प्रार्थना की है कि एक रायल कमीशन असहयोगवाद का अध्ययन करने के लिए नियुक्त किया जाय। पर दुःख तो यह है कि भारत जिसमें गांधी तथा विनोबा ने जन्म लिया, अपने संतों की शिक्षाओं को भूल सा रहा है। यहां पर कितने ही लोगों की इच्छा है कि जब भारत इस विषय में नेतृत्व धारण करे तो विश्व का कल्याण हो।"

इस पत्र से कई बातें प्रकट होतीं हैं। पहली तो यह कि हमारे मित्र ने अपनी पत्नी का नाम भारतीय बनाया। फिर अपनी नवजात कन्या का। दूसरी यह कि इंगलैंड में आज गांधीजी के अहिंसात्मक सिद्धान्त पर काफी छानबीन की जा रही है और उसके प्रति कोई उदासीन है तो स्वय हम भारतीय। पर सबसे मार्के की बात है हमारे भारतीय मित्रों का—जो सुदूर यूरोप में हैं—आचार्य विनोबा के प्रति आकर्षण।

क्रमशः आचार्य विनोबा की नीतिमत्ता और बुद्धिमता के प्रति आकर्षण इसलिये बढ़ रहा है कि यह हमारी अपनी भारतीय दार्शनिकता है। हम दूसरे का छीनना नहीं चाहते, अपना देना चाहते हैं। हम दूसरे की दरिद्रता को दूर करना राजनीति की वस्तु नहीं, धर्म की वस्तु समझते हैं। हम तो उस देश के हैं जहां भगवान बुद्ध हमको सिखला गये हैं —

उदकं हि नयन्ति नेत्तिका,
उसकारा नमयन्ति तेजनं।
दारुं नमयन्ति तच्छका,
अत्तानं नमयन्ति पण्डिता

यानी नहर वाले पानी को ले जाते हैं, बाण बनाने वाले बाण को ठीक करते हैं और पंडितजन अपने आपका दमन करते हैं।

पर आज हम केवल पराये दमन की सोचते हैं। अपनी अन्तरात्मा में बैठे विकार को नष्ट करने की कभी नहीं सोचते, इसीलिये आज हरेक दूसरे के सुधार की सोचता है पर अपने सुधार की बात पर किसी का ध्यान भी नहीं जाता।

आज हमको सीखना क्या है—केवल संयम। वाणी का बेलगाम दौड़ना, मन का बिना बंधन के दौड़ना, बुद्धि का बिना संतुलन के चलना और हाथ पैर का बिना रोकथाम के भागना। इसीलिये चाहे देश में रहें या विदेश में, संयम के अभाव में हम भारतीय गिरते जा रहे हैं। हमारे शास्त्रों ने संयम को बड़ा महत्त्व दिया है। शास्त्र का कहना है कि संयम में धारणा, ध्यान व समाधि तीनों समाविष्ट हैं।

क्या गीता नए मनुष्य के निर्माण मे हमारी सहायता नहीं कर सकेगी ? नीत्शे और शॉ के अतिमानव के समकक्ष क्या हमारे पास गीतोक्त 'स्थितप्रज्ञ' का कोई पुरुषोत्तमीय आदर्श नहीं है और क्या हम उसे नए जीवन-मूल्यों का बीज-मंत्र नहीं बना सकेंगे ?

गीता और नव-निर्माण

डा० रामरतन भटनागर

आधुनिक जीवन की सबसे बड़ी समस्या आन्तरिक जीवन के पुनर्निर्माण की समस्या है। यह समस्या सारे विश्व की समस्या है, केवल भारतवर्ष की समस्या नहीं है, परन्तु दो शताब्दियों की पराधीनता के बाद आज हम अपने भौतिक पुनर्निर्माण में संलग्न हैं और आंतरिक जीवन के विघटन की समस्या को अभी महत्व नहीं दे सके हैं। समस्या जीवन के मूल्यों से संबधित है। युग बदलता है तो जीवन बदलता है और जीवन के साथ मूल्य बदलते हैं, परन्तु बदलते हुए जीवन के साथ नए मूल्य एकदम नहीं आ जाते। इसके लिए भयकर सघर्ष की आवश्यकता होती है। यह स्पष्ट है कि हम अभी भीतर के इस संघर्ष के प्रति अनुत्तरदायी बने हुए हैं, परन्तु भौतिक जीवन जब समृद्धि से सम्पन्न हो जायगा तो भी आंतरिक जीवन के विघटन की यह समस्या बनी ही रहेगी। अत. यह आवश्यक है कि नव-निर्माण के भीतरी पक्ष को भी हम देखें। इस दिशा में गीता का योगदान महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा।

शताब्दियों तक हमने गीता को आध्यात्मिक दृष्टि से देखा है और अध्यात्म को पराविद्या माना है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम गीता के अध्यात्म को इहलौकिक दृष्टि दें और उससे अपरा जीवन को पुष्ट करें। सच तो यह है कि गीता में लोक-परलोक की दो भिन्न भूमियां हैं ही नहीं। वह समग्र जीवन-दर्शन है। लोक

में परलोक और कर्म में अकर्म को देखनेवाली दृष्टि ही जीवन की लौकिक और आध्यात्मिक भूमियों को एक साथ लेकर चल सकती है और गीतामें ऐसी संपन्न दृष्टि है, यह स्पष्ट ही न गीतार्थ है। गीता के अध्यायों को अलग-अलग लेकर हम उसे ज्ञान-योग कर्मयोग अथवा भक्तियोग का ग्रन्थ कहते हैं परन्तु गीता का समग्र स्वर योग योग में है, उस समग्र अन्तर्दृष्टि में है जो द्वन्द्वों में समाहार उत्पन्न करती है और एकांगी अथवा पक्षपातीय संवेदना के स्थान पर सम्पूर्ण तथा अविरुद्ध समन्वय करती है।

अध्यात्म से प्रायः हम भागते हैं परन्तु गीता में वस्तुओं के मूलगत स्वभाव व प्रकृति को ही अध्यात्म कहा है। पदार्थ-जगत के पीछे जो सूक्ष्म चेतन है वही वास्तविक है अविनाशी तत्त्व है अन्तर्दृष्टि से उसे जाना जा सकता है, ऐसा गीता मानती है। वस्तुओं की इस आत्मा का परिचय ही सच्चा परिचय है और यह परिचय ही वस्तुओं को वास्तविकता देता है। जैसे पदार्थ जड़ है। जड़ इसलिए कि अचेतन है। जड़ पदार्थ को सत्ता देनेवाला तत्त्व तो सूक्ष्म, आंतरिक, अव्यक्त ही है और वही वस्तु-स्वभाव है, मूल प्रकृति है। इसी के संबंध में गीता में कहा गया है।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः॥ । अध्याय, ९ श्लो० ४ ५।

मुझ अव्यक्त मूर्ति ने ही इस समस्त जगत को व्याप्त कर रखा है। सभी पदार्थ मुझमें हैं मैं उनमें नहीं हूँ। मेरा ईश्वरत्व तो देखो कि वे पदार्थ मुझमें हैं भी नहीं। सभी पदार्थों को स्थिर रखनेवाली मेरी आत्मा पदार्थों का भरण-पोषण भी करती है और उनमें स्थित भी नहीं। इस अव्यक्त को ही गीताकार ने कभी प्रकृति से परे पुरुष, कभी क्षर और अक्षर के परे पुरुषोत्तम कहा है। यह पुरुषोत्तम उदासीन और तटस्थ रहने के कारण कर्मबंधन में नहीं पड़ता। (अ ९) यही वस्तुओं का मूलतम और श्रेष्ठतम है। (अ १५ १९) भारतीय दृष्टि जीवन की पापमूलकता के प्रति आविश्वासी है। उसने इसकी भी कल्पना की है और अव्यक्त को इसातीत पाया है। इसीलिए भगवान कहते हैं कि मैं अमृत-मृत्यु और सत्-असत् में भी हूँ। यही नहीं, "सर्वोऽसि" कहकर वे मूल चेतन-तत्त्व के ऐकत्व और सर्वव्यापकत्व की भी घोषणा करते हैं। इनमें

अध्याय में विभूतियों का वर्णन करने के बाद ग्यारहवें अध्याय में भगवान अर्जुन को दिव्य-दृष्टि देकर अपना विराट रूप दिखलाते हैं, जो वास्तव में कालरूप ही हैं। इसे उन्होंने स्वय तेजमय, अनन्त और मूलभूत (आद्य) कहा है, परन्तु अध्यात्म के इस सूक्ष्म, तरल दुर्ग्राह्य स्वरूप को देखकर मनुष्य व्यथित न हो, यह भी वांछनीय है। इससे वह कर्म अकर्म के सत्य स्वरूप को समझे और उच्चतर धर्मभूमियों पर सचरण करे। इस सदर्भ में गीता का अध्यात्म कर्मयोग (या कर्म-दर्शन) बन जाता है।

जीवन की मूलगत अध्यात्म-भूमि की कल्पना भारतीय दर्शन की सबसे बड़ी देन है। इसे ही दैवी दृष्टि कहा गया है। इसके विपरीत है आसुरी-दृष्टि, जो जगत को असत्य में प्रतिष्ठित एव ईश्वरविहीन, अपरस्परसभूत एव कामहैतुक मानती है। (अध्याय १६, श्लोक ८) इस आसुरी दृष्टिकोण को हम आधुनिक परिभाषा में आध्यात्मिक दृष्टिकोण के विपक्ष मे भौतिकतावादी दृष्टिकोण भी कह सकते हैं, जिससे उत्पन्न विडम्बनाओं का गीता में व्यापक वर्णन है। (अ० १६, श्लोक ११-२०) यह दृष्टि-द्वन्द्व आज भी चल रहा है और इस द्वन्द्व के कारण ही हमारे जीवन-मूल्यों मे अस्थैर्य आ गया है।

इस अध्यात्म-दृष्टि अथवा दैवी-दृष्टि की उपलब्धि मनुष्य को कैसे हो और अध्यात्म-दृष्टि से सपन्न होने पर मनुष्य क्या हो जाता है, किन ऊचाइयो पर उठ जाता है, गीता में इसी का विशद विवेचन है। जीवन-विकास के निमित्त गीता प्रकृति में तीन गुणों की कल्पना करती है . सत्व, रज और तम। मूल तत्व गुणातीत है और मनुष्य भी गुणातीत बनकर ही ससिद्धि को प्राप्त होता है। (अध्याय १४, श्लोक २३-५) परन्तु फिर भी व्यावहारिक भूमि पर जीवन का श्रेणी-विभाजन माननीय है। इन तीनों गुणो के पार जाने पर ही मनुष्य जन्म-मृत्यु-जरा-दुख से विमुक्त होकर "अमृतत्व" को प्राप्त करता है, परन्तु लोकाचार मे सात्विकी वृत्ति भी कम श्रेष्ठ नहीं है। इस सात्विकी वृत्ति को सात्विकी श्रद्धा से ही प्राप्त किया जा सकता है।

अध्यात्म-भूमि को स्पष्ट करने के लिए गीता ने अनेक पहलू बदले हैं। सांख्य-दर्शन के विकासवादी दृष्टिकोण को पल्लवित करते हुए अक्षर तत्व अथवा पुरुष को क्षेत्रज्ञ कहा गया है और प्रकृतिजन्य पचमहाभूत, अहकार, बुद्धि, पचेन्द्रिय आदि को क्षेत्र माना गया है। क्षेत्रज्ञ ही जानने योग्य है, वरेण्य है, ऐसा माना है और उपनिषदों के ब्रह्म की तरह उसकी विरोधी-धर्माश्रयता स्थापित की गई है। (अध्याय १३,

श्लोक १२ १७) परन्तु प्रश्न यह होता है कि मनुष्य इस सूक्ष्म, अन्तर्निहित चेतन-तत्त्व से अपना क्या संबंध जोड़े, जिसे ब्रह्म, परमेश्वर, पुरुषोत्तम एवं अक्षर कहा गया है। गीता के दूसरे अध्याय में ही भगवान कृष्ण ने अर्जुन की देह-बुद्धि को मिटाया है और अविनाशी तथा अप्रमेय आत्मा का स्वरूप दर्शाया है। यह आत्मा सूक्ष्म अवस्था है। यह परमात्मा से अभिन्न है। इस आत्म-तत्त्व को पहचानना ही "दर्शन" है। ज्ञान (सांख्य), योग (कर्म) और भक्ति (श्रद्धा) से यह पहचान संभव है। इसकी उपलब्धि होने पर ज्ञानी कर्मयोगी (स्थितप्रज्ञ) और भक्त का व्यवहार क्रम से उच्चतम नैतिक एवं मानवीय मूल्यों का आकलन करने में समर्थ होता है। नाम भेद एवं प्रकार-भेद होने पर भी जीवनादर्श समान हैं। ये शाश्वत मानवीय तथा नैतिक मूल्य भारतीय अध्यात्म-दृष्टि से ही संभूत हैं अतः इसीसे ओतप्रोत हैं। केवल बुद्धि के स्तर पर उन्हें ग्रहण नहीं किया गया है। पश्चिम की दृष्टि जिस व्यावहारिक नैतिकता पर ठहर जाती है उसी के आगे भारतीय नैतिकता का अध्यात्म-भूमि पर अधीन प्रसार है।

परन्तु अध्यात्म दृष्टि-सम्पन्न पुरुष के लिए सबसे बड़ी समस्या तो कर्म-अकर्म की है। कर्म के बिना जीवन असंभव है और कर्म के साथ फल लगे हैं और कर्मफल का ही प्रकारान्तर आवागमन-चक्र है। इस प्रकार कर्म बंधन बन जाते हैं तो कोई क्यों करे। समस्या दार्शनिक ही नहीं है व्यावहारिक भी है; क्योंकि कर्म विषयमूलक है। उससे राग का जन्म होता है राग (आसक्ति) से काम (इच्छा) उत्पन्न होती है। काम से क्रोध, क्रोध से संमोह संमोह का फल है स्मृति-भ्रंश (विस्मरण) तथा तज्जन्य विवेक-हानि (बुद्धिनाश) (अध्याय २ श्लोक ६२ ६३) फलस्वरूप आत्मा की प्रसन्नता चली जाती है और दुखानुभूतियों की अवतारणा होती है। गीता दर्शन-ग्रन्थ नहीं है, साधना-धर्म है। अतः इसमें कर्म-विवेचन को बड़ा महत्व मिला है। इसके मूल में ही अर्जुन की कर्म-संबंधी जिज्ञासा विमूढ़ता है और समाधान भी कर्म-संबंधी चेतना (बुद्ध-तत्परता) से हुआ है।

कर्म-अकर्म के इस द्वन्द्व को गीता में कई समाधान मिले हैं, १ निष्काम कर्म (कर्म संबंधी स्पृहा का अभाव) २ समत्वर्पण कर्म ३ योगस्थ कर्म (आसक्तिरहित कर्म) ४ विवेकबुद्धिसंपन्न कर्म (यह जानकर कि गुण गुणों में बर्त रहे हैं मैं नहीं कर रहा) इस प्रकार कर्म अकर्म बन जाता है और वह बंधन नहीं रहता। कर्म-सन्यास के

ोध में गीता लोक संग्रह के निमित्त कर्म तत्परता का आदेश देती है और विष को
मृत बनाकर प्रस्तुत करती है। राग-द्वेष अथवा काम-क्रोध मोह से निर्मुक्त तटस्थ
ाचरण ही गीता का व्यवहार-दर्शन है। हृदय के दौर्बल्य को पीछे छोड़कर और
र्तव्याकर्त्तव्य से ऊपर उठकर जब मनुष्य स्वय को निमित्तमात्र मानकर काम्य कर्म
रता है तो उसे कोई पाप नहीं लगता, यह गीता का अक्षय मगल सदेश है। ऐसा
र्म वांछनीय ही नहीं, सग्रहणीय भी है। इससे ही धर्म का अभ्युत्थान होता है और
आसुरी वृत्तियों के लौह-पाश से सद्वृत्तियों का त्राण होता है।

यह है गीता का कर्म-दर्शन जो नए निर्माण में हमें सुस्पष्ट आधार-भूमि दे, सकता
है। धर्म-निरपेक्ष भाव-भूमि पर हम दैवी सपदा का स्वप्न चरितार्थ नहीं कर सकते,
क्योंकि उसमें अध्यात्म-दृष्टि की अस्वीकृति है। उससे देह दृढ़ होगी, आत्मा क्षीण
होगी। अध्यात्म पर मानस में ही प्रज्ञा सार्थक होगी, क्योंकि तभी उसमें करुणा और
मैत्री के कमल खिल सकेंगे। पश्चिम का प्रज्ञावाद भौतिक (आसुरी) दृष्टि से चमत्कारी
है, परन्तु उसके भीतर सर्वनाश के अकुर भी विकसित हैं। अपने देश के भौतिक
पुनर्निर्माण के समय हमें योजनाओं के पीछे आनेवाले "मनुष्य" को देखना होगा।
क्या गीता इस नए मनुष्य के निर्माण में हमारी सहायता नहीं कर सकेगी? नीत्से और
शॉ के अतिमानव के समकक्ष क्या हमारे पास गीतोक्त स्थितप्रज्ञ का कोई पुरुषोत्तमीय
आदर्श नहीं है और क्या हम उसे नए जीवनमूल्यों का बीजमत्र नहीं बना सकेंगे?

दो मुक्तक

[श्री महेश सन्तोषी]

मुझे क्यों गम हो मेरा इन्सान अभी जिन्दा है,
धरती पर प्यार, नभ मे चाद अभी जिन्दा है,
सोने चादी के इस भगवान का अहसान नहीं,
मेरे ईमान का भगवान अभी जिन्दा है।

●

गीत गाने तो चला मगर साज भूल गया,
आदमी जिन्दगी का एक राग भूल गया,
दिमागी लू ने कुछ इस तरह से झुलसा मन,
दिल ही दिल की आवाज आज भूल गया

राष्ट्र के नव-निर्माण का प्रश्न

श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर

जूलियस फ्यूचिक ने अपनी पुस्तक (फाँसी के तख्ते से) का अन्त इस वाक्य से किया है—"वास्तविक जीवन में दर्शक कोई नहीं होता, सबको जिन्दगी में हिस्सा लेना पड़ता है।"

कितना मर्म-स्पर्शी और अर्थपूर्ण है यह वाक्य !

१९२१ से १९४७ तक देश की स्वतन्त्रता के युद्ध में भाग लेता रहा और मुझे बराबर यह अनुभव हुआ कि देश के लोग समझते हैं कि स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ना कांग्रेस का काम है—हाँ एक अच्छा काम है सहायता और सम्मान का पात्र पर काम है कांग्रेस का ही !

१५ अगस्त १९४७ को गान्धीजी ने एक महान वाक्य कहा था—"परमात्मा का धन्यवाद है कि अब देश भक्ति कांग्रेस की ही बपौती नहीं रही !"

मैं अपने भाषण में एक वाक्य अक्सर कहा करता था—"वे दिन अब नहीं रहे जब परमात्मा की कृपा से या सन्तों के चमत्कार से राज्य हासिल किया करते थे और पादरी पन्डे अपनी फीस लेकर स्वर्ग के लिए पाप-मुक्ति का सर्टीफिकेट दिया करते थे। यह बीसवीं शताब्दी है। इसमें डाक्टर वैद्य बीमार को दवा बता सकते हैं, उसे स्वास्थ्य के लिए दवा तो स्वयं उसे ही पीनी पड़ती है।

गान्धीजी के वाक्य में भी यही सत्य है और फ्यूचिक ने भी वाक्य के रूप में इसे ही दोहराया है—वास्तविक जीवन में दर्शक कोई नहीं होता सबको जिन्दगी में हिस्सा लेना पड़ता है।

युद्ध एक सेना करती है। स्वतन्त्रता का युद्ध एक पार्टी भी लड़ लेती है पर आज भारत के सामने राष्ट्र के नव-निर्माण का प्रश्न है, इस वास्तविक जीवन में हम दर्शक नहीं रह सकते, 'अनुभव' इसमें हिस्सेदार होने का निमन्त्रण है कि व्यक्ति अपने को शुद्ध करके विकास समाज के सुधीकरण में अपना हिस्सा बँटाए। आजकल की भाषा में इसीका नाम है है राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण का शिलान्यास !

बुद्धिमान पुरुष सूक्ष्म आकाश में रमता है और छोटे को बहुत छोटा नहीं समझता और बड़े को बहुत बड़ा नहीं मानता क्योंकि वह जानता है कि आकार-प्रकार की कोई मर्यादा नहीं होती। —लोउत्स

नैतिक उत्कर्ष और सिनेमा

डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी पी-एच० डी०

हमारी आकांक्षाओं के अनुरूप हमारे आदर्श का निर्माण होता है तथा आदर्श के अनुरूप हम आचरण करने का प्रयत्न करते हैं। हम जो चाहते हैं, वही बनने का प्रयास करते हैं। आदर्श हमारी इच्छा और हमारे आचरण की बीच की कड़ी है अथवा आदर्श वह सोपान है, जिसके माध्यम से हम अपनी महात्वाकांक्षा की सिद्धि का स्वप्न देखते हैं। कभी हम आदर्श की प्रतिमा की पूजा करते हैं, कभी उसके चित्र के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करते हैं, कभी उसका गुणगान करके उसका स्मरण करते हैं। अस्तु,

आजकल हमारे कमरों में किनके चित्र लटकते दिखाई देते हैं? सिनेमा के सितारों के। अखबारों में किनकी चर्चा होती है? सिनेमा के सितारों की। हमारे नवयुवक हस्ताक्षर एकत्र करते हैं तो इन्हीं के, आपस में चर्चा करते हैं तो इन्हीं की। वे सिनेमा के गीत गाते हैं तथा स्वय सिनेमा के सितारे बनना चाहते हैं। सिनेमा के सितारे हमारे लिए आदर्श बन चुके हैं। हमारे बालक-बालिका राजकपूर तथा नरगिस बनने के स्वप्न देखा करते हैं, अस्तु।

हमको कोई साबुन इसलिए इस्तेमाल करना चाहिए, क्योंकि सिनेमा की अमुक तारिका उसको इस्तेमाल करती है। हमको कोई क्रीम इसलिए खरीदनी चाहिए क्योंकि सिनेमा की अमुक तारिका की चमड़ी उसके कारण मुलायम रहती है। हमको अमुक पाउडर इसलिए लगाना चाहिए, क्योंकि सिनेमा की अमुक तारिका की तस्वीर उसके डिब्बे के ऊपर छप रही है। हमको चाहिए कि अमुक सिगरेट पीया करें, क्योंकि सिनेमा का अमुक सितारा उसको पीता है। हमको चाहिए कि अमुक मजन का प्रयोग किया करें, क्योंकि मजनवाले के पास सिनेमा के मशहूर सितारे के द्वारा दिया गया सर्टीफिकेट या तमगा मौजूद है। हमारे सांस्कृतिक समारोह में अमुक गाना होना चाहिए, क्योंकि उसको गानेवाली तारिका को गाने की फीस के रूप में पचास हजार रुपये मिले हैं तथा जब उसके गाने का दृश्य दर्शकों के सम्मुख आता है, तब पर्दे के ऊपर दुअन्नियाँ

महत्वपूर्ण स्थान भी स्वीकार करता हूँ, परन्तु साथ ही यह भी मानता हूं कि यद्यपि जीवन में उनका स्थान है, तथापि वे हमारे जीवन के सर्वस्व नहीं हैं। मसूरी दन्दान मंजन के लोकप्रिय होने का कारण यह था कि उसकी डिब्बी के ऊपर पं० जवाहरलाल के हस्ताक्षर सहित एक प्रमाण पत्र छपा रहता था तथा लक्स साबुन के प्रचलित होने का कारण यह है कि कुमारी निम्मी उसकी कायल हैं। दोनों स्थितियों में भेद है साथ ही एक अन्तर भी है। नेहरू जी अपने नाम को विज्ञापन के साथ जोड़ने के विरोधी थे और ये तारिकाएँ इस प्रकार अपने नाम देकर धंधा भी करती हैं तथा अपना विज्ञापन भी करती हैं। अब आप ही विचार कीजिए कि आप अपने लड़के का पण्डित जवाहरलाल के पास जाना पसन्द करेंगे अथवा सिनेमा की किसी तारिका के घर की धूल फांकना।

इनके कारण हमारे समाज के मूल्य बहुत कुछ बदल चुके हैं और बहुत तेजी के साथ बदलते जा रहे हैं। ऐसे कितने नवयुवक अथवा नवयुवतियाँ हैं, जो राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, शंकराचार्य, दयानन्द, गांधी प्रभृति विभूतियों के चित्र अपने कमरे में टांगते हैं अथवा उनके जीवन के बारे में कुछ जानकारी रखते हैं। परन्तु

परमात्मा ने मनुष्य को जब दुनिया में भेजा तो उसे दो घट भी दिये। एक में सत्य भरा था और दूसरे में सुख। दोनों घट देते समय परमात्मा ने कहा-संसार में जा रहे हो सत्य की खूब रक्षा करना -प्राण देकर भी; और सुख सदैव खर्च करते रहना। लो दाहिने हाथ के घड़े में सत्य है, बायें हाथ के घड़े में भूलना मत।

थके मांदे इन्सान को रास्ते में नींद आगई। शैतान तो ऐसे अवसर की ताक में था ही। उसने बांये हाथ का घड़ा दांये में और दांये का बांये में कर दिया।

नतीजा यह हुआ कि दुनिया में आकर इन्सान सुख की जी-जान से रक्षा करने लगा और सत्य को बेरहमी से फेंकने लगा।

—खलील जिब्रान

शायद ही ऐसा कोई नवयुवक हो, जिसकी मेज पर सिनेमा की तारिकाओं का एल्बम न हो तथा जो उनकी जीवनी तथा उनके भावी कार्यक्रम से परिचित न हो। हमारा निश्चित मत है कि ये कामुक विज्ञापन अपरिपक्व बुद्धि वाले हमारे नवयुवकों तथा नवयुवतियों के सम्मुख नए ढंग के

(शेषांश पृष्ठ १५० पर)

न्र-निर्माण की युगान्तकारी दिशा

[पं० दीनदयाल उपाध्याय महामन्त्री अ० भा० जन संघ]

जगत में निर्माण और विनाश दोनों साथ-साथ चलते रहते हैं। एक नाम और रूप से संबोध्य वस्तु, जब दूसरा नाम और रूप धारण कर लेती है तो पहली का विनाश और दूसरी का निर्माण होता है। जंगल साफ कर हम खेत बनाते हैं, किसी गड्ढे को पाटने के लिये पास के एक ढूहे को खोदकर मिट्टी डालते हैं जंगल, गड्ढे और ढूहे का विनाश तथा खेत एवं समतल मैदान का निर्माण होता रहता है। वास्तव में सृष्टि में परिवर्तन होता रहता है हम अपनी रुचि एवं शक्ति के अनुसार उस परिवर्तन को निर्माण या विनाश का नाम दे देते हैं। कहीं वन-महोत्सव मनाकर हम जंगल खड़ा करना चाहते हैं तो कहीं जंगल काटकर हम मैदान बना रहे हैं। दोनों को ही हम निर्माण कहते हैं। कारण यह परिवर्तन हम एक निश्चित ध्येय के अनुसार करते हैं अर्थात् निर्माण और विनाश सापेक्ष हैं, उनका निर्णय ध्येय अभिमुख या विमुख होने के आधार पर ही किया जा सकता है। अतः निर्माण की इच्छा रखनेवालों को अपनी गति की दिशा निश्चित करनेके लिये ध्येय के अनुसार ही खोज करनी होगी किन्तु आज भारत की सबसे बड़ी समस्या यही है कि देश में न तो अपने ध्येय की स्पष्ट धारणा है और न आवश्यक एकता। "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना" के अनुसार मतभिन्नता तो स्वाभाविक है, किन्तु राष्ट्र एक आवश्यक इकाई है, उसमें विचारों की भिन्नता से हानि नहीं होगी। हां भावनायें भिन्न हों तभी तो हम छिन्न-विच्छिन्न हो जायेंगे। हम कुछ भी निर्माण नहीं कर पायेंगे।

स्वतंत्रता की लड़ाई में लोगों के मार्ग भिन्न भिन्न रहे होंगे, किन्तु सबकी भावना एक थी और इसलिये न्यूनाधिक मात्रा में सभी देशभक्तों के प्रयत्न का परिणाम स्वतंत्रता की प्राप्ति में हुआ। किन्तु आज हमारी निर्माण योजनायें क्यों चल रही हैं हम क्यों काम कर रहे हैं, इसका यदि किसी से उत्तर पूछा जाय तो दिल पर हाथ रखकर शायद ही कोई यह कहेगा कि वह भारत के लिये काम कर रहा है। प्रत्येक

...दना में से मेरा या मेरे वर्ग का कितना ...भ होगा, यही प्रश्न सबके सम्मुख ...ता है।

हम भारत का नव-निर्माण चाहते हैं किन्तु हमारी कर्म प्रेरणा धन या उससे प्राप्त होनेवाले सुखों में है। प्रत्येक ने अपने आपको बाजार में मोल पर लगा रखा है। जिसकी बोली अधिक हो वह खरीद ले जाय। मजदूर काम करेगा, किन्तु जहां उसे अधिक पैसे मिलें, पूंजीपति पैसा लगायेगा उस उद्योग में, जिसमें अधिक नाफा हो। अध्यापक, लेखक, कवि, यहां तक कि अनुसन्धान करनेवाले वैज्ञानिक और उपदेशक भी अपना मोल-भाव करते रहते हैं। चुनावों में एक दल के प्रत्याशी दूसरे दल का टिकिट लेने को तैयार हैं, यदि दूसरा दल उन्हें आर्थिक सहायता दे सके। भाषण देनेवाले जिससे पैसा पायेंगे उसकी वकालत करने में कोई संकोच नहीं करते। आज हमारी भावनाओं का यदि कोई केन्द्र है तो वह है पैसा।

...माज में प्रत्येक का कर्म बहुमूल्य है। जिस हीरे का मूल्य नहीं ...का जा सकता, उसका मोल-भाव कर अपमान क्या किया जाय? वह अपने आराध्य की सेवा में ही अर्पित किया जा सकता है। अपनी ...भूमि एवं मानव से बढ़कर हमारा आराध्य और कौन हो सकता है?

भावना के अनुसार कर्म का संस्कार मन पर पड़ता है। उसी के अनुरूप कर्म में तेजस्विता आती है। आज हम निर्माण की नई नई योजनायें बना रहे हैं। उनमें से अनेक पूरी भी हो रही हैं किन्तु ऐसा लगता है कि मकानों, बांधों और कारखानों का निर्माण हो रहा है किन्तु देश के मानव का विनाश होता जा रहा है। हमारे जीवन के मूल्य बदल रहे हैं। देश भक्ति और मानवता के मानदण्ड से हम अपने कर्मों का मूल्यांकन नहीं करते।

जो लोग जर्मनी होकर आये हैं, वे जर्मन जाति की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। उन्होंने युद्ध-ध्वस्त जर्मनी को थोड़े ही वर्षों में पुनः खड़ा कर दिया। यह क्योंकर हो सका? उनके कार्य की प्रेरणा पैसा नहीं, जर्मनी का नव-निर्माण है। वहां का मजदूर दस और बारह घन्टे काम करता है और उसके लिये कोई अतिरिक्त वेतन नहीं मांगता, बल्कि यह कहता है कि आठ घण्टे काम तो मैंने मजदूरी लेकर किये और बाकी का मैं देश के लिये करूंगा। वहां का पूंजीपति धन कमाने के लिये नहीं, बल्कि जर्मनी के खोये बाजारों को प्राप्त करने के लिये रुपया लगाता है और कम मुनाफा लेकर भी

(शेषांश पृष्ठ १५० पर)

रहो और रहने दो।

मांग रही है आज मनुजता रहो और रहने दो।

क्योंकि ताप के अन्तराल में पली यहाँ पर क्षमा
ढलती निशि के अंधकार में राग ज्योति का गाथा
अगणित यत्नों से निर्मित हिमगिरि की दृढ़ छाती पर
छोटे से पौधे ने अपना है अधिकार जमाया

चाहो तो तुम प्रबल वेगमय विस्तर सिंधु बन बहलो—
किन्तु निकट ही तृप्ति दायिनी सरिता भी बहने दो।
रहो और रहने दो॥

वैभव भर कण्ठ से कहती है प्रासाद कहानी
किन्तु अनसुनी अब न रहेगी कुटियों की भी वाणी
माना सपनों से अनुरंजित तारों की गाथाएं
पर जीवन का कोष छिपाये है धरती अनजानी

कहने का अधिकार विश्व में सबको एक सदृश है—
अपनी बात कहो औरों को भी अपनी कहने दो।
रहो और रहने दो॥

युद्ध-भय संकट दलगत संघर्ष स्वार्थ के फल हैं
ऊँच-नीच के भेदभाव से पाती हिंसा बल है
राजनीति मानव मंगल की सच्ची परिभाषा है
कोई भी क्यों करे भला अब यह विडम्बना छल है

अपने प्रति अन्याय विषमता पल भर सहन करो मत
निर्बल को सत्ताधारी का रोष नहीं सहने दो।
रहो और रहने दो॥

• श्रीमती विद्यावती मिश्र •

धर्म और समाज के पाखण्डवाद की भित्ति पर खड़ा हुआ कालीचरण चक्रवर्ती की भावनाओं का प्रासाद उस समय धूल-धूसरित हो गया जब उनके कानों में अन्तरात्मा और सच्ची मानवता का स्वर पहुंचने लगा। व्यर्थ की रूढ़िवादिता और दूषित परम्पराओं के बन्धनों से उन्मुक्त होकर उनका हृदय विशाल गगन में विहार करने लगा। अडिग विश्वास और आस्था ने जन्म लिया। नवपथ के निर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ किन्तु ....

आज भी उन खण्डहरों में असीम वेदना और दर्दभरे गीतों का अक्षुण्ण साम्राज्य स्थापित है। वीरानियाँ सिसक रही हैं, करुणामय वातावरण फूटकर रो रहा है। निस्तब्धता-सी फैली हुई है चारों ओर। एक सिहरन-सी दौड़ गई रे शरीर में। डरते-डरते मैं आगे बढ़ा।

वीरानियाँ भी आबाद थीं। यहाँ भी सुख दुख की जिन्दगी बसर करती थी। राजमहल का चप्पा-चप्पा खुशी से झूम उठा था, जिस दिन नलिनी ने चक्रवर्ती परिवार में पदार्पण किया। लाखों की ध्वनि से समस्त वातावरण गुंजायमान हो उठा था। जीवन में स्फूर्ति एवं मादकता

परिचित गलियों को लांघता हुआ जब पुरोहितजी की चौपाल के समीप पहुँचा तो हृदय पीड़ा एवं करुणा से भर गया। अभिमान से मस्तक ऊँचा किये चक्रवर्ती महाशय का वह खण्डित राजमहल अपने अन्तर की निहित गाथा को दोहरा रहा था। मैंने चारों ओर दृष्टि डाली। सारी स्मृतियाँ सजग हो उठीं। कभी ये

की लहर दौड़ गई थी।

ब्राह्मण परिवारों में कालीचरण चक्रवर्ती का ऊंचा स्थान था। गांवके छोटे-बड़े सभी कार्यों में उनका पूरा पूरा हस्तक्षेप था। रेशमी परिधानों में लिपटे, पांवों में खड़ाऊ पहिने खट-खट करते जिधर भी वह निकल जाते "पंडितजी पाँय लागू", "पंडितजी नमस्कार" सुनते-सुनते उनके

मानी थी। हाँ, यदि असावधानी से देने वाले की परछाई भी चौके में पड़ जाती तो उनका भोजन अछूत हो जाता। चक्रवर्ती महाशय बिना खाये चौके से निकल आते। उस समय उनके क्रोध की सीमा नहीं रहती। नलिनी को धमका डालते। पहली पत्नीकी लड़की सुनन्दा को बुरी तरह फटकार देते, किन्तु उनका लड़का फणीन्द्र पिता के चौके से निकलने से पूर्व ही घर की चारदिवारी से पार हो जाता।

नलिनी पतिके इन आडम्बरपूर्ण आचरणों को अच्छा समझती हो, सो बात नहीं, किन्तु पतिके साथ उसे भी ढोंग में शामिल होना पड़ता था, यद्यपि उसकी आत्मा ऐसा करने को गवाही नहीं देती थी। कभी कभी दोनों में बहस हो जाती। चक्रवर्ती महाशय झोंक उठते—"पता नहीं भगवान का मेरे ऊपर क्या प्रकोप था, जो नास्तिक को मेरे पल्ले बांध दिया। धर्म के खिलाफ जाती है।"

"जिसे आप धर्म कहते हैं," नलिनी अपने विचारों को रखती "वह निरा पाखण्ड है। ऐसा धर्म किस काम का, जो आत्मा को बांध ले। प्रेम को जकड़ ले। यह धर्म नहीं, धर्म का कलंक है। आप गंगा स्नान, पूजा-पाठ ही मुख्य धर्म समझते हैं। मैं सचाई, सेवा और परोपकार को मुख्य धर्म मानती हूं। स्नान-ध्यान, पूजा व्रत धर्म के साधन मात्र हैं, धर्म नहीं।"

"भावुकता और विवेक में बड़ा अन्तर है नलिनी!" चक्रवर्ती महाशय समझाते—'मेरे आचरण शरीर की पवित्रता और मन की शुद्धि के लिये हैं।"

"किन्तु उन कार्यों से क्या लाभ जो परस्पर छुआछूत और छोटे बड़े का भेद-भाव उत्पन्न कर दे। धर्म का काम तो आपस में मेल पैदा करना है, मनमुटाव नहीं। यदि किसीको छू देने से, साथ बैठकर खाने-पीने से धर्म चला जाय तो वह धर्म बोदा है। उसका कोई अस्तित्व नहीं। धर्म की नींव तो दृढ़ होनी चाहिये।"

"तुम्हें तो किसी संस्था का उपदेशक होना चाहिये था। धर्म-कर्म सब पर पानी फेर देने को कहती हो। जानती हो लोगों के हृदय में कितनी इज्जत है मेरे लिये?"

"और इस इज्जत का दायरा कितना सीमित है—यह मैं ही नहीं, अनेक जानते हैं। लोग कहते हैं कि पंडितजी में अभिमान है। हर बात में परहेज करते हैं। मैं कहती हूँ कि हमारा व्यवहार ऐसा होना चाहिये जो श्लाघनीय हो, सामाजिक रूढ़ियों के बन्धनों से परे हो,

यहाँ ऊँच नीच, छोटे-बड़े की भावना न हो। भगवान ने सब इन्सानों को एक-सा बनाया है। भेद-भाव तो समाज ने उत्पन्न किया है। समाज की दूषित परम्पराओं को समाप्त कर यदि भ्रातृ-भाव की नींव पर नया निर्माण शुरू करें तो आप, लोगों के हृदय पर राज करने लगें।"

"उपदेश देना तो एक कला है। मैं कोई नासमझ हूँ जो मुझे सीख दी जा रही है?" चक्रवर्ती महाशय क्रोध से बिफर उठे—"महिला समाज में बैठ-बैठकर तुम्हारा मस्तिष्क विकृत हो गया है। मैं अपने मार्ग पर अडिग हूँ।"

नलिनी में फिर तर्क-वितर्क की सामर्थ्य नहीं रहती। बस क्षोभकर या तो विवश बनकर बैठी या पति के पास से उठकर चली जाती।

बाते का प्रसंग अलग था। नलिनी ने दस वर्षीय सुनन्दा को स्कूल जाने के लिये तैयार कर दिया। काशीचरण चक्रवर्ती गिरिजाकुमार घोष की कचहरी में काम करते थे। समीप ही विद्यालय था। वहीं सुनन्दा की शिक्षा थी। आशुतोष तो अभी गाँव की पाठशाला में पढ़ता था। चक्रवर्ती महाशय अपने बच्चों का बड़ा ख्याल रखते। किसीके साथ खाने पीने, उठने-बैठने की सख्त मनाही थी। वे उन्हें भी अपने जैसा ही बनाने की फ़िक्र में थे किन्तु बच्चों पर माँ का प्रभाव अधिक था। पिताके भय समझते भी न उनका अनुसरण नहीं कर पाते।

कचहरी से लौटते समय वह सुनन्दा को घर ले चलने के लिये काशीचरण महाशय पाठशाला पहुँचे तो पता लगा कि वह देर हुई वह आशुतोष के साथ गाँव की ओर चली गई। पंडितजी सुनते ही आग-बबूला हो गये। आशुतोष के पिता भील थे। निर्धनता ने उनकी कमर तोड़ रखी थी फिर भी दो अक्षर पेट से पढ़ाने की आशा से पेट काट काटकर बच्चे को पढ़ा रहे थे। आशुतोष पढ़ने में होशियार था और साथ ही नम्र भी। बड़ों को देखते ही नमस्कार कर नम्रता से झुक जाता। पर पंडितजी को सुनन्दा का उसके साथ जाना अच्छा नहीं लगा। वे लम्बे लम्बे डग रखते हुये गाँव की ओर चल दिये। मजूमदार बाबू के बगीचे के समीप जाकर देखा—सुनन्दा और आशुतोष दोनों झुरमुट में बैठ गये हैं रोटियाँ खा रहे थे। क्रोधित हो दूर से ही आवाज लगाई—"सुनन्दा!"

सुनन्दा सहमी हुई-सी पिताके पास आकर खड़ी हो गई। डरते-डरते बोली—"आज जल्दी छुट्टी हो गई थी तो आशुतोष के साथ गाँव के लिए चल पड़ी।"

"लेकिन यह क्या हो रहा था और यह रे हाथ में रोटी कैसी है? तेरी माँ ने बनाकर दी थी तो स्कूल में ही क्यों नहीं खाली। यहाँ धीवर के लड़के के साथ बैठकर खाने से रोटियाँ अछूत नहीं हो गईं?"

"नहीं पिताजी! ये रोटियाँ आशुतोष अपने साथ लाया था। कटहल के अचार के साथ उसने मुझे भी खाने को दे दी।" सुनन्दा ने सीधे स्वभाव से कह दिया।

"और हम दोनों भाई-बहिनों ने मिलकर खूब मजे में खाई।" आशुतोष ने आगे बढ़कर कहा, पर पंडितजी की मुद्रा को देखकर मुरझा गया।

पंडितजी ने अपना सिर पीट लिया। सुनन्दा का हाथ पकड़कर घर ले गये। रास्ते में न जाने क्या क्या कह डाला?

"बाप तो आचरण की शुद्धता के लिये मरा जाता है। पर जब माँ के उपदेश ही बच्चों को बिगाड़ने पर तुले हों तो खाक धर्म का पालन करें।" घर में पैर रखते ही चक्रवर्ती महाशय बोले।

नलिनी आशंका से कांप उठी। पूछा—"क्या कर दिया सुनन्दा ने?"

"उस धीवर के सपूत के साथ रोटी खारही थी। सब छुआ-छूत पर पानी फेर दिया और भ्रष्ट हो गई। हमारे साथ बैठकर खाने के काबिल भी न रही।"

"बच्चे हैं। फिर कौन-सी छूत लग गई सुनन्दा को?"

"सुन लो ऐसा कहोगी ही। इसे अभी नहलाओ। इसके मुख से २१ बार गायत्री मंत्र का जाप कराओ।" पंडितजी ने आदेश दिया मानो सुनन्दा के भयंकर अपराध का यही प्रायश्चित हो।

"हाय दैया। ऐंठ जायगी। मारोगे बच्ची को?" और नलिनी सुनन्दा को भीतर ले गई।

पर अपनी जिद पर अड़कर कालीचरण महाशय ने उसी कड़कड़ाती सर्दी में सुनन्दा को नहलाकर छोड़ा। सिसक-सिसक उसने २१ बार गायत्री मंत्र का पाठ भी कर दिया। पर जब वह सुबह सोकर उठी तो उसका शरीर तप रहा था। क्योंकि नहाकर ठंड लग जाने से ज्वर आगया। नलिनी पंडितजी के पाखण्ड पर दुखित हो उठी। पंडितजी को कुछ महसूस अवश्य हुआ पर उन्हें इतना संतोष जरूर था कि उन्होंने धर्म-विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया।

सुनन्दा की हालत दिनों-दिन गिरती चली गई। खांसी भी आने लगी। सभी लोगों ने उसे कलकत्ते ले जाकर दिखाने की सलाह दी, किन्तु चक्रवर्ती महाशय अपने नियमों में व्यवधान उपस्थित हो जाने के भय से कलकत्ता जाने के लिये

उतार न दूंगी। नन्दिनी सिर पीटकर रह गई—"तुम्हारा क्या है। तुम पुरुष हो। हृदय कठोर है। सब कुछ सह लोगे। अगर मुन्नी न रही तो सिर्फ तुम्हारे दंभ के कारण। मैं इतनी बड़ी शक्ति कहाँ से पाऊंगी ?"

चक्रवर्ती महाशय बिना कहे चले गये। मुन्नी दो रातें भी न काट सकी। चल बसी। घर में हाहाकार मच गया।

अचानक गाँव में महामारी फैल गई। उधर अनावृष्टि का प्रकोप भी प्रबल हो उठा। कुएं, तालाब, पोखर, बावड़ी सभी सूख गये। अनाज का एक भी दाना नहीं हुआ। लोग भूखों मरने लगे और गांव छोड़कर भागने लगे। नन्दिनी ने पति से आग्रह किया कि वह गांव छोड़ दें। मगर चक्रवर्ती महाशय बोले—"मैं कहाँ जाऊंगा। जिस मिट्टी में जन्म लिया है यदि भगवान चाहेगा तो उसीमें जीवन बना रहेगा। कहीं और जाकर पता नहीं कैसे लोग मिलें। धर्माचरण का पालन न कर सका तो भ्रष्ट होकर मेरा शरीर एक दिन भी जीवित न रह सकेगा।"

चक्रवर्ती महाशय गांव में ही जमे रहे। नतीजा यह हुआ कि फणीन्द्र भी महामारी की बीमारी का शिकार बन गया। नन्दिनी के धैर्य का बांध टूट गया। चक्रवर्ती महाशय बाहर गये हुये थे। घर आये तो देखा—फणीन्द्र पानी पानी चिल्ला रहा था। वह धम्म से पास जाकर बैठ गये। उनकी हठ-धर्मी ने मुन्नी की जान तो ले ही ली थी। नन्दिनी की ओर देखकर बोले— घर में पानी रखा है तो बच्चे को दे दो। सचमुच मैं बड़ा कठोर हूँ।"

"घर में तो जल की एक भी बूंद नहीं है। अपना तालाब तो कभी का सूख चुका है। हाँ चमारों के तालाब में सुना है, पीने भर को पानी रह गया है। कहो तो वहाँ से घड़ा भर लाऊं ?"

"अरी, धर्म भ्रष्ट करने पर तुली है। उन नीच अछूतों के घर का पानी पियेगा फणीन्द्र ?" चक्रवर्ती महाशय का तत्कालीन धर्म-विवेक जाग उठा।

"क्यों नासमझ बच्चे की जान लेने पर तुले हो। सब कुछ खोकर भी झूठे धर्म पर अड़े हो। पानी में कौन-सी छूत घुस गई है जो धर्म चकनाचूर हो जायगा !"

फणीन्द्र का गला सूख रहा था। पानी-पानी कहते उसकी जबान लड़खड़ा रही थी। आंखें मिची जा रही थीं। कुछ क्षण का खेल था। नन्दिनी दौड़कर भीतर गई। सब आले-दिवाले छान डाले। गंगाजल की एक भी बूंद न मिली। फणीन्द्र के प्राण पखेरू उड़ गये। नन्दिनी ने दहाड़ मारकर अपना सिर जमीन पर

टेक दिया। फिर वह न उठ सकी।

कालीचरण महाशय ने इधर-उधर देखा। सारा घर सांय सांय कर रहा था। उन्होंने दोनों हाथों में अपना मुह छिपा लिया। उनके हाथ खून से रँग चुके थे। उनकी अन्तरात्मा चीख-उठी—'मैं सचमुच हत्यारा हूँ। झूठे धर्म की बलिवेदी पर मैंने सब कुछ लुटा दिया।"

अश्रुपूर्ण नेत्रों के अन्धकार में उन्हें फणीन्द्र का चेहरा दिखाई देने लगा। उन्होंने दौड़कर उसे चूम लिया। होश आया तो देखा कि वह आशुतोष को गोद में लिये प्यार कर रहे थे। उनके पाखण्ड का महल ढह चुका था। उससे बोले—"बेटा, अपने तालाब से लाकर एक बूंद पानी फणीन्द्र के मुह में डाल दो। वह प्यासा ही सो गया है।"

कालीचरण चक्रवर्ती गांव से चले गये। परोपकार और सेवा ही उनका धर्म हो गया। कुछ साल बाद वह अपने गाव पहुचे। सब कुछ उजड़ा पड़ा था। उन्होंने घर मे पदार्पण किया। उसके कण-कण में आवाज गूज रही थी—"मानवता ही सच्चा धर्म है। न कोई ऊचा है और न कोई नीचा। प्यार से सबको गले लगाए। यही सच्चा पथ है।"

उसके बाद कालीचरण चक्रवर्ती को किसीने नहीं देखा।

स्मृतियाँ धुधली पड़ गई। मेरी आँखो मे आसू थे। मैंने एकबार स्निग्ध-दृष्टि से खटिन राजमहल की ओर देखा और चला आया। चक्रवर्ती महाशय मेरी ही कचहरी में काम करते थे।

●

बोध-चित्र —

तितली ! पतंगा !!

[प्रो० देवेन्द्र 'दीपक' एम० ए०]

तितली—रग-बिरगी, खूबसूरत।
पतगा—काला घिनौना, बदसूरत।
खूबसूरती छलती है, बदसूरती जलती (उत्सर्ग) है।
तितली कभी इस फूल पर तो कभी उस फूल पर।
पतगा आया तो झूल-झुलस गया एक ही ज्योति पर।
तितली छलती है और पतगा जलता है।
पतंगा क्यों जलता है ? इसलिए कि उसके हृदय में प्यार है।
तितली क्यों छलती है ? इसलिए कि उसके हृदय में व्यापार है।
तितली और पतगा, विलासी और तपस्वी।

(पृष्ठ ११५ का शेषांश)

आदर्श उपस्थित करने का कार्य कर रहे हैं और उन्हीं के अनुरूप उनके आचरण बनते जा रहे हैं।

हम यदि चाहते हैं कि हमारे देश के भावी कर्णधार एवं नागरिक सदाचार की प्रेरणा प्राप्त करें तो हमें उनके सम्मुख उच्च आदर्शों की चर्चा करनी होगी तथा आदर्श व्यक्तियों की ओर उन्हें उन्मुख करना होगा। इसका एक ही उपाय है कि ऐसे विज्ञापनों के विरोध में जनमत अपनी शक्ति का परिचय दे और इन्हें बन्द करावे। जब चलचित्री स्त्रियाँ हमारे लिए आदर्श बन गई हों और कुछ कन्याएँ निर्लज्ज बनकर अर्द्धनग्नावस्था में बाजारों में सैर करने की महत्वाकांक्षा करने लगी हों तब हमको यह विचार करना ही पड़ेगा कि ऐसी स्थिति क्यों कर उत्पन्न हो गई है इसके फलस्वरूप हम कहां और किधर चले जायेंगे तथा इससे बचने का उपाय क्या है। लोग सिनेमा के सितारों से उद्घाटन कराने की व्यवस्था करके टिकट के नाम पर धन बटोरने की बातें तो करने ही लगे हैं कहीं उनके द्वारा दीक्षान्त भाषण दिलाने की योजना न बनाई जाने लगे। देश के भविष्य में रुचि रखनेवाले महानुभावों को नए आदर्शों के प्रति सावधान होकर इसके निराकरण पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए।

(पृष्ठ १४१ का शेषांश)

अपनी अच्छी चीज बेचता है। हम यदि भारत का निर्माण करना चाहते हैं तो भारत को आँखों से ओझल न होने दें। हमारे कार्य की प्रेरणा सब का भला हो। फिर हम देखेंगे कि हमारे सामने अनन्त कर्मक्षेत्र खाली पड़ा है। हम अपनी-अपनी प्रकृति और योग्यता के अनुसार आगे बढ़ सकते हैं।

पैसे से किसी के श्रम का मूल्य नहीं लगाया जा सकता। विधवा के इकलौते पुत्र को डाक्टर मृत्यु के मुख से बचा लाता है। क्या कभी धन देकर वह विधवा डाक्टर के ऋण से उऋण हो सकेगी। अध्यापक शिक्षा देकर विद्यार्थी को इस योग्य बनाता है कि वह अपने जीवन में लाखों कमा सके। विद्यार्थी अपनी कमाई में से अपने गुरु को किस हिसाब से क्या दे? पुलिस या सेना के सिपाही से कितना लिया जाय कि वह अपनी सेवाओं का पूरा मूल्य पा सके? क्या पैसे के आधार पर हम शहर की सफाई करा सकते हैं। वास्तविकता तो यह है कि समाज में प्रत्येक का कर्म बहुमूल्य है। जिस हीरे का मूल्य नहीं आंका जा सकता उसका मोल-भाव कर अपमान क्यों किया जाय। वह तो अपने आराध्य की सेवा में ही अर्पित किया जा सकता है। अपनी मातृभूमि एवं मानव

करोड़ों रुपये खर्च होनेके उपरान्त भी अनेक ज्वलन्त और हृदय-विदारक समस्याओ से ग्रस्त जनता की करुणावस्था देखकर शायद हम भी कह उठें कि आज भारत में—

निर्माण कार्य स्थगित किये जायँ !

प्रो० दयाशकर दुबे एम० ए०

जबसे भारत में प्रथम पचवर्षीय योजना आरंभ हुई है तबसे अनेक बड़ी-बड़ी सरकारी योजनाओं में अरबों रुपया व्यय हो चुका है। इन योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिये भारत सरकार और राज्यों की सरकार ने जनता पर करो का भार बहुत बढ़ा दिया और नये नोटों को छापकर कागजी मुद्रा का प्रचार भी देश में अत्यधिक कर दिया है। इससे वस्तुओं के मूल्यों में बहुत वृद्धि हो गई है। खाद्य पदार्थों की कीमतें तो इस समय इतनी अधिक हो गयी हैं कि जितनी अधिक महायुद्ध के समय में भी नहीं थी। इससे गरीब जनता को, मध्यम श्रेणीके व्यक्ति को और निश्चित आय पानेवाले व्यक्तियों को विशेष कष्ट हो रहा है।

निर्माण की योजनायें तो सरकार ने सोच-विचारकर ही बनायी हैं, परन्तु उनके अनुसार कार्य ठीक ढग से नहीं हो रहा है। इसका मुख्य कारण है सरकारी कर्मचारियों में और विशेषकरके लोकसभा और विधानसभा के सदस्यों में नैतिकता की कमी। सन् १९४७ के पहले कांग्रेस के सदस्यों ने बहुत स्वार्थ त्याग किया, परतु जबसे शासन की बागडोर कांग्रेस के हाथ में आई तबसे कांग्रेस के सदस्यो का नैतिक पतन आरंभ हो गया और अब वे स्वय अपने और अपने मित्रों और सबधियो के लिये सरकारी योजनाओं से अनुचित लाभ उठाने का प्रयत्न कर रहे हैं। सरकार की कमजोरी से प्रत्येक सरकारी विभाग में भ्रष्टाचार बढ़ गया है और निर्माण योजनाओं से जनता को, विशेषकर गरीब

से बढ़कर हमारा आराध्य और कौन हो सकता है ?

आज हम यदि निर्माण चाहते हैं तो अपने अन्दर के स्वार्थ और दानव का विनाश करें तथा परमार्थ और मानव का निर्माण करें। यही सच्चा भारत है। इस भारत का विनाश कर यदि हमने कुछ इमारतें और कारखानें बना भी लिये तो किस काम के ? हम कर्तव्यशील सद्विवेक-पूर्ण मानव के स्थान पर "आहार निद्राभय-मैथुन" रत प्राणी का मशीन के पुरजे बन गये तो हम निर्माण की ओर नहीं, विनाश की ओर ही अग्रसर होंगे।

व्यक्तियों को उचित काम नहीं हो रहा है। काम हो रहा है केवल उन थोड़े से व्यक्तियों को जो कांग्रेस के सदस्य होकर कुछ राजनैतिक अधिकार प्राप्त कर चुके हैं या जो ऐसे विभागों के कर्मचारी या ठेकेदार हैं जिनमें योजनाओं के अनुसार लाखों रुपया खर्च किया जा रहा है।

भाखरा-नांगल दामोदर घाटी हीरा कुण्ड बांध योजना । में करोड़ों रुपयों के व्यय के समाचार पत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं। सामूहिक विकास योजनाके अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में करोड़ों रुपये खर्च किये जा रहे हैं परन्तु उनसे गरीब किसानों को बहुत कम लाभ पहुँचा है। अरबों रुपया खर्च कर देने पर भी बेकारी की समस्या, विशेषकर शिक्षित व्यक्तियों की बेकारी की समस्या, हल नहीं हो पाती है। द्वितीय पंच-वर्षीय योजना से थोड़े से व्यक्तियों को अवश्य काम होगा; परन्तु यह गरीब व्यक्तियों की दशा सुधारने में सफल होगी, इसके कोई लक्षण नहीं दिखाई देते हैं। गरीब देशवासियों के लाभ के लिये ही योजनायें बनायी गई हैं और निर्माण कार्य हाथ में लिये गये हैं परन्तु जब अरबों रुपयों की पूरी व्यवस्था कर देने पर भी निर्माण-कार्यों द्वारा गरीब जनता को लाभ नहीं होता, तब इन सब कार्यों को जारी रखने से जनता के कष्टों में वृद्धि ही होती है। इन निर्माण-कार्यों को कुछ समय तक के लिए स्थगित कर देना ही उचित होगा जब तक इन कार्यों को ठीक ढंग से करने के लिये देश में पर्याप्त संख्या में ईमानदार और उच्च चरित्र वाले व्यक्ति न मिलने लगें।

कांग्रेस के अधिकारियों का इस समय प्रथम कर्तव्य यह है कि वे बिना किसी संकोच के कांग्रेस से ऐसे सदस्यों को शीघ्र ही अलग कर दें जो अपने निजी स्वार्थों के लिये अनैतिक कार्य करते हैं और देश में भ्रष्टाचार बढ़ाने में सहायक होते हैं। देश के दुर्भाग्य से कांग्रेस-अधिकारियों में भी कुछ ऐसे सदस्य हैं जो अपने को इस दोष से नहीं बचा पाते हैं। ऐसे सदस्यों को गंभीरतापूर्वक आत्म-निरीक्षण करना चाहिए और देश के कल्याण के लिये स्वयं ही इस संस्था से अलग हो जाना चाहिये। यदि बिना पक्षपात के अच्छी तरह जांच की जाय तो कांग्रेस में अनैतिक सदस्यों की संख्या ६ प्रतिशत से अधिक निकलेगी। कांग्रेस के अधिकारी अनैतिक सदस्यों को अच्छी तरह से जानते हैं परन्तु उनको इन सदस्यों को कांग्रेस से अलग करने का साहस इसलिये नहीं होता कि अपने चुनाव में उनको इनसे सहायता नहीं मिलेगी। तब वे चुनाव में सफल न हो सकेंगे। इसी स्वार्थ की भावना के कारण कांग्रेस में

निर्माण की

समाजवादी व साम्यवादी

भूमिकाएँ

श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

"समानी प्रपासह्वोऽन्नभाग
समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यचोऽग्निं सपर्यतारा
नाभिमिवाभित ॥"
"समानो मन्त्र समिति समानि
समान मन सह चित्तमेषाम् ।
समान मन्त्रमभि मन्त्रये व
समानेन वो हविषा जुहोमि ॥"

आदि काल में जब मानव-समाज अपने समाज का निर्माण कर रहा था, उस समय उसके मन में क्या विचार थे, उसके सामने क्या आदर्श थे, समाज के विषय में उसकी क्या कल्पना थी, इसका

अनैतिकता और भ्रष्टाचार बढ़ रहा है ।

जब तक कांग्रेस के सब सदस्यों में स्वार्थ-त्याग और देश प्रेम की वह भावना नहीं जागृत होगी, जो भावना महात्मा-गांधी के नेतृत्व में स्वराज प्राप्त करने के पहले पायी जाती थी, तब तक देश के निर्माण कार्य स्थगित कर देने में ही भारत-वासियों का सच्चा कल्याण है ।

आभास उपर्युक्त मन्त्रों में मिलता है । ये मन्त्र मानव-विकास की किस अवस्था को सूचित करते हैं, यह कहना कठिन है, किन्तु इतना सत्य है कि उस समय का मानव सर्वत्र समानता चाहता था । वह प्याऊ और भोजन में ही नहीं, अपितु विचार-विमर्श कार्य संकल्प और ध्येय आदि बातों में भी समानता और समता के दर्शन करने को लालायित था । वह विषमता और असमानता की कल्पना तक करना नहीं चाहता था । यही कारण है कि वैदिक ऋषि को यह प्रार्थना करते हुए पाते हैं कि संकल्प, उद्देश्य, विचार और मन भी एक हों । यह सब वह अच्छे संगठन के उद्देश्य से चाहता था । यथा—

"समानी व आकूति
समाना हृदयानि व ।
समानमस्तु वो मनो
यथा व सुसह असति ॥"

पर मानव की यह इच्छा पूरी नहीं हुई । जब तक मानव शिकार करता था,

था पशु-पालन कर गुजारा करता था तब तक तो यह बहुत सम्भव था कि समग्र अन्न-पानी एक समान हो सब एक भोज एक भवन एक वस्त्र एक विचार और एक इरादे से काम करें। किन्तु जब मानव एक जगह बस गया बस्तियाँ घनी होती गईं खेती जीविका का मुख्य साधन हो गया, तब सामाजिक स्वार्थ के ऊपर वैयक्तिक स्वार्थ ने स्थान पा लिया। जब भूमि एक समान नहीं थी और जब पुरुष स्त्री भी एक समान मेहनती नहीं थे और न सब एक समान कृषि-कर्म में कुशल थे। अतः पैदावार के घटने बढ़ने के साथ विषमता भी आई। एक जगह बस जाने से मानव का मन भी संकीर्ण हो गया और वह अपना और अपने परिवार का लाभ सर्वोपरि देखने लगा। संकल्प और उद्देश्य की एकता भी नहीं रही। भूमि के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होने से उसका दृष्टिकोण भी विशाल और उदार नहीं रहा। भूमि पर स्वत्व प्राप्त करने की इच्छा ने भी विषमता को बढ़ाया। फलतः यह उक्ति ही प्रसिद्ध हो गई :—

"जर जमीन और जोरू
ये तीन हैं झगड़े के मूल"

खेती ही जब जीविका का मुख्य साधन था। तब विषमता भी तो थी। किन्तु वह असमानता अधिक नहीं थी। क्योंकि बड़े से बड़ा भूस्वामी अपने और निकट पर कितना खर्च कर सकता था। जीवन को सुखी बनाने के साधन समान सब समय साथ ही जाते थे। भूमि की उत्पादन-क्षमता की सीमा है। वह प्रकृति की कृपा पर निर्भर थी। वर्षा और ओले सबके लिए एक समान होते थे। वे जमींदार और किसान में फर्क नहीं करते थे। इसलिए वह विषमता और असमानता अधिक नहीं थी। वह विरोध को जन्म देने में समर्थ नहीं थी।

परन्तु मानव बुद्धि इतने से सन्तुष्ट नहीं हुई। अन्न का उसने आविष्कार किया था और इसके साथ रसोई घर और भट्ठियों का जन्म हुआ। लेकिन जब तक उसने लोहे को नहीं खोजा था उसकी शक्ति कुण्ठित थी। लोहे की खोजने मानव के हाथ में साधन दिया जिसके द्वारा उसने इस वसुधा की काया ही पलट दी। भाप और लोहे के मेल ने सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को आमूलचूल बदल दिया। भाप से चलती रेलगाड़ियों और जहाजों ने समय और दूरी पर विजय पाने की ओर जानदार कदम बढ़ाया। जो वे न कर सके वह कमी हवाई जहाजों ने पूरा कर दी। १९२८ में लिंडबर्ग जब एक विमान में अटलांटिक को पार कर पेरिस पहुँचा था तब मानव ने हर्ष से मौन्त्य की

उसने समय व दूरी पर विजय प्राप्त की। किन्तु उसका विजय का अभिमान मिथ्या था। क्योंकि अणुबमों ने जापान के दो नगरों नागासाकी और हिरोशिमा को कुछ क्षणों में ध्वस्त कर दिया। उनकी गगनचुम्बी लाल-लाल लपटों में मानव ने अपने आत्मविनाश और सर्वनाश के दर्शन किए। क्या इस सर्वनाश से बचने का कोई उपाय है?

आज मानव, प्रकृति पर जिस तेजी से विजय पा रहा है उसके कारण मानव की समस्यायें सुलझने के बदले और भी अधिक उलझ गई हैं। यांत्रिक युगने निस्सन्देह उत्पादन बढ़ाया, उपभोग्य योग्य वस्तुओं की वृद्धि की है, किन्तु इसके साथ-साथ विषमता और असमानता भी बढ़ा दी है और आज मानव जाति और धर्म के आधार पर ही नहीं, अर्थ और वित्त के आधार पर भी परस्पर अनेक वर्गों में अपने को विभक्त पाता है। वर्ग-विभेद को किसने जन्म दिया?

फ्रेंच-राज्य-क्रान्ति राजनीतिक विषमता के विरुद्ध थी, यद्यपि सोलहवें लुई के पास जो जलूस पेरिस से वार्साई को मिलने गया था, वह रोटी की माग करता हुआ गया था, लेकिन उसका नारा था—'स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुता।' फ्रेंच-राज्य-क्रान्ति ने जनता को राजनीतिक स्वतन्त्रता दी। किन्तु इस राजनीतिक स्वतन्त्रता ने दासता के बन्धनों को नहीं काटा। उत्पादन के साधन मुट्ठी-भर लोगों के ही हाथमें थे। एक मशीन की शक्ति हजारों लोगों के बराबर थी। जिसके पास एक मशीन हो, उसकी शक्ति का क्या अनुमान सहज में किया जा सकता है? इसने आर्थिक और सामाजिक विषमता को बढ़ाया। इसका विस्तार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हुआ। इस विषमता ने महायुद्धों को जन्म दिया। शान्ति की खोज में भटकता हुआ मानव महायुद्धों के भँवर मे फस गया। इससे पार निकलना उसके लिए कठिन हो गया।

> *हम स्वय ही अपने भाग्य-विधाता हैं। हमने स्वयं ही अपने ससार की सृष्टि की है। हम अपने भाग्य के स्वय ही उत्तरदायी है। हम अपने कष्ट और आनन्द के स्वय ही शिल्पी हैं।*

सोवियत रूस ने इसका उपाय बताया। उसने आर्थिक समानता की स्थापना का बोड़ा उठाया। वहाँ उत्पादन के सब साधनों, व्यापार-व्यवसाय के सब क्षेत्रों और मानव-जीवन के विविध क्षेत्रों पर सरकार का स्वामित्व और नियन्त्रण स्थापित किया गया, पर इसके द्वारा भी

आर्थिक विषमता का अन्त नहीं हुआ और न सामाजिक समानता स्थापित हुई। व्यक्ति के शाश्वत मूल्यों का जो ह्रास हुआ, वह इससे अक्षम रहा। व्यक्ति और समष्टि के मध्य क्या सम्बन्ध हो इसका निर्णय अभी तक नहीं किया जा सका।

मानव जीवन का उद्देश्य क्या है? मानव का अस्तित्व समाज के लिए है, या समाज का अस्तित्व व्यक्ति के लिए है ये प्राथमिक और मूल प्रश्न हैं किन्तु इनका कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया जा सका है। इन प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर न मिलने के ही कारण मानव आज भी परेशान है। वह आज जिस वास्तविक शान्ति की खोज कर रहा है वह उसको नहीं मिल रही है और वह उसको प्राप्त होगी यह उसको यथार्थ विश्वास भी नहीं है।

एक समय था जब व्यक्ति अपने लिए केवल अपने लिए जीता था। फिर वह अपने परिवार, बिरादरी, समाज और राष्ट्र के लिए जीने लगा। आज राष्ट्र के लिए लाखों युवक हँसते-हँसते प्राणोत्सर्ग करने के लिए तत्पर हैं। क्या देश व राष्ट्र की सीमाओं का अन्त होगा? मानव-समाज एक है और सबका समानाधिकार है। क्या इस सत्य को स्वीकार किया जायगा? प्रत्येक मनुष्य को उसकी आवश्यकताओं के अनुसार मिलना चाहिए और हरेक मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुसार अधिक से अधिक काम करना चाहिए। यह सिद्धान्त क्या कभी व्यावहारिक बनाया जायगा? आज का अनुभव है कि शामिल और सबों के काम को कोई अपना नहीं गिनता।

कथा प्रसिद्ध है। सम्राट् अकबर ने एक गाँव के लोगों से कहा था कि सब एक लोटा दूध तालाब में डालें। सबने यही सोचा—"शेष सब तो दूध का लोटा डालेंगे ही यदि वह एक लोटा पानी का डाल देगा, तो किसको क्या पता चलेगा और इतने बड़े दूध के तालाब में एक लोटा पानी कहाँ मालूम होगा। इसका फल क्या हुआ? सुबह देखा गया कि तालाब पानी से भरा हुआ है। किसी ने भी एक लोटा दूध उसमें नहीं डाला। इससे हम क्या समझें?

मानव का चिन्तन और विचार-धारा बदलनी चाहिए। इसका अर्थ यही है कि साम्यवादी व समाजवादी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए मानव के विचारों में आमूल परिवर्तन करना होगा। मानव अपने परिवार, अपने बन्धु-बान्धवों के प्रति मोह का परित्याग कर दे। किन्तु क्या यह सम्भव है? मानव में ये तीन ऐषणायें हैं—पुत्रैषणा वित्तैषणा और लोकैषणा। इन तीन ऐषणाओं पर मानव

द विजय पा सके, तो यह बहुत सम्भव कि साम्यवादी व समाजवादी सामाजिक वं आर्थिक व्यवस्था स्थापित हो सके।

"यत्र विश्व भवत्येक नीडम्"

समस्त विश्व एक घोंसले के समान हो, यह ऋषि की कल्पना साकार और मूर्तरूप धारण कर रही है। बम्बई में नाश्ता करिये, लन्दन में मध्यान्ह भोजन कीजिए, इङ्गलैंड में मिलने-जुलने का काम निपटाइए और रात्रि भोजन के समय तक नई दिल्ली पहुच जाइए, यह आज हवाई यात्रा से सम्भव हो गया। चिड़ियों की तरह सायकाल अपने घोसले में लौट आइये। किन्तु जो भौतिक जगत में सम्भव हुआ है, वह क्या मानसिक जगत में भी हो रहा है? क्या मनुष्य मनुष्य के निकट आया है? क्या अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि स्थाना में एशियाई लोगा का बड़ी सख्या में बसना सम्भव है? क्या सोवियत रूस साइबेरिया का मैदान भारत और चीन की अधिक बढी आबादी को बसाने के लिए छोड़ने को तैयार होगा?

इन प्रश्नों को पूछने का क्या कारण है? अब यह मान लिया गया है कि एक जगह की गरीबी, दीनता और कगाली सारी दुनिया की गरीबी और कगाली का कारण है। ऊचे से जल नीचे गिरता है, खाली स्थान नहीं रह सकता। खाली स्थान की रिक्तता को पूरा करने के लिए चारों ओर से हवा दौड़ती है। किन्तु आज का मानव अविकसित, अनुन्नत दलित पीड़ित देशा की मुक्त हस्त से भेदाभेद के बिना सहायता करने को तैयार नहीं। फलत. प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अन्तर्निहित शक्तिया का विकास करने का अवसर नहीं मिलता। पहले इस मार्ग में अर्थाभाव, सामाजिक परिस्थितियाँ और धार्मिक विचार कारण थे। किन्तु आज आर्थिक एव राजनीतिक विचारों का अन्तर भी व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियो के विकास मे बाधक है। आत्मोन्नति के लिए आज सबको समान अवसर प्राप्त नहीं है इसका कारण क्या है?

कवि ने मानव के सामने एक आदर्श रखा था—

"अय निज परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदार चरितानांतु वसुधैव कुटुम्बकम्॥"

लेकिन क्या मानव का विकास उस स्थिति तक पहुँच गया है कि वह सारी वसुधा को अपना कुटुम्ब समझे? यदि यह हो जाता तो सौतिया डाह का अन्त हो जाता और सौतेली मां को पास-पड़ोसियों और सौत की सन्तान से जली-कटी न सुननी पड़ती। सारी वसुधा को मानव

संयम और परिश्रम इन्सान के दो सर्वोत्तम चिकित्सक हैं। परिश्रम से भूख तेज होती है और संयम अति भोग से रोकता है। —रूसो

अपना कुटुम्ब क्यों नहीं मान सका? कहा गया है—

'मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यो पश्यति स पण्डितः॥'

अपने समान सब प्राणियों को समझने और मानने की आत्म-बुद्धि का अभाव ही इस बात का कारण है कि विश्व में समाजवादी व साम्यवादी व्यवस्था का स्थापित नहीं होना सम्भव नहीं हो रहा है। प्रश्न यह है कि उच्च गुणों का मानव में विकास कैसे किया जाय; जिससे यह सम्भव हो सके। कानून द्वारा स्थापित समाजवादी व्यवस्था चिरस्थायी नहीं हो सकती। इसके लिये मानव का हृदय और विचार परिवर्तन होना चाहिए। यह कैसे हो?

मनु ने इसके वास्ते यम नियमों के पालन पर जोर दिया है। यम नियम क्या हैं—

'शौच सन्तोष तपः स्वाध्याय
परिधानानि नियमाः।'
अहिंसा सत्यास्तेय
ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः॥'

मानव-जीवन जब इन यम-नियमों के अनुसार ढाला जाय, तब नूतन सामाजिक व्यवस्था स्थापित हो सकती है। जब तक विरासत पाने के लिए व्यक्तियों में झगड़े होते रहेंगे तब तक साम्यवादी व समाजवादी व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकती। जब तक एक वर्ग व्यक्ति अपने कुल के वैभव और पिता की सम्पत्ति के सहारे जीवन बिताना मानवता का अपमान नहीं समझता और यह अनुभव नहीं करता कि इससे उसकी शक्ति कुण्ठित हो जाती है तब तक यह आशा नहीं की जा सकती कि विश्व में सामाजिक व्यवस्था बदलेगी।

विभिन्न रंगों और विभिन्न प्रकार के गंधों के फूलों के समान विश्व के विविध भागों में अथवा विभिन्न सामाजिक व्यवस्थायें एक साथ नहीं रह सकतीं। मानव में इतनी सहिष्णुता नहीं है। पहले धार्मिक विचारों की विभिन्नता के कारण युद्ध होते थे और आज राजनीतिक आदर्शों और विचारों की विभिन्नता के कारण युद्ध होते हैं। धर्मान्धता आज भी विद्यमान है। क्योंकि तितिक्षा और सहिष्णुता का अभाव है। अतः विश्व का रंग-रूप बदलने के लिए आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि मानव के अन्तःकरण को बदला जाय, उसके विचारों में परिवर्तन किया जाय। तब यह साम्यवादी व्यवस्था स्थापित होगी जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आवश्यकता के

ुसार मिलेगा और हरेक व्यक्ति अपनी
क्ति और योग्यता के अनुसार काम करेगा
ौर अपनी शक्ति और सामर्थ्य पर
कमात्र भरोसा करेगा, जन्म, वंश आदि
र नहीं। ऐसे समाज को बनाने के लिए
मानव का आत्मिक और मानसिक विकास
इस सीमा तक करना होगा, जब देश,
नस्ल, कुल, धर्म, जन्म आदि के आधार
पर मानव-मानव के बीच भेद न करेगा
और सारे मानव-समाज को एक परिवार
मानेगा और उस परिवार का अपने को एक
सदस्य मानेगा। परिवार, देश, कुल और
नस्ल की सीमायें और अवरोध तथा बाधायें
दूर हो जायगी और मानव मानव के बीच
अन्तर डालने वाली दीवारें रह जायँगी।
क्या इस नूतन विश्व के लिए जो कि मानव
समाज विकास की अगली सीढ़ी है, काम
करना और इसके लिए जीवन उत्सर्ग करना
उचित नहीं ?

राष्ट्र-निर्माण क्या है ?

[पं० किशोरीदास वाजपेयी]

आत्म-निर्माण, राष्ट्र-निर्माण की नींव है। अपने आपको बनायें। भारतीय परम्परा में आत्म-कल्याण, आत्म-सुधार आदि पर ही जोर दिया जाता है। आजकल अपना सुधार नहीं, दूसरों के सुधार के लिए ही लोग मर रहे हैं। राष्ट्र के सब लोग आत्म-निर्माण कर लें, राष्ट्र-निर्माण हो गया। व्यक्ति के, व्यक्तित्व का निर्माण बड़ी चीज है। उसके बिना यह जड निर्माण कुछ नहीं। भ्रष्टाचार इसी तरह बढ़ता गया तो यह सब निर्माण क्षणभर में धराशायी हो जायगा। रुपये के लिये लोग देशद्रोह करके शत्रु देश तक से मिल जाते हैं। व्यक्तित्व-निर्माण की ओर राष्ट्र नायक ध्यान नहीं देते। कभी नहीं कहते कि ईमानदारी का सन्तोषपूर्ण जीवन बनाना चाहिये। बांध, सडक, पुल आदि का निर्माण ही राष्ट्र-निर्माण नहीं है, व्यक्तित्व का निर्माण राष्ट्र-निर्माण है।

"राष्ट्र-निर्माण" शब्द का गलत प्रयोग चल रहा है। राष्ट्र में मानवता का निर्माण, राष्ट्र-निर्माण है—राष्ट्र के कोटि-कोटि जनों को इन्सान बनाना है, जो पशुओं से भी बदतर हैं और इन्सान की शक्ल में रहकर धोखा दे रहे हैं। इनसे राष्ट्र को बडा खतरा है।

आह्वान

श्री उदयभानु हंस

उठो हिन्द के हे सपूतो ! उठो तुम
उठो क्रांति के अग्रदूतो ! उठो तुम

घने घोर तूफान में घिर रहे हो
तनिक देख तो लो कहाँ गिर रहे हो
अभी तक वृथा घूमते फिर रहे हो
पकड़कर कुशा सिंधु में तिर रहे हो

करो इस पतन को सहारा बना लो
उठो हर लहर को किनारा बना लो।

नहीं रोकते प्रीत के गीत गाओ
बड़े चाव से मानिनी को मनाओ
मगर वीर-कर्तव्य मत भूल जाओ
समय आ पड़े तो बिगुल भी बजाओ

सदा वीरता की निशानी यही है
जवानो ! तुम्हारी जवानी यही है।

महानाश के मूल आधार हो तुम
सदा नवसृजन के समाचार हो तुम
महारुद्र के घोर अवतार हो तुम
धधकते हुए लाल अंगार हो तुम

उठो इस तरह उठ रही आँधियाँ हों
गिरो इस तरह गिर रही बिजलियाँ हों।

न भूलो कि इस जाति के प्राण हो तुम,
इसी देश की वीर संतान हो तुम,
उमड़ता हुआ एक तूफान हो तुम,
प्रलय हो, प्रलय का समाधान हो तुम,

वही रूप फिर याद करना पड़ेगा,
रगों में नया खून भरना पड़ेगा।

तुम्हें शीघ्र ही अब सभलना पड़ेगा,
उछलना, उबलना, मचलना पड़ेगा,
समय के नहीं साथ चलना पड़ेगा,
तुम्हें तो समय को बदलना पड़ेगा,

सुनाई पड़ेंगी विजय की पुकार,
तुम्हें देखकर खिल उठेंगी बहारें।

उठो, फूट के पात्र को फोड़ डालो,
अभी भेद की शृङ्खला तोड डालो,
भटकते दिलों को पुन जोड डालो,
समय की प्रबल धार को मोड डालो,

विषैली विषमता मिटाते चलो तुम,
सभी को गले से लगाते चलो तुम।

चलो चित्त में विश्व की प्रीति लेकर,
सदा राम के राज्य की रीति लेकर,
सुकवियो! उठो राष्ट्र की नीति लेकर,
महाचार्य चाणक्य की नीति लेकर,

कहीं पर तुम्हारी न यात्रा रुकेगी
सफलता तुम्हारे चरण में झुकेगी।

स्वय जागकर दूसरों को जगा दो,
अभी नाव को तुम किनारे लगा दो,
उठो, इस धरा को गगन तक उठा दो,
नहीं तो गगन को धरा पर झुका दो,

नई नींव खोदो, नए घर बनाओ,
नई रागिनी में नए गीत गाओ।

निर्माण की दिशा में हमारा लक्ष्य—

पशु से देवत्व की ओर

श्री कृष्णस्वरूप सक्सेना
[मू० सम्पा० युगधर्म]

निर्माण की हमारी वे सब योजनाएं तब तक कोई अर्थ नहीं रखती जब तक कि हम मानव को उसके जीवन का इतिहास-सम्मत कल्याणकारी लक्ष्य न बतला दें।

जीवन का उद्देश्य क्या है ? आज यह प्रश्न कितने मानवों के मस्तिष्क में उठता है ? वास्तविकता तो यह है कि बहुत कम मात्रा व व्यक्तियों पर गिने जाने लायक ही मानवों में इस विषय की जिज्ञासा पाई जाती है और उनमें से भी विरला ही इस उद्देश्य की प्राप्ति का सक्रिय प्रयास करता है।

और जब तक इस प्रश्न का उत्तर मानवों के सम्मुख स्पष्ट नहीं है, तबतक निर्माण के उसके सभी प्रयास कल्याणकारी ही सिद्ध होंगे ऐसा विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता। लक्ष्यहीन भी क्या कोई निर्माण कर सकते हैं ?

वैसे 'निर्माण' शब्द से 'कल्याणकारी निर्माण' का ही बोध होता है, किन्तु चाहे किसी परिस्थिति से प्रेरित होकर निर्माण की योजनाएँ बनाई जाएं और तदनुसार चाहे कितना महत् प्रयास भी क्यों न किया जाए, जीवन के उद्देश्य की सुस्पष्टता के बिना उसके परिणाम कल्याणकारी ही होंगे ऐसा कम-से-कम आज तक के अनुभवों के आधार पर स्वीकार नहीं किया जा सकता। अणुशोधों के पीछे क्या कल्याणकारी दृष्टिकोण नहीं है ? किन्तु पश्चिम के सम्मुख जीवन के उद्देश्य की सुस्पष्ट कल्पना न होने के कारण ही क्या उन्हीं शोधों के परिणाम हमें सतत भय और आतंक महाविनाश के उत्तरोत्तर निकट नहीं ले जा रहे हैं ?

अतः आज अन्य निर्माणों की योजना बनाने के पूर्व हमें सर्वप्रथम मानव के सम्मुख

उसके जीवन के उद्देश्य की कल्पना को ही विशद करना होगा, जो अनिवार्य भी है।

भौतिक विज्ञान की मृगमरीचिका के पीछे आज बेतहाशा दौड़ा जा रहा मानव अपने लक्ष्य को ही भूल बैठा है, यह सोलहों आने सत्य है। "जीवन की समस्याओ के प्रति मेरा दृष्टिकोण आरम्भ से ही बहुत कुछ वैज्ञानिक रहा है।" ऐसा दावा करनेवाले श्री जवाहरलाल नेहरू भी अन्त मे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि "जीवन के उद्देश्य के विषय में विज्ञान अभी हमें कुछ भी बता सकने मे असमर्थ है।" मेरी स्वल्प बुद्धि के अनुसार इसका एक प्रमुख कारण यह है कि केवल भौतिक अन्वेषणों को ही सम्पूर्ण विज्ञान मान बैठने की भूल आज मानव कर बैठा है। आध्यात्मिक अन्वेषण भी तो ज्ञान को ही परिधि में आते हैं। वस्तुत ज्ञान रथ के दो चक्र हैं, एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक। एक-दूसरे के अभाव में विज्ञान रथ मे गति आ ही नहीं सकती। अत यदि हमें निर्माण करना है तो हमें भौतिक और आध्यात्मिक विज्ञानो के समन्वित माध्यम से ही उसे करना होगा अन्यथा निर्माण के अपेक्षित फल आजतक की ही भाँति मृगमरीचिका बने रहेंगे।

भौतिक विज्ञान हमें उत्तरोत्तर जड़ की आराधना की ओर ले जा रहा है, फलत हम नदियों, पहाड़ो, मिट्टी, खनिजों एव

मन एक उद्यान है, जिसमें हम चाहे तो सुन्दर पुष्प विकसित करें, चाहे इसे उजड पडा रहने दें। यदि उसमें अच्छे-अच्छे बीज नहीं डाले जायेंगे, तो बहुत से निकम्मे बीज अपने आप गिर जायेंगे और जगली घास पैदा कर देंगे। बागके माली की भाँति हम उसमें सद्विचाररूपी पेड-पौधे लगायें तथा बुरे और निकम्मे विचारों को निकाल फेंकें।

कारखानों की पूजा में अहोरात्रि सलग्न हो गए हैं। वस्तुत यह दैत्यपूजा है, जिसने अणु और उद्जन बमों के दैत्य को सम्पूर्ण रीति से प्रसन्न कर लिया है और अब जो हमें विश्व-युद्धों में झोंककर हमारे आजतक के समस्त निर्माणो को ही मटियामेट कर देंगे। दुहाई तो यही दी जाती है कि भौतिक विज्ञान के अन्वेषण मानव के कल्याण के लिए ही हैं, किन्तु आज जब कि भौतिक विज्ञान अपने चरमोत्कर्ष पर है, मानव अपने अटल विनाश की आशका से काप रहा है।

वस्तुत आत्यन्तिक भौतिक विज्ञान, जो जड़ की पूजा के अतिरिक्त कुछ नहीं है, क्योंकि इसके माध्यम से मनुष्य नदियों, पहाड़ों, खनिजों, कारखानों आदि की पूजा

पर उनके मरहम पर मरहम पोतने में ही लग गया है और आज मानव को उससे जितने अधिक मरहम मिल रहे हैं उतना ही युद्धों का, महाविनाश का भय बढ़ता जा रहा है। अतः भौतिक विज्ञान के वरदानों को निर्माण कहना भ्रान्ति होगी। वस्तुतः तो ये विनाश की ओर के ही चरण हैं।

इस दृष्टि से विचार करने पर स्वभावतः ही हम इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि प्रकृति पर विजय पाना ही अर्थात् प्रकृति के रहस्यों को उद्घाटित करते जाना ही मनुष्य के जीवन का परम लक्ष्य नहीं हो सकता।

मानव तो सृष्टि के परम रहस्य का मूल प्रतीक है क्योंकि उसमें यह रहस्य अपने पूर्णत्व में विकसित है कि वह जड़ और चेतन का समन्वय है अर्थात् शरीर और आत्मा का समन्वय है। इन दोनों में से एक के अभाव में मानव अपना अस्तित्व खो बैठता है। न तो हम आत्मा रहित शरीर को ही मानव कहते हैं और न शरीर रहित आत्मा को ही। आत्मा और शरीर, दोनों मिलकर ही मानव को अस्तित्व प्रदान करते हैं। इसी तत्त्व के प्रकाश में मानव ने अपने जीवन का परम लक्ष्य पशुत्व से नर और नर से नारायण बनना ही निश्चित किया हुआ है अर्थात् आहार, भय, निद्रा और मैथुन को बुद्धिपूर्वक नियमित और संयमित कर उसे अपनी आत्मिक शक्ति का इस हद तक विकास करना चाहिए जिससे वह चराचर सृष्टि की अनुभूति से एक रूप हो जाय।

पश्चिम ने मानव-जीवन के लक्ष्य को 'प्रकृति पर विजय पाना' स्वीकार कर भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में अद्भुत चमत्कार अवश्य कर दिखाए हैं किन्तु उन्हीं चमत्कारों ने मानव को युद्धों की, विनाश की विभीषिका के निकट भी तो लाकर खड़ा कर दिया है। भारत अर्थात् पूर्व ने मानव-जीवन के लक्ष्य को 'पशु से नर और नर से नारायण' स्वीकार किया है जिसके परिणामस्वरूप ही भारत में अवतार कम से कम एक दो बार ही नहीं अपितु दस दस बार नर से नारायण बनने की घटनाएँ घटी हैं। भारत के पुराणकारों का इतिहास और कथा है। और इन कथाओं ने मानव का कल्याण ही किया है यह इतिहाससम्मत और निर्विवाद है।

अतः निर्माण की हमारी ये सब बातें तब तक कोई अर्थ नहीं रखतीं जब तक कि हम मानव को उसके जीवन का इतिहास-सम्मत कल्याणकारी लक्ष्य नहीं समझा दें।

●

दुनिया का निर्माण करने से पूर्व

• *महात्मा श्री भगवानदीनजी*

कुछ-न-कुछ निर्माण करना जीव मात्र का स्वभाव-सा बन गया है। निर्माण के बिना वह रह ही नहीं सकता। मनुष्य जो श्रेष्ठतम प्राणी है वह निर्माण बिना कैसे रह सकता है। मनुष्य पेट योनि में प्रवेश करते ही निर्माण शुरू हो जाता है और वह इतनी शीघ्रता से होता है कि उसका हिसाब नहीं लगाया जा सकता। आँख से दिखाई न देनेवाला ... २८० दिन में ही दो सेर से लेकर १० सेर का बन जाता है।

पैदा होकर भी वह निर्माण करता रहता है तभी तो वह छोटे से बड़ा हो जाता है और जवान हो जाता है। उसके निर्माण में गर्भ से लेकर मृत्यु तक दूसरों का हाथ रहता है। तब उसे यह तो समझ ही लेना चाहिये कि दूसरों के निर्माण में उसका भी हाथ रहे।

पेड़ फल दिये बिना नहीं रह सकते। अगर न दें तो वे बीमार हैं। नदी पानी दिये बिना नहीं रह सकती। इसी तरह आदमी भी परोपकार किये बिना नहीं रह सकता। कुछ भी न करे तो शौच तो जायगा ही—इससे सूअर का उपकार तो होगा ही।

बच्चा जब मां की गोद में आया था तो मां को उसने कितना खुश किया था, इसका उसे पता नहीं। यह परोपकार नहीं था तो क्या था। उस खुशी से मां का स्वास्थ्य अच्छा होना शुरू हो गया था। उसके चेहरे पर रौनक आने लगी थी। इस पवित्र निर्माण में क्या उसका हाथ नहीं था? जरूर था। जन्म लेकर कितनों को खुश किया, और कितनों को स्वास्थ्य प्रदान करके निर्माण के कार्य में हाथ बँटाया। यह भी उसे नहीं भूलना चाहिये। बड़े होकर अपनी अटपटी क्रियाओं से उसने किस-किस को आनन्दित किया, इसका भी उसे ज्ञान होना चाहिये।

सक्षेपतः वह हमेशा से परोपकार करता आया है, कर रहा है और करता रहेगा। इसी तरह वह निर्माण करता आया है, कर रहा है और करता रहेगा। पर इस सबका न उसे ठीक-ठीक ज्ञान है और न उसने जान-बूझकर और सोच समझ कर यह सब परोपकार और निर्माण किया है। यह सब तो प्रकृति उससे कराती रही है।

ऐसी अवस्था में यदि यही काम जान-बूझकर सोच समझकर और इरादे के

काम करने लगे तो अपने निर्माण में अपने कुल के निर्माण में, समाज के निर्माण में देश के निर्माण में बहुत बड़ा हिस्सा ले सकता है। हरएक को यह समझ लेना चाहिये कि जैसे वह कुटुम्ब की इकाई है वैसे ही वह समाज देश और सारी दुनिया की भी इकाई है। उसके अपने निर्माण में सबका निर्माण होना ही है।

अब इतना समझ लेना काफी है कि अपना निर्माण अविकारपूर्ण हो। नहीं तो कुल की काया समाज की काया देश की काया, और जगत की काया, इनके ही अंगों में विकारमय हो जायगी। उस विकार के आगे बढ़ने की भी संभावना है और उस वक्त तक वह विकार बढ़ता ही रहेगा जब तक कि उसका अंग नष्ट न हो जाय या नष्ट न कर दिया जाय।

अपना निर्विकार निर्माण किये बिना, जो भी किसी निर्माण कार्य में लगता है और उससे जो निर्माण होता है उससे भलाई न होकर बुराई ही पैदा होती है। यही कारण कि महापुरुष पैदा हुए और दुनिया का कितना भला कर गये और कितना निर्माण कर गये उनके बाद उनके कार्य के निर्माण में स्वार्थी-कामियों ने अन्दर जो निर्माण किया उससे उस कार्य की जिसका कि महापुरुष स्वयं निर्माण कर गये थे, नक्शा ही पलटा और आगे के निर्माण से समाज और जगत को कल्याण पहुंचने की जगह हानि ही पहुंची। कहाँ ईसा के पाकर जगत तारने की बात और कहाँ ईसाइयों के यूरोपियन कत्ल करने की बात! सब ही धर्मों के अनुयायियों का ईसाइयों जैसा ही हाल है। इसका कारण है—विकारपूर्ण निर्माण।

निर्माण चाहे थोड़ा ही करें, पर विकार-रहित हो। निर्माण के जो-जो काम विकार-रहित हो वह भली समझ में नहीं आता। मैं तो यही कहूँगा कि निर्माण के बड़े कार्यों में लगने की अपेक्षा अपने निर्माण में लगें। हमारे चरित्र निर्माण से समाज का भला होगा। हमारे हृदय-निर्माण से सब की भलाई होगी। हमारे मस्तिष्क-निर्माण से जगत कुछ ऊँचा उठेगा। हमारे आत्म-निर्माण से प्राणीमात्र को सुख मिलेगा।

जिसने अपना हर तरह से विकार रहित निर्माण कर लिया है, उसके चारों तरफ स्वयमेव लोग इकट्ठे होने लगते हैं और उससे प्रेरणा लेकर उसी तरीके से निर्माण के कार्यों में लग जाते हैं।

इन पंक्तियों को ध्यान से पढ़कर अपने अन्दर झाँकें और अपने को तोलें तथा फिर देखें कि हम किस योग्य हैं। उसी मात्रा के अनुसार हमसे जो-कुछ बन पड़े, करने में लग जायें।

सुव्यवस्था के बिना निर्माण सम्भव नहीं

श्री रामकृष्ण 'भारती' एम० ए०

आज सब ओर निर्माण की चर्चा हो रही है। शताब्दियों की पराधीनता के पश्चात् देश स्वतन्त्र हुआ। देश के नेता स्वतन्त्रता से पूर्व ही देश के पुनर्निर्माण की विविध योजनाओं के सम्बन्ध में अपने-अपने विचार प्रकट करते आ रहे थे। शिक्षा के क्षेत्र में भी सार्जेन्ट की युद्धोत्तर विकास योजना प्रकाशित होगई थी। रूस आदि महान् राष्ट्रों की पञ्चवर्षीय योजनाओं के समान हमारे देश में भी पञ्चवर्षीय योजना की रूपरेखा देशवासियों के सम्मुख उपस्थित हुई। प्रथम पञ्चवर्षीय योजना की सफलता ने हमें दूसरी पञ्चवर्षीय योजना की ओर प्रेरित किया।

देश इस समय इस योजना को पूर्ण करने के लिए अनेक प्रकार के बलिदानों के लिए तैयार हो रहा है। बड़े-बड़े बाँध बन रहे हैं। बड़े बड़े कारखाने खोले जा रहे हैं। नहरें खुद रही हैं। भवन निर्माण-कार्य हो रहा है। अनेक अनुसंधानशालाएँ स्थापित हो रही हैं। अन्न के उत्पादन तथा वृद्धि के लिए अनेकानेक प्रयत्न चल रहे हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य तथा समाज-कल्याण-योजनाओं का विस्तार हो रहा है। देश के कोने-कोने में विकास-खण्डो की स्थापना हो रही है तथा गाँवों तक में सड़कों, परिवहन तथा सञ्चार-सेवाओं का विस्तार हो रहा है। रेल, तार, यातायात आदि साधनों का भी निरन्तर विकास हो रहा है। गाँव-गाँव में बिजली पहुँच रही है।

इस प्रकार आज देश में सब ओर निर्माण की ही चर्चा चल रही है। विदेशी शासकों ने हमारे देश की समृद्धि का अपने हितों में उपयोग किया। हमारा धन विदेशों को जाता रहा। हमारा व्यापार चौपट हुआ। हमारी कला-कौशल, हमारी सभ्यता, हमारी भाषा सभी विदेशी हितों पर बलिदान कर दिए गए। अंग्रेजों ने परिस्थितियों से विवश होकर भारत छोड़ा, किन्तु जाते समय भी देश के विभाजन के रूप में वे हमारे लिए इतनी समस्याएँ तथा उलझनें पैदा कर गए कि आज

भी देश को उससे पूर्ण रूप से मुक्ति नहीं मिली। सभी रियासतों के रूप में एक ही देश अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। लौह पुरुष स० पटेल ने अपनी कार्य-कुशलता से इन छोटे और बड़े राज्यों को बड़ी-बड़ी इकाइयों में मिलाकर देश की एकता की रक्षा की।

शरणार्थी-समस्या अब भी पूर्ण रूप से नहीं सुलझ पाई है। काश्मीर-समस्या, सीमा-समस्या आदि अनेक समस्यायें अब भी हमारे लिए अशान्ति का कारण बनी हुई हैं। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ तथा पाकिस्तान के साथ हमारा सम्बन्ध-ये बातें अब भी पूर्णरूप से सुलझी नहीं हैं। नहरी पानी की समस्या वर्षों से खटाई में पड़ी है। करोड़ों रुपए का ऋण पाकिस्तान को चुकाना है किन्तु इस सम्बन्ध में कोई भी प्रगति नहीं हो रही है।

देश की घरेलू परिस्थिति भी सन्तोष-जनक नहीं। भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्निर्माण को लेकर जो कटुता हमारे यहाँ उत्पन्न हुई, वह अब भी भीतर ही भीतर सुलग रही है। नागा समस्या भी अभी तक पूर्णरूप से शान्त नहीं हुई। चारों ओर हड़तालों का जोर है। मँहगाई दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। करों के बोझ से वर्ग साधारण दबे जा रहे हैं। द्वितीय-पंच वर्षीय-योजना की पूर्ति के लिए जितने धन की आवश्यकता है उतना जुटाया नहीं पा रहा है। सार्वजनिक धन के अतिरि विदेशों से भी ऋण की चर्चा हो है। सरकारी ढाँचा इतना खर्चीला गया है कि विकास-कार्यों पर लगे हुए का बहुत बड़ा भाग बीच के लोगों जेबों में चला जाता है। रिश्वत तथा पू भ्रष्टाचार-आदि अब भी पग-पग विद्यमान हैं।

ऐसी स्थिति में यह सोचना है कि देश के निर्माण के लिए जिन गुण की आवश्यकता होती है, उन्हें किस प्रका प्राप्त किया जाए। प्रजातंत्र के जहाँ पु से लाभ हैं, वहाँ उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता यही है कि कोई भी व्यक्ति जनमत का प्रतिनिधित्व करते हुए अनेक प्रकार विनाशकारी आन्दोलन तथा प्रचार च सकता है। गत दस वर्षों में हमारे देश में चुनावों की व्यवस्था जिस शान्तिपू ढंग से हुई है, उस पर हमें गर्व है, किन्तु इतना होते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि जातीय दृष्टिकोण से जितने चरित्र-बल की देश को सबसे अधिक आवश्यकता है दुर्भाग्य से हममें उतना नहीं है। एक सम था कि जब हमारा देश विश्व में अपनी सभ्यता तथा नैतिकता के लिए अग्रिम था किन्तु आज वह अवस्था नहीं है। धन के नाम पर आज जो हमारे यहाँ जो दु

दृष्टिगोचर होता है, उसे देखकर कोई भी आदमी अपना मस्तक ऊंचा नहीं कर सकता।

जिस प्रकार किसी भवन के निर्माण के लिए सुदृढ़ नींव की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार किसी देश तथा जाति के निर्माण के लिए भी सुव्यवस्था की अत्याव-श्यकता है। आज के अणु-बम के युग में सभ्यता तथा शांति के लिए सबसे बड़ा खतरा इस बात का है कि विज्ञान, जिसका उद्देश्य मानव-कल्याण है, आज मानव की शान्ति के लिए सबसे बड़ा अभिशाप बन गया है। उससे मानव की रक्षा करने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि हम दूसरों को जीतने की अपेक्षा अपने आपको जीतने का प्रयत्न करें। जबतक मानव अपने निर्माण के लिए कटिबद्ध नहीं होता, तब तक स्थानीय तथा राष्ट्रीय निर्माण की चर्चा बेकार है। जैसे एक छोटी-सी सुव्यवस्थित सेना शत्रु की असख्य अव्यवस्थित सेना को पराजित कर सकती है, वैसे ही आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने निर्माण-कार्यों में सुव्यवस्था की भावना को भरें। हमारे कार्यों में जब तक स्वार्थ-भावना रहेगी, तबतक हमारे राष्ट्र का निर्माण-कार्य अधूरा रहेगा। 'अणुव्रत' आन्दोलन के द्वारा आज राष्ट्र में, जिस नैतिक-पुनर्निर्माण का कार्य हो रहा है, उसमें हमें पूर्ण सहयोग देना चाहिए। हर व्यक्ति दूसरों के निर्माण की अपेक्षा अपने निर्माण की ओर अग्रसर हो। अपना निर्माण ही समाज का निर्माण है। सयम से बढ़कर और कोई सीधा मार्ग उस ओर नहीं ले जाता। व्यक्ति के निर्माण से ही समूह का निर्माण होता है। राष्ट्र के लिए आज सबसे बड़ी आवश्यकता है-'अनुशासन!' व्यवस्था का दूसरा नाम अनुशासन है। अनुशासन तथा नियन्त्रण के बिना जीवन, भार रूप है।

●

भीड़ ने रुख बदला और सर गगाराम के बुत पर पिल पड़ी। लाठियां बरसाई गई, ईंट और पत्थर फेंके गये। एक ने मुह पर तारकोल मल दिया, दूसरे ने बहुत से पुराने जूते एकत्र किये और उनका हार बनाकर बुत के गले में डालने के लिये आगे बढ़ा। पुलिस आगयी और गोलिया चलनी आरम्भ हुई। जूता का हार पहनानेवाला घायल हो गया, इसलिये मरहम-पट्टी के लिये उसे 'सर गगाराम अस्पताल' भेज दिया गया।
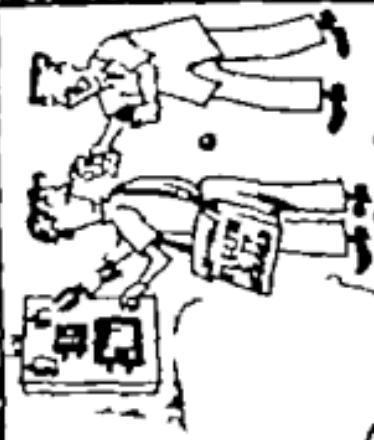
—सआदत हसन मन्टो

व्यंग कथा

वसूली

आचार्य श्री सर्वे

एक था भालू यानी रीछ। एक राजनैतिक पार्टी का अखबार उसने निकाला। दल के संकेत पर नाचना ही उसकी पत्रकारिता की 'थीम' थी। धीरे-धीरे उस नगर के नामी-गरामी पत्रकारों में वह गिना जाने लगा।

तब, एकबार नगर के साहित्यिकों में धाक जमाने को उसने एक स्वर्गस्थ साहित्यकार लकड़बग्घा महोदय की पुनीत-स्मृति में 'लक्कड़-विशेषांक' निकालने का आयोजन किया। दूर-दूर के प्रख्यात कलाकारों से सपारिश्रमिक रचनाएं प्रकाशनार्थ मांगी गई।

विज्ञापन पढ़कर एक परदेसी गधा अपनी नूतन रचना सहित, गांठ की पूंजी खर्चकर उस नगर में आ-धमका। वह भालू के दफ्तर गया। गधे के दाएं कान में रचना खोसी हुई थी। जिसे देख, बगल में ही ऊंघते हुए सह-सम्पादकजी को पादांगुष्ठ के संकेत-द्वारा चेताते हुए भालू ने वाणी में मिठास घोलते हुए कहा—'वाह-वाह आइये न!'

बिना किसी भूमिका के ही कट्-मेथड में वह बोला—'एक कहानी लाया हूँ, सपारिश्रमिक छपाने को।'

'हां, तो लाइये। रचना इधर दीजिये। और क्या मेहनताना आप लाए हैं, यह भी कृपया प्रदान करें।' भालू ने पास ही रखे एक अंगूर के गुच्छे को मुंह की कन्दरा के हवाले करके खलबलाते हुए कहा।

'महोदय, मेहनताना तो कहानी छपने पर ही लेना ठीक रहेगा। रचना छपने से पूर्व ही मेहनताना लेकर मैं कलाकारों के गौरव को ठेस नहीं पहुंचाना चाहता'—गधे ने पहले से तैयार किये गये भाषण के अनुमानित आधार पर बिना भले प्रकार सुने ही नम्रतापूर्वक निवेदन किया।

भालू अपनी बात को दोहराने ही जा रहा था कि बीच ही में आंख से गुपचुप संकेत करते हुए सह-सम्पादक श्री नकुलजी महाराज बोल उठे, 'देखिये, मैंने पहले ही कहा था न कि प्रख्यात कहानीकार श्री गर्दभराज बड़े विनम्र और सुशील भी हैं।'

था। ये उसका मुंह खुला-का-खुला रह
गया। वह फिर हिला-डुला नहीं।
क्योंकि उसका हार्ट फेल हो गया। कौआ
देखकर कांव कांव करते हुए नगरपालिका
को सूचना देने उड़ गया।

अगले दिन उसकी लाश के नीलाम
से जो रुपया मिला, वह रचना-प्रकाशन के
प्रारम्भिक खर्च 'लक्कड़-विशेषांक' के
प्रकाशन-कार्यालय को पहुंचा दिया गया।

उस दिन नगर के सम्पादकों व
प्रकाशकों ने अपना एक अच्छा ग्राहक
कम हो जानेके गम में एक वृहत् शोक-
सभा का आयोजन किया, जिसके
अन्त में सभापति महोदय ने उस स्थल पर
जहां कि उस परदेसी लिक्खाड़की लाश
पाई गई थी एक मिट्टी के तेल का भव्य
प्रदीप प्रज्वलित करते हुए दिवंगत
आत्मा के सम्मान में सभी उपस्थित सभा-
सदों से अपने अपने सुन्दर सिगार उलट देने
की प्रार्थना की। यह राख, सम्मान सहित
एक पवित्र नदी में बहा दी गयी। ठीक
उसी समय भेड़िया और कौआ मिल-
जुलकर प्रेम-भाव से भेड़िये के नाम बोली
खतम हुई गधे की लाशपर आहार-गोष्ठी
कर रहे थे।

एक बोधकथा—

प्रकाश की वाणी

[आचार्य श्री जगदीशचन्द्र मिश्र]

दिनान्त में अस्ताचल के गहन अन्तर में डूबते हुये दिनकर को देखकर
अन्धकार ने आगे बढ़कर कहा—

"भीरू! कापुरुष!! ठहरो कहां जाते हो? यदि सामर्थ्य हो तो आओ।
अब रात भर मेरा अखण्ड साम्राज्य रहेगा और लोक-लाज से भयभीता तेरी
दिगंगनायें रात भर मुझ से खुलकर विहार करेंगी।"

डूबते हुए दिनकर ने हंसकर उत्तर दिया—

"मूर्ख! मैं जानता हूं अब मेरा अवसान है। मैं तेरा कुछ नहीं बिगाड़
सकता। किन्तु मृत्यु किसी का सुनिश्चित अन्त नहीं है। प्रभात होने दो।
मैं फिर आऊंगा और तुम्हारा विनाश करूंगा। एक बार नहीं, बार-बार
जबतक संसार में तुम्हारा अस्तित्व शेष रहेगा।"

[१५ अक्टूबर '५७

...ही चाहता है। मनुष्य की यह ...आशा थमने का नाम नहीं लेती।

सिद्धार्थ ने शव देखा, रोगी देखा, ...देखा। मनुष्य मरे नहीं, रुग्ण न हो, ...र हो। इसी की खोज में तथागत ...गये। दुःखों से छटपटाते मनुष्य को ...कर महावीर तीर्थंकर हो गये। देवदत्त ने पूछा—'तथागत, तुम तो मृत्यु पर ...विजय प्राप्त करने गये थे?'

"हाँ!"

"विजय मिली?"

"अवश्य!"

देवदत्त ने चीख कर कहा—"तथागत, ...रोगी हो। मृत्यु को सत्य कह उसे ...की संज्ञा दोगे?"

"नहीं!"—तथागत ने कहा—"नहीं ...देवदत्त! बुझे नहीं दिल का दिया! बुझ ...गया जिसके दिल का दिया, वही जीवित ...होकर भी मृत है। बुझा नहीं जिसके ...दिल का दिया, वह मृत होकर भी ...जीवित है।

ईर्ष्या भरा देवदत्त पाँव पटक चला ...गया। तथागत की बात का अर्थ न ...समझ सका। तथागत जीवन का सत्य ...खोज गये।

बुझे नहीं दिल का दिया।

"आओ, संसार के पीड़ित, दुःखी ...लोगो, मैं तुम्हें सुख दूँगा, शान्ति दूँगा।

दुश्चरित्र आदमी से न दोस्ती कर न जान-पहचान। गरम कोयला जलाता है, ठंडा हाथ काले करता है।

—हितोपदेश

मैं तुम्हें अमर कर दूँगा। सारी व्याधियाँ केवल मात्र एक मंत्र से नष्ट कर दूँगा।'—यीशु ने पुकार-पुकार कर कहा।

"दैन्य, दुःख, दारिद्र्य, सभी संकटों से जिसे मुक्ति चाहिए, वह मेरी शरण आये। मेरे पास उसका उपचार है।"—तथागत ने घोषणा की।

"सत्य की शोध का मंत्र मैं जानता हूँ।" तीर्थंकर बोले।

सबने अपनी-अपनी भाषा में एक ही बात कही। धर्म का एक ही मंथन सब के हाथ लगा।

बुझे नहीं दिल का दिया।

यही है जीवन का मूलमंत्र। यही है सफलता की कुंजी! सुखी-सम्पन्न जीवन को पाने का मार्ग यही है।

जो जिन्दगी से निराश है, जो संघर्ष से थक चुका, वह उठे। इधर आये। यह है वह कल्पवृक्ष, जिसके तले खड़े होकर जो माँगा जायगा, वही मिलेगा! माँग लो, जो माँगना हो, मिल जायेगा। तथास्तु

बुझे नहीं दिल का दिया और पा लोगे सब कुछ! दृढ़ इच्छा शक्ति, अटूट

संकल्प का तेल इस दिये की बाती को हमेशा सुलगाये रखेगा।

सोच को ऊंचा चाहिए। चाहे कैसी भी परिस्थिति क्यों न हो। फटेहाल, भूखे पेट, दुबला, कैसे भी क्यों न हो। सोच को एक बार, बना चाहिए। बस। वही राह चल पड़ो। चल पड़ो, वही राह। न बुझने दो सिर्फ दिल का दिया। इरादा के तेल से जलाते चलो दिये की बाती। जलाते चलो जलाते चलो। मंजिल तुम्हारे सामने है। यह मील का पहिला पत्थर, यह दूसरा, यह तीसरा और यह है तुम्हारी मंजिल।

सोचो जिन्दगी एक दोराहा है। जिन्दगी के सिर्फ दो ही रास्ते हैं। एक है सीधा-सरल सुगम, ढलावदार इस रास्ते पर बढ़ते जाओगे पर जाओगे कहाँ। प्रशान्त महासागर के तल में जहाँ घोर अन्धकार है। वहाँ तुम्हारी कब्र तैयार है। तुम दफन हो जाओगे, तुम्हारा नाम लेने वाला भी कोई न रहेगा। दूसरी राह, यही ऊबड़-खाबड़, कँटीली संग-साथ नहीं, इस राह चलो चढ़ते जाओ, चढ़ते जाओ। जाओगे कहाँ। हिमालय की ऊँची चोटी पर। दुनियामें सबसे ऊंचे। दुनिया तुम्हारा जय-जयकार कर उठेगी। तुम शेरपा तेनसिंग की तरह अमर हो जाओगे। तुम मरकर भी अमर रहोगे। यही है सारा सूत्र। तुमने नहीं दिल का दिया।

हिमालय पर चढ़ा वही जो मजबू... गिरा। दिल्ली के तख्त पर बैठा वही हुम... जो जंगलों की धूल फांकता रहा। अक... हुआ वही महान जिसकी बेटी घास-पा... की रोटी के लिये तरस गई। इतिहास के पन्ने के पन्ने भर रहे हैं, बढ़ा वही, जो गिरा कई बार। सफल हुआ वही जु... नहीं जिसने दिखला दिया। हिम्मत जिसने न हारी उसने सब कुछ पा लिया।

जो तुम्हें चाहिए वह मिल सकता है सब। आवश्यकता है दिल के दीप की ... बराबर जलता रहे। पुरातनपंथी की बा... नहीं। आज के इतिहास की बात है।

मेरे सिनेमा प्रेमी युवक मित्र, तुमने जरूर कोर्डा का नाम सुना होगा। अमेरि... का महान फिल्म-निर्माता। शिकागो से २५ मील दूर एक गाँव में पैदा हुआ। बाप के बाद माँ भी मर गई। सड़क पर बैठकर रो रहा था। घर में न एक पै... न एक दाना। पड़ोसियों ने कम मदद की। एक पड़ोसी ने उसकी पीठ थप... कर कहा—"बेटे, हिम्मत न हार। ... के मन में। फिर तू चाहे जो कर सक... है।" कोर्डा के दिल का दिया जल उठा। शिकागो आकर वह अखबारी हो गया ... धीरे धीरे कुछ पूँजी इकट्ठी की। फिल्मों ... शुरू किया। सब कुछ फूंक दिया एक फि...

गाने में। फिल्म बनी। प्रदर्शित हुई, तो इसमें कुछ-का-कुछ परदे पर आया। कोर्डा पागलों सा भागा। हाय! यह क्या हो गया! रात भर वह सोया नहीं, पर उसने दिल का दिया बुझने नहीं दिया। फिल्म एक विशेषज्ञ को देखने दी। एक हल्की-सी त्रुटि थी। ठीक हो गई। फिल्म प्रदर्शित हुई। कोर्डा की इस फिल्म ने तहलका मचा दिया। लखपति हो गया। देखते देखते कोर्डा संसार का एक महान फिल्म निर्माता और अरबपति हो गया।

मेरे साहित्यिक मित्र! कुत्तों के साथ खंडहरों में रातें गुजारनेवाला व्यक्ति रूस का एक महान व्यक्ति बन गया। मैक्सिम गोर्की। लड़ता रहा, लड़ता रहा। दिल का दिया बुझने नहीं दिया। अन्ततः वह महान हो ही गया।

कालीघाट के फुटपाथ पर चने खाकर रात गुजारनेवाला मुसलमान लड़का, भारत का सबसे बड़ा संगीतज्ञ हो गया। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ।

घर से भागकर महज चार आने से सिर दर्द की दवा तैयार कर सड़कों पर बेचनेवाला व्यक्ति अमृतांजन लिमिटेड का लखपति व्यक्ति हो गया।

एक साधारण प्रूफ रीडर की हैसियतसे उठकर एक व्यक्ति एक प्रसिद्ध दैनिक पत्र का स्वामी हो गया। कलकत्ता, बम्बई,

मनुष्य! तू प्रेरणा-केन्द्र है, तू प्रकाश को धारण करनेवाला है, तू अपने स्वरूप की रक्षा करनेवाला है। तू प्रकाश है, तू प्रकाश है, तू अमर-ज्योति है, तू दिव्य ज्योति है! पुरुषार्थ कर, प्रयत्न कर, पग बढा, जो तेरे बराबर खडे हैं, उनसे आगे बढ। जो तुझसे आगे हैं, उन तक पहुँचने का यत्न कर!

पटनासे एक साथ प्रकाशित। स्व० मूलचंद।

दो रुपये की पूंजी से अपना व्यवसाय प्रारम्भ करनेवाला व्यक्ति भारत का महान धनिक हो गया। स्व० राजा बलदेवदास बिड़ला।

हर क्षेत्र में वे ही चमक रहे हैं, चमके हैं, जो गिरे थे। तुम्हारी ही तरह, बल्कि तुमसे भी बदतर हालत में थे वे। सफल हुए वे, जिनके दिल का दिया बुझा नहीं।

यही कल्पवृक्ष है। किसी भी स्थिति में हो, आओ। आओ, इस कल्पवृक्ष के तले आओ। दृढ़ निश्चय की बाती अपने कर्म से जलाओ। जलाओ दिल का दिया और पा लोगे वह, जिसकी खोज कर रहे हो, पा लोगे वह जिसका तुम्हें अभाव है।

यही मूलमन्त्र है, जीवन का। यही सार तमाम धर्मों का। यही ईश्वर है। यही सनातन सत्य है। इसकी बांह गहो, इस राह चलो। नश्वर शरीरवाले, अमर हो जाओगे। जो चाहोगे, पाओगे।

निर्माण

कविवर श्री प्रणव शास्त्री

निर्माणों के गीत पुरुष ने जब जब गाये।
प्रकृति प्रिया ने तभी सुखद शृंगार सजाये॥

श्रम का सरल सितार शारदा सिद्धि सजाती
रुनझुन रुनझुन आती पायल मधुर बजाती
हंस वाहिनी सत्य-ग्रहण का पाठ पढ़ाती।
रहती स्वर में मनहर स्वर संगीत मिलाये ॥१॥

उठते हैं तूफान विटप की सम्पति लुटती
घोर निराशा की रजनी जब आकर घुटती
कोमल किरण मनोहर नूतन क्रमशः छुटती।
यों निर्मित सन्देश बसन्ती राजा लाये ॥२॥

प्रगति पथ पर चलते युग जब थका-सा जाता
उन्मन-सा निःश्वास पिपासा से अकुलाता
तब कोई घनश्याम वारि गीता बरसाता।
कर्म क्षेत्र में सत्य साहसी फिर लहराये ॥३॥

राष्ट्र अर्चना दीप स्नेह से भर भर लाएँ
चारु चरित्र की शुभ वर्तिका शीघ्र सजाएँ
पावन उत्तम ज्योति परस्पर 'प्रणव' जगाएँ।
मन मन्दिर में राष्ट्र जनों की पूजा पायें ॥४॥

o

प्रो० ज्योतिप्रकाश सक्सेना एम० ए०

भारत की अर्थव्यवस्था कृषि-प्रधान है। सन् १९५१ की मत-गणना के अनुसार देश के लगभग ७० प्रतिशत व्यक्तियोंका कृषिसे सीधा सम्बन्ध है। परन्तु दुर्भाग्यवश भारत के इन अन्नदाताओं मे लगभग ५-६ प्रतिशत ही साधन-सम्पन्न हैं। शेष यू ही गुजर-बसर करते रहते हैं। दूसरे शब्दों में, उनकी आय कम है और व्यय अधिक, जिसकी वजह से न भूमि में सुधार हो पाता है और न कृषिकी उन्नति। उन्हें अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हे हमेशा महाजन का दरवाजा खटखटाना पड़ता है और कर्ज के दलदल में फँसने को विवश होना पड़ता है। प्रस्तुत लेख में भारत के इन्हीं भू-पुत्रों की समस्याओं पर एक हलका सा दृष्टिपात करने का प्रयास किया गया है।

सबसे बड़ी समस्या है खेत के क्षेत्रफल की, जिसका दोष बिना किसी सकोच के देश के 'उत्तराधिकार नियमों' के सिर मढ़ा जा सकता है। ये नियम और चाहे जिस बात में अच्छे हों, परन्तु खेती के दृष्टिकोण से पूर्णतया हानिकारक हैं। इन्हीं की वजह से भारत के अधिकांश खेत टूक टूक होकर इधर-उधर बिखर गये हैं, जो खेती के लिए सर्वथा अनार्थिक हैं, उन पर खेती करने में समय, श्रम व धन का अपव्यय होता है और लागत बढ़ जाती है। फिर कम आयवाले किसान धनाभाव के कारण एक तो वैसे ही इन खेतों मे सुधार-कार्य करने मे अपने को असमर्थ पाते हैं, परन्तु यदि कोई हिम्मत करके इस दिशा में कुछ प्रयास भी करे तो वह भी निष्फल जाता है। उसके परिश्रम का उसको फल ही नहीं मिलता।

पानी खेती का प्राण है, परन्तु भारत के अधिकांश किसानों को यह धरती की गोदी में बहते हुए नदी-नालों, खुदे हुये तालो और कुओं में नहीं बल्कि आकाश में उमड़ते-घुमड़ते बादलो में मिलता है। लेकिन जब बादल देर से आते, वर्षा कम करते या बहुत ज्यादा, तो इन अन्नदाताओं की सारी आशायें स्वाहा हो जाती हैं और चूंकि सिंचाई के कृत्रिम साधनों का विकास

इनकी कमीके कारण हो नहीं पाता इसलिए उपज चौपट हो जाती है और किसानों का जीवन-कष्ट और भी बढ़ जाता है।

फिर समस्या है खाद की जिसका कम किसान की एक के बाद दूसरी फसल पैदा करने की इच्छा से और भी गम्भीर हो जाता है। फल यह होता है कि खेती के साथ-साथ और खाद के अभाव में खेत की उर्वरता भी कम होती रहती है और एक समय ऐसा आ जाता है, जब यह प्रायः बिल्कुल ही नष्ट हो जाती है। वैसे अन्य महँगी खादों के अभावमें किसान मवेशियों के मल-मूत्र का उपयोग अच्छी तरह से कर सकता है लेकिन अपनी गरीबी के कारण गोबर को खेत में डालने के बजाय वह उसे ईंधन के रूप में इस्तेमाल करने को विवश हो जाता है और खेत भूखे पड़े रह जाते हैं जिसका फल किसानोंको भोगना पड़ता है।

साधारण-सी बात है कि किसान खेत में जैसा बीज डालेगा, उसको वैसी ही फसल मिलेगी। खराब बीज का प्रयोग कर अच्छी फसल की कल्पना करना मूर्खता है। परन्तु होता यह है कि अपनी गरीबी के कारण भारत के अधिकांश किसान महाजन अथवा अन्य सूत्रों से रद्दी और घुना हुआ बीज लेकर खेतों में बोते हैं जिसके कारण से फसल अच्छी नहीं होती और किसान को कुछ भी नहीं मिलता। इसी तरह की समस्या उसके सामने बैल आदि खरीदते समय आती है। अच्छे और कीमती मवेशी खरीदना उसकी हैसियत के बाहर की बात होती है और फलतः कम-कीमती मवेशी उस पर बोझ बन जाते हैं। फल यह होता है कि कृषि की सब-व्यवस्था असफल जर्जर हो जाती है और बेचारा किसान दुर्भाग्य के गर्त में धकेला जाता है।

फिर सवाल उठता है फसल की बिक्री का। कृषि का व्यापारिकरण और यातायात के साधनों में विकास हो जाने से भारत का किसान अब धीरे-धीरे मंडियों के सम्पर्क में आता जा रहा है और यह आशा की जाने लगी है कि इससे उसको कुछ अतिरिक्त लाभ अवश्य होगा, परन्तु अपनी अयोग्यता और संगठन के अभाव में वह व्यापारियों के आढ़तों में चलती हुई स्पर्धा के सामने नहीं टिक पाता और उसे विवश होकर अपनी फसल को कम मुनाफे की दर पर बेच कर ही संतोष करना पड़ता है।

हमारे इस विशाल देश में प्रकृति सदा ही नये-नये रूप दिखाती रही है। कभी बाढ़ का आतंक, तो कभी सूखे का प्रकोप। कभी टिड्डियों का भय तो कभी पौधों की बीमारियों का नग्न-ताण्डव और इन प्राकृतिक प्रकोपों का भाजन-भार हो इस

निरीह और भोले-भाले किसानों को परेशान करने के लिये काफी है।

यह निर्विवाद है कि भारत के अधिकांश किसानों को बारहों महीने ऋण की आवश्यकता पड़ती रहती है। कभी यह ऋण उत्पादक कार्यके लिये लिया जाता है, और कभी पेट की ज्वाला बुझाने के वास्ते। और सहकारी आन्दोलन के समुचित विकास के अभाव में उनको यह ऋण अविलम्ब रूप से देनेवाला केवल एक दरवाजा होता है—महाजन का दरवाजा, वहाँ एक बार जाकर वे हमेशा के लिए बँध जाते हैं।

वैसे देखा जाय तो समस्याए सदा एक सचेतक के रूप में हमारे सामने आती हैं और हमको सतत संघर्ष का संदेश देती हैं। परन्तु वे समस्याए जो हमारा विश्वास छीन लें, हमारी आशाओं को निराशा मे परिणित कर दें, अवश्य अवांछनीय हैं। भारत के इन कोटि-कोटि किसानों की समस्याए ऐसी ही हैं।

खेतों का छोटा और छिटका होना भारत जैसे कृषि-प्रधान देश के लिये अभिशाप है। अतएव यदि हम अपने देश को आनेवाले आर्थिक भूकम्पों से बचाना चाहते हैं तो इन छोटे और छिटके खेतों की चकबन्दी आवश्यक है। इसके लिए या तो उत्तराधिकार के नियमों में संशोधन किया जाय या फिर खेत के क्षेत्रफल की न्यूनतम सीमा निर्धारित कर दी जाय। आज का समाजवादी अर्थ-व्यवस्था का युग है, परन्तु फिर भी हमे अक्सर व्यक्तिवाद की झलक दिखाई पड़ जाती है और लोग 'व्यक्ति' की भूख मिटाना अधिक श्रेयस्कर समझते हैं, चाहे उससे समाज एक कदम आगे बढ़कर दो कदम पीछे क्यों न हट जाय? इसीलिए जुड़े-जुडाये खेत भी कई व्यक्तियों को तोड़-फोड़ कर दे दिये जाते हैं, दश एकड का खेत ५ व्यक्तियों में २-२ एकड़ प्रति व्यक्ति के हिसाब से बाँट दिया जाता है और इस प्रकार व्यक्तिकी भूख मिटानेके लिए समाज पर करारा प्रहार हो जाता है। व्यक्ति समाज का अभिन्न अङ्ग है और समाज का विकास व्यक्ति का विकास है तो फिर ऐसा क्यों न किया जाय कि ये १० एकड़ पांचों व्यक्तियों के सामूहिक अधिकार में दे दिये जायँ। वे सहकारिता के आधार पर खेती करें और जो कुछ पैदा हो उसे आपस में बाँट लें। ऐसे में भूमि के टुकड़े भी न होंगे, व्यक्ति की भी भूख मिट जायगी और साथ ही सहकारी खेती को भी प्रोत्साहन मिलेगा। वही 'सांप मर जाय और लकड़ी न टूटे' वाली बात।

फिर, गरीब किसानों के ऋण लेने के दो ही स्रोत हैं—गाव का महाजन और

सहकारी समिति। इनमें से पहला अभी भी काफी प्रभावशाली है और सब के लगभग ९१ प्रतिशत किसानों की ऋण संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है परन्तु यह ब्याज बहुत अधिक लेता है और किसान को एक बार अपने चंगुल में फँसा-कर फिर उसे जीवन भर पीसता रहता है। इसीलिए कुछ लोग यह सुझाव पेश करते हैं कि महाजनों के कार्यों पर कानूनी तौर पर अधिकतम प्रतिबन्ध लगा देना चाहिये; ताकि वे गरीब किसानों का शोषण न कर सकें। परन्तु मेरे विचार से जबतक सहकारी आन्दोलन का गाँव गाँव में विस्तार नहीं हो जाता तबतक ऐसा करना घातक सिद्ध होगा क्योंकि ऐसी दशा में किसानों के लिए महाजन के दरवाजे तो बन्द हो जायेंगे और सहकारी समिति से वे ऋण पा न सकेंगे। इस तरह वे बरबाद हो जायेंगे। आवश्यकता इस बात की है कि सहकारी आन्दोलन का पूरे तरहसे विस्तार किया जाय। उसे एक जन आन्दोलन में परिणत किया जाय जिससे कि किसानों को कम ब्याज की दर पर अल्प-कालीन ऋण प्राप्त हो सके। जहाँ यह होगा महाजन का प्रभाव अपने आप ही समाप्त हो जायगा और जहाँ किसानों को सस्ते दर पर ऋण मिलना प्रारम्भ हो जायगा, वहाँ उनकी खाद बीज सम्बन्धी पानी आदि की समस्याएँ भी हल होने लगेंगी—क्योंकि अभी समस्या की नहीं साधन की है और साधनों के प्राप्त होने पर भारत के ये अन्नदाता आगे बढ़ेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। भला, अपनी उन्नति किसे बुरी लगती है।

अब रही प्रकृति के प्रकोप की बात। सो इस पर पूरी तरह से काबू पाना तो मनुष्य के बूते के कुछ बाहर है; फिर भी वैज्ञानिक अनुभवों और सरकारी सहायता से इस क्षेत्र में भी कुछ सफलता प्राप्त की जा सकती है। आखिरकार प्रकृति के ऊपर मनुष्य का कुछ तो प्रभुत्व स्थापित हो ही गया है।

हमारे देश में किसान वर्ष में तीन से छः महीने तक खाली बैठे रहते हैं। इस अवकाश के समय वे आसानी से छोटे-मोटे घरेलू उद्योग-धन्धों से कुछ धन का उपार्जन कर सकते हैं, जो उन्हें कुसमय में सहायता पहुँचा सकता है। अधिक नहीं तो कम से कम उनकी बेकार बैठा रहनेकी समस्या तो इससे हल हो ही सकती है।

ये रहीं भारत के नव निर्माण के सजग प्रहरी हमारे किसानों की समस्याएँ और उनके निवारण के कुछ उपाय। निस्सन्देह किसान भारत का भाग्य-विधाता है। यह देश की करोड़ों आत्माओं को रोटी देता है, उन्हें जिन्दगी प्रदान करता है। क्या

कहानी

याद की लाज

श्री विश्वदेव शर्मा एम० ए०

समरू काम पर से छूटना तो उसके पांव अनायास ही ताड़ीखाने तरफ बढ़ जाते। न जाने कौन-सी कि उसे वरवस खींचने लगती। जेब पड़ी हुई दिन भर की मजूरी जैसे निकल ागने के लिए व्याकुल रहती। शायद मरू की कमीज की जेब में बदबू के ारण उसका दम घुटने लगता।

ताड़ी के चुक्कड़ भर-भरकर गले के नीचे उतारते समय समरू कभी नजर उठा र चारों ओर देख लेता। हिन्दू, मुसलमान, पण्डित चमार, सब पगत में जमे रहते। कोई पैसे के अभाव में दूसरे पीनेवालों को हसरत भरी निगाह से देख-देखकर ही जी ठण्डा करते रहते।

जरा-सा सरूर आते ही समरू की दरियादिली जाग उठती। उसे लगता वह दूसरों से कहीं ऊंचा है, कहीं अधिक दानी और वह अपनी हाड़ी और चुक्कड़ किसी निठल्ले के आगे सरकाकर उठ खड़ा होता। "इसे कहते हैं दिल की अमीरी।" उसका वारिस कहता और वह गर्दन ताने, मुट्ठिया भींचे शेर की-सी चाल से बाहर को चल देता। दूसरे ताड़ीबाज नशे में झूमते हुए नाचते-गाते रहते, पर समरू वहां न ठहरता। वह अपने आपको उनसे कहीं ऊंचा समझता था। जो केवल अपने लिए पीते हैं, उनमें वह मिले। छि, आदमी वह जो चार को पिलाकर पिये।

और वह ताड़ीखाने से निकलकर झूमता हुआ चल पड़ता। अगर बिल्ली और चूहों से सुबह की कुछ रोटी बच रही होगी तो वह खालेगा, नहीं तो पड़ रहेगा ऐसे ही। दीया भी जलाकर क्या करना है? लोग उससे कहते हैं, एक घरवाली क्यों नहीं ले आते। जैसे घरवालिया

सम्पूर्ण शक्तियों तथा सूझ बूझ, साहस और कुशलता के साथ उसकी समस्याओं को हल करना आज का युग-धर्म है और इस युग धर्म का पालन करना हम सबका कर्त्तव्य है।
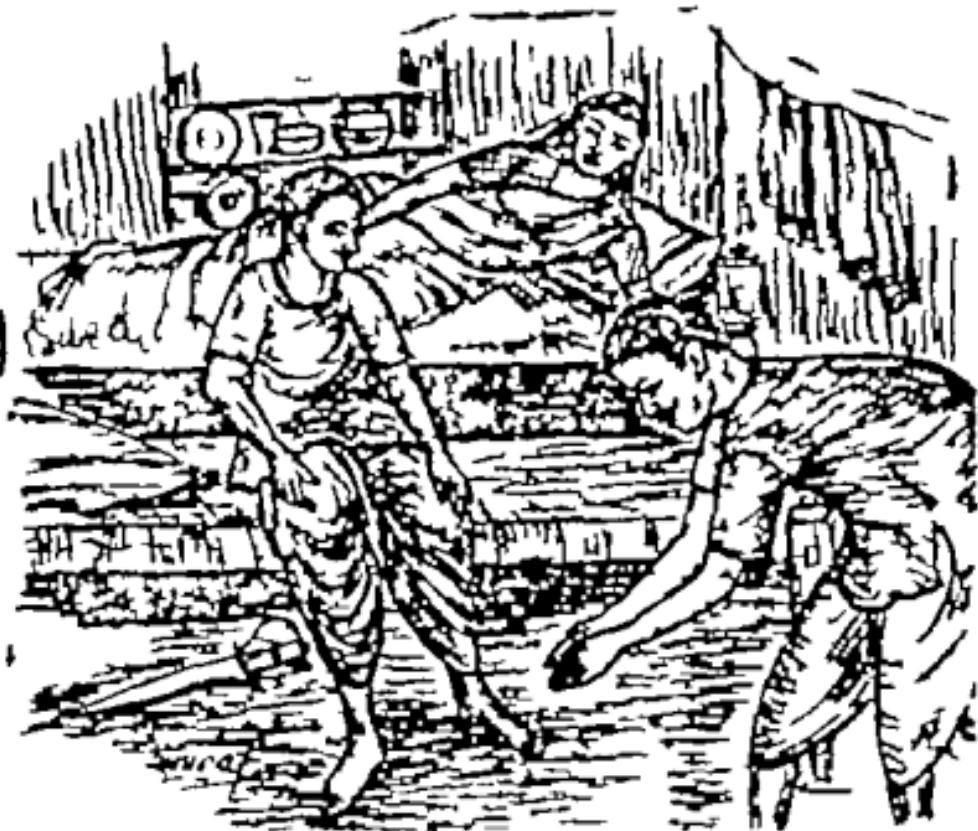
अपनी मुंदती हुई आँखों को जबरदस्ती फाड़कर बोला "कौन है रे ? ."

म्युनिसिपैलिटी की धुएंदार लालटेन अपने काले शीशों में से बीमारो की-सी मलिनता से झांक रही थी। मुश्किल से एक गज तक उसका प्रकाश था। उसीमें उसने आंख गड़ाकर पहचानना चाहा।

"कौन ? सिनकी ? तू यहां क्या कर रही है री ?" उसने अपनी जबान को लटपटाने से रोकते हुए, रुक-रुककर हिज्जे से करते हुए कहा।

सिनकी ने एक बार सिर उठाकर उसकी तरफ देखा और फिर फूट पड़ी। इकहरा बदन, साँवली देह, अंग-अंग से यौवन जैसे फूटा पड़ रहा हो। औरत खूबसूरत है समरू ने सोचा।

"फिकवा ने फिर हाथ छोड़ दिया शायद। आदमी नहीं कसाई है। गौ सी बहू पर ऐसा जुल्म !"

सहानुभूति के शब्द सुनी तो सिनकी और जोर से फफक पड़ी। "कहते हैं, फुलन्छनी है। दूसरों से हँसती-बोलती है। आज तो घर ही से निकाल दिया।"

समरू का हृदय भर आया। यह रात और यह अकेली औरत, कहां जायगी बेचारी। "मैं विश्वास करने लायक तो नहीं हू सिनकी, फिर भी अगर चलना चाहे तो मेरे साथ चल, टूटा झोंपड़ा और दो रोटी तो दे ही सकता हूँ।"

भविष्य के अन्धकार ने सिनकी की चेतना को ढककर उसकी सोचने की शक्ति को समाप्त-सा कर दिया था। वह समरू के साथ चल दी।

समरू ने घर मे घुस कर आले में रखी कुप्पी में दियासलाई लगा दी। क्षीण-सी ज्योति घर की बेतरतीब पड़ी वस्तुओं पर पड़ी। ओढ़ने-बिछाने के कपड़े गँठरी हुए एक कोने मे पड़े थे। झंगोला सी खाट के बीच में एक तकिया पड़ा था, जिसका फटा गिलाफ अपने मैले फूलों मे समरू की मा की कला की यादगार लिए अब अन्तिम साँसे ले रहा था। एक कोने में चूल्हे के पास आटे-दाल और मसालों की हाँड़ियों की सभा हो रही थी और चूल्हे के सिंहासन पर चढ़ी एक काली बटलोई उनका सभापतित्व-सा कर रही थी। चौके के पास ही लेटा हुआ पानी का घड़ा बता

"सिनकी ! तू ही मेरी बहन नहीं, मैं भी तेरा भाई हू। तूने अगर घर से कदम भी निकाला तो चोटी पकड़कर खींच लाऊंगा। मेरे पास तू फिकवा की अमानत है। इतनी बार उसे समझाया मगर वह मुझे ही उड़ाता है, पर

रहा था कि या तो पानी है ही नहीं यदि है भी तो बहुत थोड़ा।

"घर की क्या हालत कर रखी है मइया! किसी चीज का ठिकाना नहीं!" झिनकी ने चौके की हंडिया-कांडूस को बर्दाश्त करते हुए कहा।

"मइया!" समरू के कान में यह शब्द कुछ झनझनाता-सा उतरा। जैसे उसके गाल को किसी ने जोर का झटका दे दिया हो। उसे लगा जैसे वह झिनकी के सामने अपराधी है। वह उससे नजर नहीं मिला सका। उसने घड़ा उठाया और बाहर को चल दिया। उसका सिर चक्कर काट रहा था। वह क्या चाहता है वह स्वयं न समझ पा रहा था। पानी की छींटों से उसके शरीर में फुरहरी-सी आकर उसे लगा कि वह म्युनिसिपैलिटी के पुते हुए नल के पास काफी देर से खड़ा है। उसने घड़ा नल के नीचे कर दिया। चुल्लू से पानी पिया और खूब मलकर मुंह धोया। वह कुछ प्रफुल्लित-सा होकर घर को चल दिया।

अन्दर आकर देखा तो हंडिया कौरा यथास्थान आ चुकी थी। चूल्हे में कच्ची आंच से धुआं उठ रहा था और बेचारी झिनकी धुएं और मिट्टी की गन्ध में कसा-मसा कर रही थी।

बहुत दिनों बाद समरू ने खाना और भरपेट भोजन किया। किसी अज्ञात प्रेरणा से उसने एक चादर उठाई और बाहर बरामदे में जा बैठा। थोड़ी ही देर में झिनकी भी धोकर पास आयी।

"अच्छो बिस्तरा बिछा दिया है।" उसने कोमल स्वर में कहा।

समरू रुक गया। "तू कुछ अन्दर सो जाती। मैं यहीं ठीक हूं, बिल्कुल आराम से हूं मैं।"

"तुम्हें घर से निकाल बाहर करने नहीं आयी हूं मैं...और फिर यह जाड़े की रात—चलो भीतर।"

समरू आज्ञाकारी बालक की तरह उठकर भीतर चला गया। वह खाट पर बैठ गया। कुछ हटकर जमीन पर झिनकी ने अपने लिये सोने की जगह कर ली थी। झिनकी ने फूंक मारकर कुप्पी बुझा दी।

समरू को लगा जैसे वह हवा में तैर रहा है। उसकी सांस जोर से चल रही थी। उसके कानों में जैसे झिल्लियां झंकार रही थीं। उसने करवट ली। यद्यपि कमरे में घुप अन्धकार था, पर समरू को झिनकी की आकृति उसके अंग प्रत्यंग, उसका उभार जैसे स्पष्ट दीख रहा था। वह झिनकी की सांस स्पष्ट सुन रहा था। उसे अपना दम घुटता-सा लगा। उसने कराह कर धीरे से पुकारा "झिनकी!"–उसे लगा

र की कर्कशता इतनी कभी न अखरी थी।

"क्या है?" सिनकी ने धीरे से ही पूछा। अंधेरे में ही उसके अंग-संचालन से लगा उसने समरू की तरफ करवट ली है।

"तेरा आदमी क्या कहेगा तू मेरे यहां जो रह रही है?" समरू ने अपने स्वर को स्वाभाविक बनाने का असफल प्रयास करते हुए कहा।

"सोचेगा क्या? ..वह तो अब भी झूठी बातें सोचता है, तब भी सोचेगा।" सिनकी कुछ रुकी, "मरजाद तो अपने रखने की है किसी को दिखाने की नहीं।" फिर जैसे स्पष्टीकरण-सा करती हुई बोली, "और तुम क्या बुरे आदमी हो? मन में यकीन चाहिये।"

समरू कुछ समझ न पाया। उसका मस्तिष्क शायद कुछ समझने की अवस्था में ही न था। वह चुपचाप लेटा रहा। जब न रहा गया तो झटके से चारपाई पर उठकर बैठ गया।

"नींद नहीं आ रही, मइया? पैर दबा दूं?" सिनकी ने कोमल स्वर में पूछा। समरू के सिर में जैसे किसी ने हथौड़ा मार दिया। ओफ, ओफ यह औरत है या पहेली। मेरे कमरे में, मेरे घर में, मेरे पास और जैसे मुझ पर छायी जा रही है। और जैसे मैं एक खिलौना हूँ एक बालक! और समरू निढाल होकर लेट गया।

× × ×

सिनकी के विश्वास ने समरू के सोये हुए इन्सान को जगा दिया। बहुत दिनों बाद जैसे वह अपने घर लौट आया था। अब वह ताड़ीखाने नहीं जाता। मजदूरी के सारे पैसे सिनकी के हाथ पर ला रखता है। उसकी नसों में अब वह तनाव भी नहीं आता, जो पहले सिनकी के साथ अकेले में होते ही आ जाता था।

उस दिन काम पर से चला तो वरमा ने एक आंख बन्द करके कहा—"यार, जोरूवाले भी देखे, मगर 'तुम-सा गुलाम न देखा। अपने सारे शौक उस पर कुर्बान कर बैठे।"

कढेरा ने नहले पर दहला रखते हुए कहा, "भाई सतवती मिली है। फिकवा को धता बताकर इन्हें वरा है। भला, ये उसका आँचल ।"

समरू के कान में जैसे गर्म सीसा भर रहा था। "चुप रहो तुम लोग।" वह लगभग चीख उठा। मजदूरों का सारा गैंग ठठाकर हँस पड़ा। समरू खून का घूँट पीकर चल दिया।

सिनकी ने देखा समरू आज गंभीर है। "क्या ध्यान है?" उसने समरू के

पास बैठते हुए पूछा। समरू कुछ देर चुप बैठा रहा। फिर सहसा बोला, "क्या तुम्हें मेरी मेरी औरत बनकर रहते हैं।"

छिनकी खिलखिलाकर हँस पड़ी। फिर ज़रा गंभीर होकर बोली "यह बताओ हम मियाँ-बीबी कब बनेंगे! मैं और तुम राखी दें तब या लोग कब कहना शुरू कर दें!"

समरू कुछ अकचका गया। "क्या हम दोनों बन जायें।" उसने कुछ न समझते हुए कहा।

"तो बताते नहीं है। कोई क्या कहता है इससे क्या! मन साफ चाहिये।" और वह मुस्कराती हुई भीतर चली गयी।

और समरू ने अनुभव किया, उसमें एक नयी चेतना आ गयी है। उसे क्या छिनकी मालूम है और वह उससे भी ऊँचा उठ रही है। करुणा से कहरा से वह ऊँचा है बहुत ऊँचा।

उस दिन राखी थी। बाजारों में रंग बिरंगे धागे आ रहे थे। समरू के जी में उमंग उठी कि वह भी एक राखी छिनकी को ले जाकर दे दे। वह भी आज राखी बंधवा कर भाई बनने को सम्मान पाने को लालायित हो उठा। वह कुलाता हुआ-सा मुरली के बिसातखाने की दुकान पर जा खड़ा हुआ।

"कहो जी चौधरी!" दुकानदार बोला, "एक एक राखी चाहिये थी।" समरू ने ऐसे कहा जैसे वह कोई बड़ी शर्मनाक बात कर रहा था कि कोई सुन न ले।

पास के हलवाई लालम के कान खड़े हो गये। छोटी-सी आँखों को हँसने के समय ढकनेवाले गालों की मोटाई में डुबाते हुए बोले "ह ह ह – कोई बहन भी है की क्या! ह-ह ह भाई पूरा कुनबा छाकर रहेगा अब तो!"

समरू के दिल में जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया। एक राखी लेकर वह चल दिया। अब उनके मुँह वह क्या लगे!

चिढ़ाने के लिये कहे गये शब्द दुर्गंध जैसे होते हैं जो यदि अन्य व्यक्ति को न लगें तो कहनेवाले से ही आ टकराते हैं। लालम अपने मज़ाक का ऐसा निरादर देखकर खिसिया गये। बिसातखाने से बोले 'दुनिया भी खूब है भाई! अब कुछ न पूछो।'

सामने से छिनकी आ रही थी। लालम को देखा तो हँसी आ गयी। गोरे से मेल पर नारियल सा सिर झुकी हुई कचौरियों के थालों के बीच पकौड़ी सी नाक और उस पर गुलाब जामुन जैसी दो आँखें। "पाव भर मिठाई दे दो" एक लड़का लालम के पास पैसा फेंकता हुआ बोला।

लालम ने तराजू उठाते हुए ज़रा कुछ इधर उधर देख कर सावधानी से कहा

ाई फेकूराम ! हम तो यह जानते हैं, जो
े खुले आम। यह शकोरे में गुड़
ोना" और लाला ने अपने कथन के
भाव को देखने के लिये मुह को वन्द
िया कि आंखें ठीक से खुल सकें।

फिकवा सकेत को समझकर भी चुप
ी रहा। लाला ने विवश होकर फिर
हा "तुम हो कि सब कुछ पी गये और
ोई होता तो दोनों की गर्दन रेतकर रख
ेता। सबकी आँखों में धूल झोंकना
हैं दोनों। "फिर जरा स्वर को
करके बोले, "राखी ले गया है आज।
तुम चाहे जो करो राखी को
।" और हृदय को फाड़ कर आती
निश्वास में आगे के शब्द डूब गये।

फिकवा चला तो तेल का बैगन हो
था। यह पहली बार न था कि उस
फबतिया कसी गयी थीं। आज उसका
ष रह-रह कर तिलमिला उठता था।
'एक तो कुकरम और फिर उस पर लोपा
ोनी।" उसका हृदय जल उठा। उसे
याद आया, पहली राखी पर सिनकी उसीके
पास थी। वह चाँदनी रात कैसी सुहानी
थी। दोनों ने कैसे कैसे स्वप्न न देखे थे ?
पर सब गया। एक धोखे एक फरेब की
चोट का काला दाग छोड़ कर और आज
वही सब-कुछ दुहराया जायेगा। वही चाँद,
वही सिनकी, वही दीवानगी का आलम
बस, केवल वह न होगा। उसकी जगह
होगा समरू, वह काला और दुबला पतला
आदमी। फिकवा को लगा समरू की यह
विजय उसके पौरुष को चुनौती है। उसके
सपनों की कब्र पर मारी गयी लात है
और उसका प्रतिशोध भड़क उठा। वह
अपनी पराजय के दोनों प्रतीकों को सदा
के लिये मिटा देगा, खत्म कर देगा।

अपने भयकर निश्चय को कार्यान्वित
करने के साधन को अपने कोट मे छिपाये
जब फिकवा ने समरू के घर में चुपके से
प्रवेश किया तो रात आधी से अधिक बीत
चुकी थी। बाहर आंगन में ही दो आकृ-
तियां लेटी देख वह खभे के पीछे हो गया।

उसका शरीर कांप रहा था। माथे
की नसें फूल रही थीं। आंखें जगली
जानवर-सी खूंखार हो रही थीं। उसने
दाँत मींच कर अपने शरीर को तौला, एक
छलांग और समरू के दिल को पार कर यह
बाहर निकल आयेगी, वह सिनकी को भी
संभलने का मौका न देगा। दूसरे वार में
वह भी • उसने-अपने हाथ में चमकते
हुए फौलाद के उस टुकड़े पर नजर डाली।
सहसा उसकी नजर सिनकी के रह रह कर
सिहरते हुए शरीर पर गयी और फिर
दबी हुई हिचकी।

"सिनकी" समरू ने स्नेहभरे स्वर में
कहा। सिनकी चुप। समरू अपनी खाट

कोई भी व्यक्ति किसी भी पूर्व—निश्चित भाग्य अथवा विशेष प्रवृत्ति को लेकर नहीं आता। उसके भीतर विशाल शक्ति का स्रोत होता है जिसका प्रादुर्भाव अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होने पर निर्भर करता है। उसके अन्दर अनगिनत प्रवृत्तियाँ भावनाएं और मानसिक झुकाव होते हैं जो अवसर मिलने पर विभिन्न रूप से प्रकट होते हैं।

—प्रो हरबर्ट एस जैनिंग्स

पर उठ बैठा। "क्या बात है पगली।"

"भाग्य" सिमकी ने रुंधे गले से कहा और फफक कर रो उठी। फिर प्रकृतिस्थ होकर बोली "सोचती हूं तुम कितने अच्छे हो। एक बेजान पत्थर की औरत को अपनी बहन से ज्यादा करके रखे हो मेरे लिये बदनाम हो रहे हो और एक वह है जो मेरा हाथ पकड़ कर लाया था। उसकी हिचकी बंध गयी। मैं अब तुम्हारे पास न रहूँगी भीख माँगूंगी, मजूरी करूंगी मगर तुम्हें बदनाम

"सिमकी।" समरू जमजम चीख उठा। "तू ही मेरी बहन नहीं, मैं भी तेरा भाई हूं। तू ने जमाने पर से कदम भी निकाला तो चोटी पकड़ कर खींच लाऊंगा। मेरे पास तू किस्मत की अमानत है। इतनी बार उसे समझाता था मुझे ही बताता है पर तेरे सुख के दिन आने की प्रतीक्षा में मैं यह सब कुछ सह गया। समरू के अंतिम शब्द फीके हो गये थे।

"दादा।" कहता सिमकी के मुंह से निकला और भाग्य के फर्श पर एक चमकता हुआ फौलाद का टुकड़ा झनझनाता हुआ गिर पड़ा। चौंक कर उठ बैठे होते हुए समरू के पैर सिमकी ने पकड़ लिये।

× × ×

हर राखी को अब भी समरू सिमकी के यहां जाता है। सिमकी उसे अपने पास भी रखना चाहती है मगर वह अपना घर नहीं छोड़ता। समरू के जीवन में सिमकी द्वारा आयी नयी व्यवस्था स्थायी हो गयी है। उसे लगता है सिमकी की आंखें हर समय उसके कार्य-कलापों का लेखा जोखा रखती हैं और वह किसी भी तरह उनके सामने अपराधी बनने को तैयार नहीं किसी भी सूरत पर नहीं और पाप उभरे भले आदमी की-सी किस्मत बनाये रखने में ही वह सिमकी की राखी जीवित रखे है।

●

सदाचार-निर्माण का अभियान

और अणुव्रत

श्री छगनलाल शास्त्री

कहा जाता है, यह बुद्धिवादी युग है। मानवीय बुद्धि विकास के चरम शिखर पर पहुची जा रही है। बात सही है, बाह्य दृष्टि में कुछ ऐसा ही लगता है पर सूक्ष्म रूप से अन्तर पर्यवेक्षण किया जाय तो यह अज्ञात नहीं रहेगा कि आज बुद्धिवाद का नहीं, बुद्धि के अतिरेक का युग है। अतिरेक एकोन्मुख होता है। फलत जीवन के इतर, पर आवश्यक पहलुओं में आती कुण्ठा को वह देख नहीं पाता। यही कारण है अतिरेक असन्तुलन लाता है। इसलिए उसे श्रेयस् का साधक नहीं, बाधक कहा है।

बुद्धि के अतिरेक ने अणुबम और उद्जन बम जैसे विनाश की सृष्टि करनेवाले भस्त्राकार दानव पैदा किये, जिनकी विभीषिका से आज मानवता थर्रा उठी है। इसका प्रतिफल है—विश्व आज दो परस्पर विरोधी गुटों मे बँटा है। एक ओर रूसी गुट अमरीकी गुट को अभिभूत करने के लिए कृत सकल्प है तथा दूसरी ओर अमरीकी गुट रूसी गुट को। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के रगमच पर पैतरेबाजियाँ चलती हैं। पारस्परिक जलन और दौर्मनस्य के विष पर मीठी भाषा की शक्कर का पतला सा पर्त चढा राजनीति के महारथी वाक् कौशल दिखाते रहते हैं। बातें शान्ति की चलती हैं, पर हर कोई प्रच्छन्नरूप मे अपनी सेना बढ़ाने में लगा है। मित्रता के दावे पेश किये जाते हैं, पर उनका अन्तर्तम तो एक-दूसरे के छिद्रान्वेषण करने एव अपकार योजना गढ़ने मे लगा रहता है। आज व्यक्ति कय कह क्या रहा है और कर क्या रहा है, इसमें पूर्व-पश्चिम की सी अतिविमुखता आ गई है। कथनी और करनीके बीच एक गहरी दरार पड़ गई है। इसलिए स्थिति यों बनी—एक ओर मानव जहाँ शस्त्र और यन्त्र-बल से सुसज्ज है, वहाँ दूसरी ओर चरित्र-बल से दिन पर-दिन हीन होता जा रहा है। वैभव और सम्पदा के बड़े बड़े पहाड़ वह खड़े कर रहा है, पर सच्चारित्र्य की भूमिका, जिसपर वह खड़ा है, उसके पैरों के नीचे से खिसकती जा रही है। फलत उसके मस्तिष्क में एक हलचल और उथल-पुथल सी मच रही है। यह है आजके अँधियारे

युग में निराशा की धुंधली रेखाओं से बीच एक हलकी-सी रेखा खिंची।

आज का बुद्धि-अतिरेकी वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ और राष्ट्र चालक यह अनुभव करने लगा है कि उसके ये समग्र उपक्रम इस हरी भरी दुनिया को स्मशान बनाने के अतिरिक्त और क्या कर सकते हैं। बुद्धि अतिरेक की भूल भुलैया में भटके उनके मस्तिष्क पर एक करारी चोट पहुँची है पर फिर अभिप्रेत निष्ठा उनकी अपनी सिद्ध कैसे बने! इसलिए अपने को वह अहिंसा, सह अस्तित्व और मैत्रीपूर्ण व्यवहार की बात कह जाता है पर उसकी क्रिया-प्रक्रिया में अभी अन्तर कैसे आए।

ऐसे युग में राष्ट्रसन्त आचार्य श्री तुलसी ने अणुव्रत आन्दोलन के रूप में विश्व को एक नया प्रकाश दिया है। जन जन के आचरण में प्रामाणिकता व्यवहार में तथा क्रिया-प्रक्रिया में अहिंसा और वृत्ति में असंग्रह आये—यह इस आन्दोलन की पुकार है। यदि थोड़े में कहा जाय तो यह सद्व्यवहार, सद्धर्म, सद्भाव एवं—सदाचार का आन्दोलन है। सदाचार का एक पहलू नहीं भिन्न-भिन्न पहलू हैं—वैयक्तिक सदाचार, सामाजिक सदाचार, राष्ट्रीय सदाचार, अन्तर्राष्ट्रीय सदाचार। विश्व, राष्ट्र और समाज की अन्तिम इकाई व्यक्ति है। इसलिए सदाचार का सर्वाधिक प्रथम व्यक्तिगत है, पर क्यों कि व्यक्ति का जीवन एकान्त रूप से एकाकी नहीं है वह समष्टि सापेक्ष है, इसलिए सदाचार सर्वाङ्गीण केवल वैयक्तिक साधना में परिसीमित रह व्यापक बन नहीं सकता। उसकी परिधि और आगे बढ़ती है। समष्टि के विविध रूप—समाज राष्ट्र आदि की विभिन्नता के अनुसार उसमें किञ्चित् वैविध्य रह सकता है, पर उसके अन्तर-जीवनात्मक मूल स्वरूप में कोई तारतम्य नहीं होता। आचार्य श्री तुलसी द्वारा अणुव्रत का आन्दोलनात्मक परिवर्तन व्यष्टि और समष्टि दोनों के चारित्रिक चेतना का प्रशस्त मार्ग देता है।

व्रत भारतीय संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग है। वह आत्मा में रहना, विषयों में विरक्ति और कार्यों में नियमन देता है। व्रत का तात्पर्य है असत् से निवृत्त होना दुष्प्रवृत्तियों से बचना, अनाचार से अपने को दूर रखना। जीवनगत समस्त बुराइयों का स्थूल वर्गीकरण कर उन्हें हिंसा, झूठ, चोरी व्यभिचार और परिग्रह—इन पाँच भागों में बाँटा गया। इन बुराइयों के विरोध के आधार पर अहिंसा, सत्य, अचौर्य ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पाँच व्रतों की सृष्टि हुई। सम्पूर्ण परिपालन और आंशिक परिपालन की दृष्टि से वे क्रमशः महाव्रत और अणुव्रत

ाम से अभिहित हुए। इन्हीं के समकक्ष या मिलते-जुलते रूपमें पचयम, पचशील आदि का गठन हुआ।

इन विरतिमूलक समग्र उपक्रमों का प्रारम्भिक रूप अधिकाशत व्यक्तिनिष्ठ रहा। इनका मुख्य उपयोग वैयक्तिक साधना में था। आज वह पर्याप्त नहीं है। आज तो उसके सामष्टिक प्रयोग के अधिकाधिक विकसित रूप की अपेक्षा है।

त्रत आन्दोलन व्यक्ति-व्यक्ति के माध्यम इसो दिशा की ओर बढ़नेवाला सही ने में एक जीवन-निर्माणात्मक प्रयास ।

व्यापार में झूठे तोल माप का उपयोग न करना, असली के बदले नकली वस्तु न ना, राज्य-निषिद्ध व्यापार न करना, कालाबाजार न करना आदि नियम जहा अप्रामाणिकता और अविश्वसनीयता की ओर अग्रसर होते व्यापारिक जीवन में परिमार्जन और शुद्धि लाते हैं, वहा दहेज का प्रदर्शन न करना, दहेज लेना खोलकर विवाह-सम्बन्ध स्वीकार न करना, एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह न करना, वृहत भोज न करना आदि नियम आडम्बर-प्रधान बहिर्मुख सामाजिक जीवन में सुधार और सद्व्यवस्था का सचार करते हैं, वोट के लिए न रुपये लेना और न लेने का ठहराव करना, शराब पिलाने जैसे घृणित कार्यों द्वारा किसी को वोट देने के लिए प्रेरित न करना, किसी पर मिथ्या आरोप, कलक न लगाना, किसी की असत्य, कटु, अश्लील आलोचना न करना आदि नियम जन-तान्त्रिक व्यवस्था के मूलाधार चुनाव में एक शुद्धिमूलक वातावरण उत्पन्न करते हैं। अशुद्ध और अन्यायाश्रित भूमि के आधार पर फलनेवाले जनतन्त्र का पौधा विष फल के बदले अमृत फल कहा से देगा।

अणुव्रत आन्दोलन केवल सिद्धान्त रूप में अहिंसा आदि का निरूपण करनेवाला उपदेशात्मक कार्यक्रम नहीं है। वह तो युगीन समस्याओं, विषमताओं और कठिनाइयों से टक्कर लेने के सामर्थ्य और ओज से सस्फूर्त सदाचार-निर्माण का महान् अभियान है।

यदि व्यक्ति, समाज और राष्ट्र ने इसे सहीरूप में समझा, इन आदर्शों पर जीवन ढालने का प्रयत्न किया तो यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि एक ऐसे व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की सृष्टि होगी, जहां हिंसा, द्वेष और वैमनस्य के बदले अहिंसा, स्नेह और सौहार्द, वचना के बदले विश्वास तथा अप्रामाणिकता, मिथ्याचार और दम्भ के बदले प्रामाणिकता, सत्याचरण और सरलाशयता का निर्मल स्रोत फूट पड़ेगा।

●

उठो नींद के कैदियो आँख खोलो !

श्री वृषीप्रसाद 'राही'

किसी फूल के मौन का गीत हूँ मैं—
उसी के लिये हूँ न जो बोल पाये।

नई जिन्दगी की सुबह हाथ में ले
नई रोशनी की फसल काटता हूँ
अँधेरे में भटके हुये राहियों को
बिना दाम के रोशनी बाँटता हूँ
सराबोर जो हो गये आँसुओं से
अँधेरे ने जिनका गला घोंट डाला
नियति की परिधि में रहे घूमते जो—
प्रगति का जिन्हें मिल न पाया उजाला

उन्हीं की विवश मूकतायें उभर कर—
मुखर हो रहीं गीत बनकर अधर पर
जमह घोंट सह मूक की कामना की—
तुम्हारी तरह जो न मुँह खोल पाये।
उसी के लिये हूँ... ...

अँधेरा मिटे और उन जुगनुओं से
पले जो सदा रात के ही सहारे
सवेरा कहाँ चाँद के राज में है?
यही सोचकर टूट जाते सितारे
जिसे प्राण देकर शलभ ने जलाया
उसी दीप को आँधियाँ जो बुझा दें।
उठो नींद के कैदियो आँख खोलो
चलो रात में आज सूरज उगा दें

बड़ा कर्ज तुमको अभी पाटना है
उन्हें हौसला फासला बाँटना है
गिरी रूढ़ियों के सड़े बन्धनों से—
कभी पंख अपने न जो खोल पाये।
उसी के लिये हूँ ...
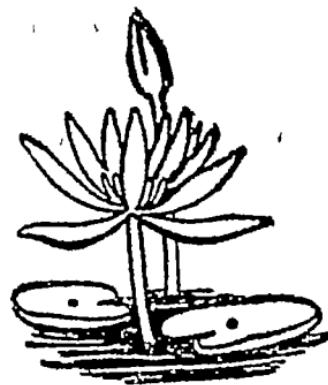
शान्ति-निर्माण और पंचशील

श्री मन्मथनाथ गुप्त

यदि सारे संसार के लिए कोई धर्म हो सकता है तो वह है शान्ति। यह शान्ति किसी दार्शनिक अर्थ में नहीं, बल्कि बहुत ही साधारण व्यावहारिक अर्थ में है, जिसका मतलब केवल इतना ही है कि लोग युद्ध से बचे रहें।

इस सम्बन्ध में दिन-ब-दिन यह स्पष्ट होता जा रहा है कि यदि विश्व के दो शक्ति गुटों में खुलकर युद्ध हुआ तो मानव जाति का विनाश हो जायगा। पहले के युद्धों में कई बार दो पहलवान या योद्धा आपस में लड़कर निर्णय कर लेते थे। इस प्रथा को हम चाहे जितना भी हास्यास्पद समझें, पर यह अधिक मानवीय थी, इसमें सन्देह नहीं। एक आदमी जान से जाता था और सारी बातों का फैसला हो जाता था।

यदि उक्त प्रथा का हम गहराई के साथ विवेचन करें तो हमें मालूम होगा कि अन्य प्रकार के युद्धों के मुकाबिले में उक्त प्रथा कोई कम युक्तियुक्त नहीं थी। क्या बाद में जिस प्रकार के युद्ध होने लगे, उनमें विवादास्पद विषयों का कोई अन्तिम निर्णय हो जाता था?

द्वितीय महायुद्ध को ही लिया जाय। इस युद्ध में नात्सियों और फासिस्टों की हार हुई, पर क्या इससे फासिस्टवाद की हमेशा के लिए पराजय हो गई? इस युद्ध में स्पेन और पुर्तगाल ने खुलकर भाग नहीं लिया था, पर उनकी सहानुभूति केवल मौखिक ही नहीं सक्रिय सहानुभूति हिटलर, मुसोलिनी और टोजो के साथ थी। युद्ध समाप्त होने के बाद कुछ वर्षों तक विजयी पक्ष ने मार्शल फ्रैंको का अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हुक्का पानी बन्द रखा, पर धीरे-धीरे अमरीका और ब्रिटेन ने उनसे राजनयिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया। इस प्रकार खुल्लमखुल्ला लघु हिटलर को माफी दे दी गई। लोग इस बात को भूले न होंगे कि स्पेन में साम्यवाद तो दूर रहा लोकतन्त्र पर विश्वास करनेवाले लोगों को भी चुन-चुनकर मार डाला गया।

यह तो हुआ एक पक्ष। अब दूसरे पक्ष को लीजिये। जो शक्तियां जरूर हार गईं उनके सेनापतियों आदि को जेल में बन्द कर दिया गया और उन पर मुकदमा चलाकर इन्हें लम्बी सजायें दी गईं। इस सम्बन्ध में न्यूरेनबर्ग मुकदमा तथा जापानी सेनाध्यक्ष जनरल टोजो के मुकदमों का स्मरण किया जा सकता है।

अब यह पूछा जाय कि यह कहाँ तक उचित रहा। पहले प्रचलित और अन्तर्राष्ट्रीय रूपसे स्वीकृत नियमोंके अनुसार किसी दल की तरफ से लड़नेवाले सैनिक तथा सेनापति युद्धबन्दी बनाए जा सकते थे पर उन पर और कोई मुकदमा केवल युद्ध करने के लिए चलाया नहीं जाता था। इस बार उसका भंग हुआ। हम इसलिए यह नहीं कह रहे हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय रूप से स्वीकृत यह जो नियम था वह अच्छा था और इसे न मानना कोई अनैतिक कार्य है। मैं तो केवल इतना ही दिखला रहा हूँ कि सिद्धान्त के नाम पर अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का भंग हुआ। यदि ये सिद्धान्त अच्छे होते तो कोई बात नहीं थी पर यहाँ तो यह पता ही नहीं चलता है कि ये सिद्धान्त कौनसे थे जिनके आधार पर यह कार्रवाई की गई। हाँ एक नया कारगर सिद्धान्त दृष्टिगोचर हो रहा है यह यह कि जो हारे वह फांसी पर होता है और जो जीते वह नहीं होता है और इसे यह हक होता है कि वह न्याय के नाम पर हारे हुए लोगों के साथ जैसा चाहे वैसा सलूक करे। कहना न होगा कि यह सिद्धान्त जंगल के कानून का दूसरा नाम है।

यदि दूसरे महायुद्ध के पश्चात् न्याय के राज्य का उदय होता और जहाँ भी अन्याय होता वहाँ उसका विरोध किया जाता तो भी कोई बात बनती। हम अपने तजरबों से जानते हैं कि जीते हुए पक्ष के लोग संत नहीं हैं। वे हर मामले में अपने स्वार्थ से चलते हैं। उन्हें न तो लोकतन्त्र से कोई मतलब है न समता से। वे तो हर घटना पर इतना ही देखते हैं कि इस झगड़े में किसका पक्ष लेने से उनका लाभ रहेगा। काश्मीर के मामले में अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों का यही रवैया रहा। कौन नहीं जानता कि काश्मीर की प्रतिनिधि संस्था नेशनल कान्फ्रेंस तथा वहाँ के राजा के निमन्त्रण पर ही भारतीय सेना वहाँ तक गई; जबकि काश्मीर पर कबायली सेना चढ़ आई थी कौन नहीं जानता कि इस समय काश्मीर के लोगों का भारत के अन्तर्गत रहने में ही लाभ है। कौन नहीं जानता कि पाकिस्तान में जो काश्मीर का हिस्सा रह गया, उसका बुरा हाल है और अभी-अभी मामूली बहाने से वहाँ

ज़ीरियों को भूनकर रख दिया गया।

भी जब भी अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में काश्मीर मामला जाता है तो ब्रिटेन और रीका हमारा समर्थन न कर पाकिस्तान समर्थन करते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि हिटलर बहुत ही र्थ और निदय था, इसमें भी सन्देह नहीं कि वह लोकतन्त्र में विश्वास न रखता था, त जो लोग लोकतन्त्र के दावेदार बनते हैं उससे किसी प्रकार अच्छे हैं इसका प्रमाण से नहीं मिला है। हा, इन लोगो के तौके सुरुकर युद्धात्मक नहीं होते और वे र समय लोकतन्त्र की माला भी जपते रहते हैं, बड़े बड़े आदर्शों की छौंक लगाकर बातें करते हैं, पर इससे अधिक कुछ नहीं। न तो नि स्वार्थी हैं और न युद्ध से उन्हें कोई परहेज़ ही है।

अभी-अभी अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ब्रिटेन ने दो बार शान्ति भग किया और दोनों बार वह गल्ती पर था इसमें कोई सन्देह नहीं। उसने पहले तो मिस्र पर हमला किया, पर भारत आदि देशों ने इतना गवला मचाया और अन्तर्राष्ट्रीय जनमत ने इसका इतने जोर से विरोध किया, अन्तिम कारण के रूप में रूस ने इतने जोर से दहाड़ा और उधर अमरीका ने मदद नहीं की कि ब्रिटिश सिंह को दुम दबाकर पीछे हटना पड़ा।

दूसरी घटना ओमान पर हमले की है, जो लेख लिखे जाते समय भी चालू इस अर्थ में है कि अभी तक वहां सारा विरोध दबाया नहीं जा सका।

सारे ससार की राजनैतिक परिस्थिति ऐसी है कि इसे विराट बारूदखाना कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। कोरिया, फारमोसा, अरब कहीं से भी भयकर महा-युद्ध का आरम्भ हो सकता है। आश्चर्य तो यह है कि अब तक ससार महायुद्ध से बचा कैसे रहा, पर यहां आश्चर्य नहीं है।

वह इसलिए कि भारत तथा अन्य कई देश ऐसे हैं जो सैनिक-शक्ति की दृष्टि से बहुत ही कमज़ोर हैं, पर जिनकी नैतिक आवाज़ आज सारे देशों में गूँज रही है। भारत ने जो पचशील का आदर्श रखा है वह विश्व शान्ति का एकमात्र दर्शन हो सकता है। अवश्य उसमें केवल अनाक्रमण, अहस्तक्षेप, झगड़ों का पारस्परिक बातचीत के द्वारा निर्णय आदि जो बातें हैं, वे सम्पूर्ण नहीं हैं। जब तक सारे देश स्व-तन्त्र नहीं हो जाते और स्वतन्त्र केवल राजनीतिक अर्थ में नहीं बल्कि सभी अर्थों में, तब तक विश्व-शान्ति की जड़ें मजबूत नहीं होंगी। यह आशा करना कि विश्व शान्ति के नाम पर कोई देश स्वतन्त्रता पाने की अपनी लड़ाई बन्द कर दे, चाहे वह सशस्त्र लड़ाई हो, गलत और मूलत गुमराहकुन है।

विश्व-शान्ति के साथ-साथ सब देशों की स्वतन्त्रता भी अभीष्ट है। इन दोनों बातों को न तो अलग किया जा सकता है और न ये वस्तुतः पृथक हैं। उन्हें एक दूसरे से अलग करना खतरे से खाली नहीं है। आज बहुत से देश स्वतन्त्र केवल नाम भर के लिए हैं। हम यह बता दें कि हम यहाँ जिस स्वतन्त्रता का जिक्र कर रहे हैं वह इस प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं। स्वतन्त्रता ऐसी होनी चाहिए, जिसमें दूसरे देशों का राजनीतिक या आर्थिक दबाव न हो। इसके साथ ही हम स्वतन्त्रता को तबतक पूर्ण नहीं मानते जबतक कि समाजवाद स्थापित न हो जाय। यहाँ इस बात पर ऐन-व्याख्या की आवश्यकता नहीं है कि समाजवाद क्या है। समाजवाद का एक सीधा और सरल अर्थ है मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का लोप। यदि कोई देश स्वतन्त्र हुआ और वहाँ समाजवाद न हुआ तो इसका अर्थ यह है कि उसके कुछ ही अधिवासियों को स्वतन्त्रता मिली है, बाकी लोगों के लिए तो परिस्थिति यही है कि न हुए दूसरे देशों के प्रभु अपने देश के हो प्रभु शासन और शोषण कर रहे हैं। जबतक किसी देश में समाजवाद स्थापित नहीं हो जाता तबतक वहाँ सार्वजनिक वोटाधिकार रहते हुए भी वह पूर्ण अर्थों में न तो स्वतन्त्र है बाकी केवल कुछ लोगों के लिए स्वतन्त्रता है और न वहाँ लोकतन्त्र ही है।

आज मानव जाति के लिए विश्व-शान्ति इस कारण और भी आवश्यक हो गई है कि अणु-शक्ति का जो विकास हुआ है और जिस प्रकार से निरन्तर विकास होता जा रहा है उससे तो युद्धों में युद्ध बिल्कुल विनाशकारी होगा। जब अणुबम फटता है तो उससे इतनी प्रभा निकलती है कि सूर्य भी उसके सामने फीका है। साथ ही धमाका इतने जोर से होता है कि मीलों की मजबूत मकान उसी धक्के से गिर जाते हैं। कई मील तक गर्मी फैलती है और उसकी आँच से पत्थर धातु भी पिघल जाता है, प्राणियों की तो बात ही क्या है। सैकड़ों मीलों तक इसकी धूल तथा गैस फैलती है जिससे वातावरण जहरीला हो जाता है। यदि आदमी बच भी जाय तो वह अपंग हो जाता है। समुद्र तक की मछलियाँ मर जाती हैं और वे जहर से इतनी भर जाती हैं कि उन्हें खानेवाले मर जाते हैं। धूल से ऐसा घाव होता है जो कैन्सर की तरह है और कभी अच्छा नहीं होता। जो किसी इन बातों से बचे वे प्रजा उत्पन्न करने में असमर्थ हो जाते हैं। इस तरह जिस भी दृष्टि से देखा जाय अणुबम या हाइड्रोजन बम मनुष्य जाति के लिए महा

ी खतरनाक हैं। उनसे मनुष्य जाति को
ा भय है।

भी जो इनफ्लुएंजा फैला था, वह
बमों के प्रयोग के कारण फैला था—यह
भी मान रहे हैं। आगे इसी रोग
ा और भी भयकर प्रकोप होगा, यह
भी से कहा जा रहा है।

अस्त्रों का तो यह हाल है और
जिनके पास अस्त्र हैं, उनकी मनोवृत्ति का
पहले ही विश्लेषण किया जा चुका।
यद्यपि युद्ध नहीं हो रहा है, पर शीतल
युद्ध बराबर जारी है। दोनों गुट अपने-
अपने साथियों को अस्त्र-शस्त्र से लैस कर
रहे हैं। पता नहीं कब कहां से चिनगारी
छूट पड़े? जैसा कि हम पहले बता चुके हैं
चिनगारियाँ क्या छोटे मोटे अग्निकाण्ड
भी होते रहते हैं। किसी समय भी
विश्वव्यापी विस्फोट हो सकता है।

ऐसे अवसर पर हम भारतवासी केवल
यही कामना कर सकते हैं कि हमारे प्रधान
मन्त्री शान्ति की जो दुन्दुभि बजा रहे हैं,
वह विश्ववासियों के कानों तक पहुचे। सच
तो यह है कि किसी भी देश की जनता
युद्ध नहीं चाहती। दोनों गुटों में से
एक गुट भी शान्ति चाह रहा है। वह
किसी पारमार्थिक कारण से नहीं, बल्कि इस
कारण से कि वह समझता है कि यदि
शान्ति बनी रही और चीन आदि देशों
का एक-एक रूस के रूप में उदय हुआ तो
उनकी विजय निश्चित है, पर दूसरा गुट
चाहता है कि इससे पहले ही निपटारा हो
जाय, पर निपटारा कहा होनेवाला है!
अब या तो मनुष्य जाति का विनाश होगा
या शान्ति कायम रहेगी।

●

नहीं सरकार !

[श्री रवीन्द्र कालिया]

'तुम्हें कौनसा रंग अच्छा लगता है?'

'सफेद'

'तुम्हें,'

'पीला'

'तुम्हें,'

'सब रग'

'और तुम्हें'

'लाल!' कैदी ने सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल के मजाकिया प्रश्न के उत्तर में आंखें मूंदकर खोलते हुए कहा।

"इसे अलग रखा जाय।"

सुपरिन्टेन्डेन्ट जेलर ने साथ खड़े सिपाही की ओर मुडकर कहा—'यह कम्युनिस्ट है। बीमारी फैला देगा।' बूढा कांपने लगा, 'नहीं सरकार कम्युनिस्ट नहीं, मै तो बजरगबली का भक्त हूँ'।'

संघर्षशील मानव,

सृजन की ओर

श्री धर्मवीर एम. ए.

●

"मनुष्य सदा के लिए जीवित रह सकता है।" यह बात एक वैज्ञानिक ने कही है। क्या इसमें सचाई पाई जाती है? हम थोड़ी देर के लिए इस पर विचार करते हैं।

जो चीज बनती है वह किसी न किसी समय बिगड़ती है। जो उत्पन्न होता है वह किसी-न-किसी समय मरता है। जन्म के साथ ही मरना बंधा हुआ है। इसी प्रकार जीवन के साथ मृत्यु लग रही है।

हजारों वर्ष हुए एक तत्त्वदर्शी ऋषि ने कहा— मैं उस महान् पुरुष को जानता हूं जिसका रंग आदित्य के समान है और जो अंधेरे से परे है। उसे ही जान कर मनुष्य मृत्यु को पार कर सकता है।" (वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् तमेवविदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय।)

मृत्यु को पार कर सकता है। क्या इसका अर्थ यह नहीं कि मनुष्य सदा के लिए जीवित रह सकता है?

हम इस पर थोड़ा और विचार करते हैं। भगवान् कृष्ण ने भगवद्गीता में कहा है— वेद-मंत्रों में गायत्री-मंत्र मैं हूं।"

यह क्यों? गायत्री की इतनी महिमा क्यों? गायत्री में कहा गया है— "परमात्मा सत्, चित् और आनन्द है।" दूसरे शब्दों में वह स्वयंभू—सदा रहनेवाला है, सब कुछ जानता है और आनन्द स्वरूप है। इसके पश्चात् उसी में कहा गया है— उस सविता देव (परमात्मा) की सर्वश्रेष्ठ ज्योति को हम मानव अपने अंदर

धारण करते हैं, ताकि हमारी बुद्धियों को वह (ज्योति) प्रेरित करे।"

यह बात साधारण-सी दिखलाई देती है। परमात्मा की ज्योति से मनुष्य की बुद्धि को प्रेरणा प्राप्त हो। परंतु कैसे? इसका उत्तर गायत्री के किसी भाष्यकार से नहीं मिला (कम से कम देखने में नहीं आया) और गायत्री का रहस्य है यहीं। सविता सूर्य को भी कहते हैं। सूर्य दिन भर निष्काम भाव से कार्य करता रहता है। दूसरों को ज्ञान, गरमी, प्रकाश, स्वास्थ्य, अनाज, बुद्धि, जीवन आदि देता है, परंतु इसके बदले वह लेता कुछ नहीं है। इसी प्रकार मनुष्य भी सूर्य के समान कार्य करे। सूर्य परमात्मा का एक चमत्कार है। परमात्मा भी इसी प्रकार कार्य करता है। यदि और जगह मनुष्य इस ढंग से काम करने लगता है तो वह परमात्मा के पथ पर चलने लगता है। बस, यही है वह प्रेरणा, जिसकी ओर गायत्री में महान् मंत्र द्रष्टा ने संकेत किया है। यह प्रेरणा बुद्धि के लिए ही नहीं है, हृदय के लिए भी है, जिसका स्थान बुद्धि से ऊपर है।

वास्तव में बात एक ही है। जिस प्रकार एक ऋषि ने 'आदित्य' कहा उसी प्रकार दूसरे ने 'सविता' कह दिया। महत्त्व दोनों के अर्थ में है, जो वास्तव में एक ही है।

इसी बात को एक उपनिषद्कार ने यों कहा है—"इस संसार में तू इस प्रकार कार्य करता रहेगा तो तेरी आयु सौ वर्ष की हो सकती है, तू इसकी कामना कर सकता है। इस ढंग से कार्य करने पर तुझे कर्म छूएंगे नहीं, तू उनसे अलिप्त रहेगा। यह स्मरण रहे कि इसके सिवाय तेरे लिए कोई दूसरा मार्ग नहीं है।"

परंतु यह तो बताया ही नहीं गया कि काम करने का वह ढंग कौन-सा है? इससे पहले मंत्र में इसका उत्तर दिया गया है—"तू जो कुछ भी प्राप्त करता है, उसे तू अपना न समझ और परमात्मा के नाम पर उसका त्याग करने के पश्चात् उसका उपभोग कर।"

यह है वह ढंग जिस पर आचरण करने से मानव मृत्यु को टाल सकता है। किन्तु इसमें तो परस्पर विरोध पाया जाता है। क्या किसी चीज का त्याग करने के बाद मनुष्य उसका उपभोग कर सकता है? त्याग और भोग तो दोनों परस्पर विरोधी भाव हैं।

हां, त्याग करते हुए मानव उपभोग कर सकता है। थोड़ी देर के लिए यज्ञ शब्द पर विचार कीजिये। हमारे यहां कहा गया है कि हमारा जीवन यज्ञमय हो। इसका क्या तात्पर्य है?

फिर कहा गया है—"यज्ञ को यज्ञ

की भावना से करना चाहिये।" (यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्।) इसका क्या अर्थ है।

वास्तव में स्वयं परमात्मा ने इस सृष्टि की रचना यज्ञ के आधार पर की है। (और उसी के आधार पर यह स्थित है)। जब परमात्मा के ढंग पर चलने का आदेश गायत्री देती है तब बात स्पष्ट हो जाती है। इसी को दूसरे शब्दों में यों कहा गया है—तुम यज्ञ का शेष खाया करो। यज्ञ करने के पश्चात् जो कुछ बचे उसका तुम उपभोग कर सकते हो। यज्ञ से पूर्व या यज्ञ के बिना, तुम किसी वस्तु का उपभोग नहीं कर सकते।

इसी बात को ऋग्वेद के पहले मंत्र में कहा गया है—"यज्ञ के देवता, पुरोहित और ऋत्विक-अग्नि की हम पूजा करते हैं। इस अग्नि के अंदर सभी रत्न भरे पड़े हैं।" (अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।)

अग्नि के अन्दर सभी रत्न भरे पड़े हैं अग्नि सभी रत्न धारण करनेवाली है—इसका क्या अर्थ है। बहुत दिन तक इस पर विचार किया, परन्तु ठीक ठीक समझ न आया। अंत में फीरोजपुर जेल में कई दिन तक ध्यान देने पर परमात्मा ने कृपा की। रहस्य की बात यह है कि जो मनुष्य यज्ञ की भावना से संसार में कर्म करता है उसे सब कुछ प्राप्त हो जाता है, वह किसी भी वस्तु से वंचित नहीं रहता। सभी प[illegible] उसके हाथ में होते हैं।

परंतु कोई यह न समझ बैठे कि मनु[illegible] हाथ-पर हाथ धरकर बैठ जायगा तो उसे धन-धान्य प्राप्त हो जायगा। नहीं, ऐसा करने वाला मानव मानव नहीं रहेगा; वह तो पशु कहलायेगा। मनुष्य तो कर्मशील है। हां उसके कर्म का आधार यज्ञ की भावना होनी चाहिये। तभी वह सृजन की ओर बढ़ता है। यह सृजन रूप क्या भी हो सकता है ज्ञान और विज्ञान भी। ऐसा मनुष्य यज्ञ चित्त-धर्म का रूप हो जाता है। उसे परमात्मा का साक्षात्कार प्राप्त होता है।

परंतु आज हम संसार में क्या देखते हैं। रूस के वैज्ञानिकों ने अणुबम और हाइड्रोजन-बम के बाद आई० सी० बी० एम्० बना डाला है। यह बिना चालक के दस हजार से बीस हजार मील प्रति घंटा के हिसाब से चलता है और पांच हजार से दस हजार मील की दूरी पर जा गिरता है। मतलब यह कि रूस से छूटकर आई० सी० बी० एम्० इंग्लैंड या अमेरिका में पहुंच सकता है। जिसके साथ अणु-बम या हाइड्रोजन-बम बंधा होगा अर्थात् रूस घर बैठे अपने शत्रु इंग्लैंड या अमेरिका को नष्ट कर सकता है। आज यह कार्य रूस करता है, कल इंग्लैंड और अमेरिका करेंगे।

वास्तविक निर्माण

श्री बलदेव उपाध्याय एम० ए०, साहित्याचार्य

आजकल निर्माण की इतनी अधिक चर्चा है, जितनी अन्य किसी वस्तु की नहीं। नया युग जो ठहरा। स्वतन्त्रता के इस बहुरंगी युग में निर्माण की चर्चा होना स्वाभाविक है, परन्तु मेरी दृष्टि में लोग बाहरी भौतिक निर्माण के विषय में ही अधिक सोचते हैं, आन्तरिक आध्यात्मिक निर्माण पर विशेष ध्यान ही नहीं देते।

मानव अनेक सद्गुणों तथा दुर्गुणों का एक जीता-जागता पुतला है। उसे अपनी वास्तविक उन्नति पाने के लिए अपने चरित्र-निर्माण की परमावश्यकता है। जो लोग समझते हैं कि हम केवल भौतिक निर्माणों के द्वारा ही देश का सच्चा मंगल तथा वास्तव उन्नति कर सकते हैं, वे तथ्य से बहुत ही दूर भटकते हैं। निर्माण का आरम्भ भीतर से होना चाहिए। बिना इसके हुए एकाहरी निर्माण एक निर्जीव घटना से अधिक महत्त्व नहीं रखता। चरित्र-निर्माण के कतिपय साधन हैं, जिनकी ओर आज बहुत ही कम ध्यान दिया जा रहा है।

पहिला साधन है—आस्तिकता। इस जगत् के मूल में एक सर्वव्यापक महत्त्वशालिनी शक्ति है, जो प्राणियों के कल्याण के लिए सदा जागरुक रहती है। उसे किसी भी नाम से पुकारा जाय, परन्तु वह शक्ति अवश्यमेव विद्यमान है। नाना धर्मवाले उसे भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं, परन्तु उस शक्ति की सत्ता के विषय में कभी किसी को सन्देह नहीं रहता। सन्देहवादियों की भी सत्ता इस विशाल विश्व मे है, परन्तु दाल में नमक के समान

तब हमारा यज्ञ का तत्त्व-दर्शन कहाँ गया ? आई० सी० बी० एम्० को वैज्ञानिक 'अन्तिम शस्त्र' बताते हैं। इसके मुकाबले पर यज्ञ का तत्त्व-दर्शन संसार में जीवन, ज्ञान, सुख और शांति का 'अंतिम साधन' है। इसलिए संसार को निर्णय करना होगा कि वह मृत्यु चाहता है या जीवन। वह जो चाहे चुन सकता है—मृत्यु चाहे तो मृत्यु जीवन-चाहे तो जीवन। यज्ञ का तत्व-दर्शन अमर जीवन है, इसमें कोई संदेह नहीं, आज भारत पश्चिमीयता की चकाचोंध के कारण अपने को भूल गया है परतु यदि वह जीवित रहना चाहता है तो उसे अपने आपको प्राप्त करना ही होगा।

इनकी संख्या नगण्य है। आस्तिक होने की पहली योग्यता है—इस पर सर्वशक्तिमान् परमेश्वर में अटूट विश्वास तथा पूर्ण श्रद्धा। हमलोग अपने को आस्तिक अवश्य कहते हैं परन्तु हृदय से उसमें आस्था नहीं रखते। यदि रखते तो संसार से बुराइयों का नाश कभी दिन से हो जाता। ईश्वर को सब घटनाओं का द्रष्टा माननेवाला व्यक्ति, भला उसकी उपस्थिति में कभी अपने साथी की चोरी पर अपना हाथ साफ कर सकता है? ईश्वर को सर्वत्र माननेवाला प्राणी क्या उससे छिपकर कभी बुराई कर सकता है? नहीं, कभी नहीं। इसलिए हमारा आग्रह है कि हम सच्चे अर्थ में आस्तिक बनें, जगत् के नियन्ता पर पूर्ण विश्वास रखें उसकी मंगल भावना पर आस्था रखें। चरित्र सुधारने का यह प्रथम सोपान है।

इसका दूसरा सोपान है सदाचार का सेवन। भगवान् मनु ने ठीक ही उपदेश दिया है कि जिस मार्ग से हमारे पिता तथा पितामह चलते रहे हैं उस सन्मार्ग के ऊपर हमें भी अवश्य चलना चाहिए। इस मार्ग का अनुसरण करनेवाला कभी भी क्लेश या विपत्ति नहीं पाता। मनु महाराज के शब्द बड़े ही स्पष्ट और उदार श्लोक हैं—

येनास्य पितरो याता येन याता पितामहाः।
तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यति॥

महाभारत में शील निरूपण के प्रसंग में एक बड़ा ही सुन्दर उपदेश दिया गया है। दुर्योधन से पिता धृतराष्ट्र ने यही तो प्रश्न किया था कि तुम सुन्दर स्वादिष्ट भोजन करते हो। ऊँचे तुरंगों पर सवारी करते हो, रेशमी वस्त्रों को धारण करते हो तथापि तुम दुबले-पतले तथा पीले पड़े जाते हो—केनासि हरितः कृशः! उत्तर यही था शील का अभाव। शील ही मानवको अमर बनाता है, शील ही उन्नति का एकमात्र कारण है। शील के अभाव से ही मनुष्य अधोगति को प्राप्त करता है। अतएव शील का अभ्यास मानव को सदा करना चाहिए। शील की परिभाषा क्या है? योग्य वही कार्य होता है जिसके करने में कर्त्ता कभी लजाता नहीं, दूसरों से छुपा कर कभी नहीं करता तथा जिसके कारण समाज में प्रशंसा का भाजन होता है। 'अपत्रपेत वा येन न तद् कुर्यात् कथंचन' जिस कर्म के करने में लज्जा अपनी हो उसे विद्वान् को कभी न करना चाहिए। सदाचार की मूल प्रतिष्ठा इसी शील पर है। अतएव जबतक शील का आश्रय नहीं किया जाता, तब तक कोई वास्तविक निर्माण हो नहीं सकता। वास्तविक निर्माण है अपने चरित्र का निर्माण, अपने अध्यात्म का निर्माण तथा अपने अन्तर्मन का निर्माण। किसी भी राष्ट्र की

न्युन्नति में यह प्रधान साधन होता है। ...क बिना जितनी भी उन्नति दीख पड़ता है यह सच्ची उन्नति नहीं, वह तो ...न्नति का आभास मात्र है।

अंग्रेजों की प्रशंसा इसी में है कि उन्होंने अपने जातीय चरित्र का निर्माण कर रखा है। उनके अन्य कार्यों की निन्दा हम भले ही करें, पर उनके जातीय चरित्र का आदर्श मानना ही पड़ेगा। पूर्वी राष्ट्रों में जापान की भी दशा ऐसी ही है। वह भी अपने चरित्र बल में प्रख्यात है। कितने ही विघ्नों तथा प्रतिकूल परिस्थितियों के होने पर भी जापान की उन्नति तथा भौतिक निर्माण इसी शील के कारण सम्पन्न हुआ। अतएव हमारा भी यह मुख्य ध्येय होना चाहिए कि हम अपने आदर्शों के अनुसार शील का निर्माण करें। भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के अभ्युदय का मुख्य सोपान शील का निर्माण है।

हमारी रोती तस्वीरें !

श्री श्यामबिहारी एम० ए०

❁ जीत किसकी ?

मैं सोकर उठा ही था, छज्जे पर टहलने लगा। "तुम्हें ले जाना पड़ेगा"—किसी ने ऊँचे स्वर में कहा। "नहीं, मैं नहीं ले जाऊँगा। मैं कुली नहीं हूँ।" किसी किशोर की आवाज कानों में पड़ी। आँख उठाकर देखा कि सामनेवाले मकान के नीचे रिक्शा खड़ा है। जिसमें एक एटैची और

कुछ बोलते

होलडोल है। नवयुवक रिक्शा चालक के पास ही बाबूजी भी खड़े हैं जिन्हें वह सबेरे २ स्टेशन से लाया है। बात तुरन्त समझ में आ गई। बाबूजी रिक्शावाले से सामान ऊपर ले चलने को कह रहे थे और वह दृढ़ता से इन्कार कर रहा था। बाबूजी के परिचय में इतना बताना पर्याप्त होगा कि वे किसी सरकारी दफ्तर के साधारण क्लर्क तो नहीं, किन्तु कुछ ऊँचे पद पर आसीन हैं। मतलब उनके नीचे कुछ कर्मचारी काम करते हैं, जिनपर हुक्म चलाने का अवसर उन्हें प्राप्त है। "अबे, नहीं चलेगा।" वे डपट कर बोले। "पैसे दीजिये मैं ले चलूँगा।" युवक ने कुछ दबी आवाज में कहा।

धीरे से कहा—'वह शीशे से खेलता होगा।' उसने सफाई दी—"भाई साहब! कलियुग है कलियुग!! आजकल जरा २ से बच्चे भी बदमाश हो गए हैं।"

मैंने सोचा क्या विचित्र बात है, मन में पाप अपने है और दोष दूसरों को। काश! वह औरत उस आइने में अपने मन के मैल को देख पाती।

❀ अधिकार किसका ?

कल ही अपने नगर की एक सच्ची घटना सुनी। एक नवयुवक अपनी प्रेमिका के साथ सूनसान पथ पर घूमने निकला। दो बदमाश पीछे हो लिए। बस्ती से कुछ दूर निकलने पर उन्होंने युवती को अपने कब्जे में कर लिया और युवक को मारपीट कर भगा दिया। युवती को गन्ने के खेत में लेजाकर दोनो ने अपनी वासना पूर्ति की। किसी ग्रामीण राही ने देख लिया। उसने साथी एकत्र किए और दोनो बदमाशों को मौके पर घेर लिया। अच्छी मरम्मत की और बाँधकर डाल दिया। प्रेमी युवक की सूचना पर पुलिस आई। अपराधी हिरासत में ले लिए गए। प्रेमी के बयान हुए। उसने कहा—मेरा इस युवती से प्रेम है। हम दोनो घूमने जा रहे थे।

मैं सोचने लगा—युवक एक तरफ तो युवती से प्रेम का दावा करता है और दूसरी ओर उसे स्वयं असहाय अवस्था में छोड़कर भाग खड़ा हुआ। क्या सच्चे प्रेम का तकाजा यह नहीं था कि वह बदमाशों से मुकाबला करता चाहे उसे जान से भी हाथ धोना पड़ता। जिस वस्तु की कोई रक्षा नहीं कर सकता उसे प्रेम करने के बहाने अपना कहने का हक क्या है?

इस अवसर पर मुझे एक और घटना याद आई। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, दिल्ली की एक शाखा में सहगान हो रहा था—'भारत है हिन्दुओं का, नहीं दूसरे किसी का।' उसी समय उधर से होकर एक बड़े राष्ट्रीय कहे जानेवाले अहिन्दु नेता जिनका नाम लेना ही अच्छा है, गुजरे। उन्होंने उक्त गीत सुना तो उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने बाद में गांधीजी को एक पत्र लिखकर उस प्रसंग का उल्लेख किया और गीत पर अपनी आपत्ति प्रगट की। गांधीजी ने छोटा सा उत्तर दिया 'भारत उसका है जो भारत से प्रेम करते हैं।' आज मुझे पूज्य गांधीजी का यह कथन अधूरा जान पड़ रहा है। सचमुच भारत उसका है, जो उससे प्रेम करते हैं और जिनमें उसकी रक्षा करने का भी सामर्थ्य है। जब हम गाते हैं—'भारत प्यारा देश हमारा' तो इसकी रक्षा का दायित्व भी हमारे ऊपर ही आ जाता है।

हाय री राजनीति !

सम्मेलन का समारोप था। आज प्रसाद के आकर्षण से रोज से ज्यादा भीड़ थी। आरती के बाद प्रसाद वितरण हुआ रंगीन थैलों में। जिन पर विचारक का नाम छपा था। मुझे आश्चर्य हुआ। प्रसाद में भी नाम की भावना! आलोचना के इस शब्द मेरे मुंह से निकले ही थे कि मुझे पता चला कि व सज्जन नाम के साथ २ प्रसाद बंटवाने वाले भी वहीं उपस्थित थे। मेरी बात की उन पर प्रतिक्रिया हुई। वे बोले "अपना २ विचार है। स्कूलों में कमरे बनवाकर लोग उन पर अपने नाम नहीं लिखवाते क्या? मैंने कहा— अधिकार तो बारबार ही बनवाते हैं। फिर अपने यहाँ तो गुप्त दान की अधिक महिमा है।' वे चुप हो गए, किन्तु उनका क्रोध विकट रूप धारण कर रहा था। स्वाभाविक भी था कारण मैंने सार्वजनिक रूप से उनकी आलोचना करने की भूल की थी। उस समय मैंने अपने कहे शब्दों को वापिस लेना अच्छा समझा। निदान मैंने कहा, 'माफ कीजिए, भाई साहब। मेरे से भूल हुई।' वह चुप ही रहे। मेरे शब्दों ने क्रोधाग्नि को शांत करने में जल का काम किया।

थोड़ी देर बाद मुझे ज्ञात हुआ कि चुनाव निकट हैं और उक्त सज्जन भावी प्रत्याशी बननेवाले हैं। आत्म-प्रचार के सुअवसर का उन्होंने केवल लाभ उठाया है। राजनीतिक मस्तिष्क ऐसी ही सूझ-बूझ वाला होता है।

मैं सोचने लगा राजनीति में धर्म का हस्तक्षेप सिद्धान्त-विरुद्ध है और धर्म में राजनीति का हस्तक्षेप राजनीतिक कौशल। सच तो यह है कि आज हमारे जीवन में राजनीति इतनी व्याप्त हो गई है जितना कभी धर्म व्याप्त था। आज हमारा जीवन धर्ममय नहीं राजनीतिमय हो गया है। जीवन में ही क्या मृत्यु में भी राजनीति का दखल है।

पुरानी अंग्रेजी कहावत है—प्रेम और युद्ध में सब बातें उचित हैं। अब प्रेम और युद्ध के साथ हमें तीसरी राजनीति और जोड़ देनी चाहिए।

जबतक अधिकार सत्ता के लिए कूटनीति का प्रयोग सहज और स्वाभाविक समझा जाता रहेगा तबतक युद्ध अनिवार्य रहेंगे। न्याय और समाज के मूल्य यदि शक्ति-उद्देश्य के अधीन रखे जायेंगे तो वन-जंगलों के नियम से ऊपर नहीं उठा जा सकेगा। —डा० राधाकृष्णन

लाख होवें हार लेकिन

श्री सुधेश एम० ए०

कौन कहता है मिलेगी अन्त मे मुझको पराजय ?

कौन कहता मौन वाणी एक दिन हो जायगी ?
और तारे तोडने की चाह भी सो जायगी ?
क्या उमगों की जवानी भी कभी ढल जायगी ?
जिन्दगी की यह रवानी भी कभी गल जायगी ?
एक भी अरमान वाकी फिर जवानी का कहा क्षय !

गीत मेरे गूँजते है इस धरा से आसमा तक,
स्वर मुखर, उन्मत्त कण-कण है मधुर मौसम खिजाँ तक
कण्ठ की चीत्कार ने पल - पल हँसी धरती रुला दी,
एक ही हुकार ने पत्थर वनी दुनिया हिला दी,
गा रहा हूँ खोलकर दिल, फिर न मिटने का मुझे भय !

जव तलक तारों-भरा यह आसमाँ है मुसकराता,
मद भरी मेरी जवानी को कभी ढलना न आता,
चाँद आता है नई मस्ती लिए हर रोज दर पर,
नव उषा चिर यौवना भी गीत गाती है मधुरतर,
है अमर मेरी जवानी, मृत्यु की निश्चित पराजय !

जो कमर कसकर चला सीधा सदा अपनी डगर पर,
आँधियों के वीच खेला और जूझा जिन्दगी भर,
मरण के भी सामने जिसने कि मुह मोडा नहीं,
भँवर की गहराइयों में राह को छोडा नहीं,
लाख होवें हार लेकिन मानता अपनी सदा जय !

कुछ अविस्मरणीय प्रसंग

श्री सत्यदेव विद्यालंकार

अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी के पहले दर्शन मैंने जयपुर में किये थे। मैं राजस्थान की लम्बी यात्रा से उदयपुर, अजमेर, जयपुर और जोधपुर होकर दिल्ली लौट रहा था। जयपुर में दो-एक दिन ही ठहरा था और केवल १५ या २० मिनट के लिए आचार्य श्री के दर्शन का लाभ प्राप्त किया था। तभी कोई विशेष बातचीत भी नहीं हो सकी थी। वह दर्शन केवल प्रणाम और अभिवादन तक सीमित रहे थे। यह लगभग ११ वर्ष पहले की घटना है।

जैन दर्शन के प्रति मेरा झुकाव एक आकस्मिक घटना ही समझी जानी चाहिये। अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभा के प्रधान मन्त्री लाला परसादीलालजी पाटनी लगभग १५-१८ वर्ष पहिले 'जाति रहस्यम्' नाम की पुस्तक को छपवाने के लिए मुझसे परामर्श करने आये। उसके परिणाम-स्वरूप उनके साथ जो सम्पर्क हुआ, वह दिन-प्रतिदिन गहरा होता चला गया। 'महासभा' और 'जैन-समाज' की समस्याओं पर बातचीत करने के लिए वे मुझे प्रायः आ जाते। मैं कुछ स्वयं और कुछ पूज्य महात्मा भगवानदीनजी के परामर्श से उनका काम निकालता रहा, परन्तु मैंने अनुभव किया कि मुझे जैन धर्म जैन-दर्शन तथा जैन-समाज के सम्बन्ध में कुछ अधिक जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। जिससे ही मन्थ में पड़ गया। सम्भवतः 'अन्धों में काना राजा' की कहावत की तरह जैन समस्याओं के सम्बन्ध में मेरी सम्मति बहुत कुछ प्रमाण मानी जाने लगी और मैं महासभा के माध्यम से दिगम्बर जैन समाज में कुछ ऐसा घुलमिल गया कि मुझे जैन समझा जाने लग गया। मैंने भी ऐसा समझे जाने में कभी कोई आपत्ति नहीं की।

मुझे जैन-धर्म में ऐसी कोई आपत्ति भी दीख नहीं पड़ी जिससे मैं अपने को जैन समझे जाने में कभी कुछ बुरा मानता अपितु मुझे उसमें प्रसन्नता ही होती। जैन-समाज के साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से मैं सर्वथा अलिप्त था। इसी कारण आचार्य श्री के दर्शनों की मुझ पर एकाएक गहरी छाप लग गयी। मुनिश्री नगराजजी महाराज के भाषणों का मैंने १९५१ के जेल-प्रवास में बड़े मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया था। उन दिनों के संस्कार आचार्य

ो के दर्शन पाकर ताज़ा हो गये।

(२)

जयपुर से आचार्य श्री दिल्ली पधारे। दिल्ली में प्रवेश करने पर जिस उत्साह, उमंग और आशा से आचार्य श्री का अपने साथी साधु साध्वियों के साथ स्वागत किया गया, वह दिल्ली में किसी जैन आचार्य के अभिनन्दन का पहला ही प्रसंग था। नया बाजार में उसी दिन प्रातःकाल आचार्य श्री ने दिल्ली पधारने का अपना उद्देश्य स्पष्ट करते हुए जो शब्द कहे थे, वे मेरे हृदय पर आज भी वैसे ही अंकित हैं। यह मुझे बाद में पता चला कि आचार्यश्री जिस तेरापन्थी जैन सम्प्रदाय के सर्वमान्य आचार्य हैं, उसका विकास जैन समाज में एक सुधारक शाखा के रूप में हुआ है और अन्य जैन सम्प्रदायों की उसके प्रति वैसी ही विरोधी भावना है जैसी कि कभी आर्य-समाज के प्रति सामान्य हिन्दू जनता तथा सनातनधर्मी सम्प्रदायों की थी। लेकिन आचार्यश्री के उस दिन के प्रवचन में कोई संकीर्ण साम्प्रदायिक दृष्टिकोण बिल्कुल भी न था। 'तेरापन्थ' का अर्थ उन्होंने यह किया था कि यह पन्थ मेरा या किसी व्यक्ति विशेष का नहीं, किन्तु तेरा अर्थात् भगवान का है। इस प्रकार अपने सम्प्रदाय तथा अपनी स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए आचार्यश्री ने अणुव्रत आन्दोलन के सम्बन्ध में भी अपने विचार प्रकट किये।

(३)

मुझ पर उस पहिले ही प्रवचन का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि मैं एकाएक उनकी ओर खिंच गया। उन दिनों मैं 'अमर भारत' दैनिक का सम्पादक था। पत्र के मालिक प्रमुख सनातन धर्मी नेता गोस्वामी गणेशदत्तजी महाराज थे। उनकी दृष्टि विशाल और हृदय उदार होने पर भी उनके साथी उन सरीखी समभावना रखने-वाले नहीं थे। इसलिए जब मैंने आचार्यश्री के भाषण और विचारों को 'अमर भारत' में प्रमुखता प्रदान की, तब मेरे साथी कार्य-कर्ता कुछ प्रसन्न नहीं हुए। उन्होंने प्रकटमें कुछ न कहकर भी आपस में तरह तरह की चर्चा करनी प्रारम्भ कर दी, परन्तु मुझे

> *"पिछले कई वर्षों से अणुव्रत आन्दोलन के साथ मेरा परिचय रहा है। शुरुआत में जब कार्य थोड़ा बढ़ा था, मैंने इसका स्वागत किया, अपने विचार बतलाये। जो आज तक काम हुआ है, वह सराहनीय है। मैं चाहता हूं कि इसका काम देश के सभी वर्गों में फैले, जिससे सब इससे लाभान्वित हो सकें।"*
>
> —(डॉ०) राजेन्द्रप्रसाद

ऐसा लगा कि आचार्यश्री युगवाणी के प्रतीक हैं और उनका अणुव्रत आन्दोलन समय की एक बहुत बड़ी मांग है। उनके सम्पर्क में त्रस्त मानव को सुख शान्ति की आशापूर्ण किरण दीख पड़ती है। भारतीय जनता के ही नहीं किन्तु समस्त विश्व के मानव के योग-क्षेम के लिए उनका व्यक्तित्व प्रकाश-स्तम्भ बन सकता है। गांधीजी के निधन के बाद नैतिकता की जो दिव्य पुकार मन्द पड़ गयी थी

मैं था। मैंने प्रमुख रूप से अपने को निरन्तर लगाये रखा। इसी कारण मैं पत्रकार के अलावा प्रचारक तथा आन्दोलक भी था। परन्तु दिल्ली आने के बाद मैंने अपने प्रचारक तथा आन्दोलक रूप को कुछ स्थगित रखा था। आचार्यश्री के सम्पर्क और मिशन के लिए वह फिर उठ खड़ा हुआ और मैंने सहसा ही उसमें अपने को लगा दिया और मुझसे जो कुछ भी बना मैंने उसको सफल बनाने में उठा न रखा।

हम ऐसे युग में रह रहे हैं जब हमारा जीवात्मा सोया हुआ है। आत्म-बल का अकाल है और सुस्ती का राज है। हमारे कदम तेजी से भौतिकवाद की ओर झुकते चले जा रहे हैं। इस समय किसी भी ऐसे आन्दोलन का स्वागत हो सकता है जो आत्म-बल की ओर ले जानेवाला हो। इस समय हमारे देश में अणुव्रत आन्दोलन ही एक ऐसा आन्दोलन है जो इस कार्य को कर रहा है। यह काम ऐसा है कि इसको सब तरफ से बढ़ावा मिलना चाहिए।

—एस० राधाकृष्णन

वह उनको पाकर फिर कुछ ऊंची उठ सकती है। इसलिये मैंने अपने साथियों में चलनेवाली चर्चा की कुछ भी परवाह न कर 'अमर भारत' को आचार्यश्री के मिशन के प्रचार का प्रमुख साधन बना लिया।

(४)

अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भ-काल से ही मैं केवल कोरा पत्रकार ही नहीं रहा हूँ। कांग्रेस के कार्य में जीवित रस लेने के कारण उसके आन्दोलन और प्रचार

अणुव्रत आन्दोलन का वह शैशव काल था। आचार्यश्री की मर्यादाओं का पालन निस्सन्देह तेरापन्थ सम्प्रदाय के अनुसार साम्प्रदायिक है। केवल इसी कारण उनके उदार, गम्भीर और सामयिक विचारों को भी एकाएक लोग ग्रहण नहीं करते थे। उनको साम्प्रदायिक सन्देह एवं अविश्वास से देखा जाता था। राजस्थानियों, विशेषतः मारवाड़ियों और उनमें भी जैनियों के प्रति सामान्य भावना पूंजीपति होने

थी है। आचार्यश्री के दर्शन और प्रवचन के लिए उपस्थित होनेवालो में अधिकतर लोग मारवाड़ी ढग की पगडी पहने और महिलायें राजस्थानी वेश-भूषा धारण किये होती थीं। इस कारण आचार्यश्री के अणुव्रत आन्दोलन को पूजीपतियो का एक 'स्टट' कहकर उसकी उपेक्षा की गयी और आचार्यश्री को भी इसी प्रकार की सन्दिग्ध दृष्टि से देखा गया। विभिन्न जैन सम्प्रदायो का आपसी ईर्ष्या-द्वेष, कलह तथा सघर्ष भी गलतफहमी पैदा करने का एक बड़ा निमित्त बन गया। लेकिन मुझ पर ऐसी किसी बात का कोई असर नहीं पड़ सका। मैंने उस सारे विरोधी ववडर की कभी कोई कल्पना तक न की थी। मैं एकान्त भाव से और विशुद्ध भावना से आचार्यश्री के मिशन व आन्दोलन में वैसे ही लग गया, जैसे कि श्रीकृष्णने अर्जुन को 'निमित्तमात्र भव सव्यसाचिन्' कहकर उसको केवल निमित्त मात्र बन जाने को कहा था। अन्त में ऐसा भी अवसर आया, जबकि उस सारे विरोधी बवण्डर का मुख्य निशाना मुझे बना लिया गया। यहाँ तक कहा गया कि मैं तेरापन्थियों के हाथ बिक गया हूँ और उनका वेतनभोगी नौकर बन गया हू। इससे भी कहीं अधिक भयानक लोकापवाद के बाद भी मैं अपने काम में लगा रहा।

(५)

कुछ समय बाद आचार्य श्री ने दिल्ली में पहला अणुव्रत सम्मेलन करने का निश्चय किया। मुझे आदेश मिला कि मैं सम्मेलन के स्वागत मन्त्री का कार्य सम्पादन करू। सम्मेलन की तैयारियाँ प्रारम्भ कर दी गयीं। केवल आठ-दस दिन में अखिल भारतीय आधार पर सम्मेलन की तैयारियाँ कर लेना इतना आसान नहीं था। आन्दोलन के प्रति ऐसा कोई विशेष आकर्षण भी तब पैदा न हुआ था। उन दिनों की स्थिति का परिचय केवल इतने से मिल सकता है कि दिल्ली सरीखे शहर में सम्मेलन के लिए कोई उपयुक्त स्वागताध्यक्ष तक मिलना सम्भव न हो सका। ठीक सम्मेलन के दिन सवेरे मुझे आदेश हुआ कि स्वागताध्यक्ष का कार्य भी मुझे ही निभाना होगा। सार्वजनिक आन्दोलन के लिए

"अणुव्रत आन्दोलन में कितना अच्छा काम हो रहा है! मैंने विचारा कि इस काम की जितनी तरक्की हो, उतना ही अच्छा है। इसलिये मैं आशा करता हू कि अणुव्रत का जो प्रचार हो रहा है, उसमें पूरी तरह से सफलता प्राप्त हो।"

—जवाहरलाल नेहरू

मरी संकीर्ण दृष्टि से देखा गया। उपेक्षा की गयी। कुछ क्षेत्रों में उपहास भी किया गया। विरोध जहाँ जैसा भी सम्भव था वैसा खड़ा किया गया। मैंने राष्ट्रपति भवन से लौट अपनी असफलता तथा निराशा का किस्सा साथियों को कह सुनाया, किन्तु यह भी आग्रहपूर्वक कह दिया कि सब को निराश न होकर सम्मेलन को सफल बनाने में लगे ही रहना चाहिये। डा० ऐनी बेसेण्ट का यह अनुभवपूर्ण विरोध हैं। हम लोग पूरे विश्वास और निष्ठा के साथ अपने कार्य में लगे रहे और सम्मेलन को जो सफलता मिली, वह हम सबकी आशा तथा कल्पना से कहीं अधिक थी।

दिल्लीमें तो एक क्रान्ति की सी लहर पैदा हो गयी और उसकी प्रतिध्वनि देश में सर्वत्र समाचार पत्रों के समाचारों, टिप्पणियों और मुख्य लेखों में सुन पड़ी। जो आशा और विश्वास अणुव्रत आन्दोलन के प्रति प्रकट किया गया वह अचरज में

"वाह्य पदार्थों की भोगलिप्सा ने ससार में नीच कर्मा और असत्य भावों की प्रवृत्ति फैला दी है। हमारा देश भी उसी प्रवृत्ति में फँसा है। थोडे से भी पुरुप और स्त्रियों का समूह जो अपने दैनिक कार्य में सत्य का व्रत पालते हैं, प्रकाश की एक ज्योति है। यह (आन्दोलन की) ज्योति दिन-दिन वढती जाय और सत्य के सौन्दर्य की ओर लोगों को आकर्षित करे—यह मेरी लालसा है।"

—पुरुषोत्तमदास टडन

पन भी मैंने अपने साथियों को सुना दिया कि किसी भी आन्दोलन को उपेक्षा, उपहास, निन्दा एवं विरोध की स्थितियों में से गुजरना ही पड़ना है और जिस आन्दोलन को इनमें से गुजरना नहीं पड़ता, वह समझना चाहिए कि उसमें कोई नवीनता, जीवन अथवा आकर्षण नहीं है और उसका सफल हो सकना सम्भव नहीं है। अणुव्रत अन्दोलन के सफल होने का प्रवल प्रमाण यही उपेक्षा, उपहास, निन्दा तथा डाल देनेवाला था। आचार्य श्री स्वयं भी उस पर चकित रह गए, क्योंकि उनको भी इतनी जल्दी अपने सन्देश के देश के कोने कोने में पहुँच जाने का ऐसा कोई भरोसा नहीं था। वर्धा के आचार्य श्री मशरूवाला तक ने 'हरिजन' पत्र में एक विस्तृत लेख में आन्दोलन के नैतिक महत्त्व को स्वीकार किया। कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास और राजधानी के अंग्रेजी के दैनिक पत्रों तक में बड़े विस्मय के साथ

यह किया गया था कि इस बुरी तरह व्यापे हुए भ्रष्टाचार तथा अनैतिकता को कुछ मुट्ठीभर, केवल नामलेवाले, साधनहीन साधु कैसे दूर कर सकेंगे? परन्तु जब उन्होंने यह सुना कि सम्मेलन में एकदिन पाँच-छः सौ व्यापारियों ने भ्रष्टाचार, मिलावट तथा मिथ्या-व्यवहारके विरुद्ध शपथ ग्रहण की है तब उन्होंने भी अणुव्रत आन्दोलन के नैतिक पक्ष को स्वीकार किया। इतना ही नहीं, विदेशों तक में अणुव्रत आन्दोलन की ध्वनि गूँज उठी।

में क्रिमिनल्स' कहा जा सकता है। गौतम बुद्ध, महावीर और शंकर ने हमारे देश में इन नैतिक क्रियाओं का सूत्रपात करके जो परम्परा प्रारम्भ की थी, उसको जैन साधु और आचार्य विज्ञान के इस युग में भी निभाते चले जाते हैं। यह परम्परा केवल एक रूढ़ि बन जाने पर भी सर्वथा अर्थशून्य नहीं हुई है। यह सत्य प्रमाण साधक विनोबा और आचार्य प्रवर श्रमण-शिरोमणि श्री तुलसी ने अपने नैतिक परिश्रम से सिद्ध कर दिया है। स्वतन

'जगत के सब मनीषी नेताओं की राय है कि आन्तरिक उन्नति के बिना मानव-समाज को आत्मिक मानसिक और भौतिक दुःखों से मुक्ति नहीं मिल सकती। इसलिये प्रत्येक सहृदय मानव को—खासकर भारत-सन्तान को—इस अणुव्रत आन्दोलन से सहानुभूतिशील होना चाहिये।"

—सुनीतिकुमार चटर्जी

इंग्लैंड और अमरीका के पत्रों में भी उसका उल्लेख किया गया।

यह थी अणुव्रत आन्दोलन की नैतिक शक्ति और उसके प्रवर्तक आचार्यश्री की अनुपम साधना जिसके बल पर यह आन्दोलन प्रारम्भ किया गया था और जिसके सहारे यह क्षितिज के इस छोरसे उस छोर तक पहुँच गया।

( )

आचार्यश्री की पिछले सात वर्षों की पैदल भारत यात्रा को राजनीतिक परिभाषा

और अणुव्रत हमारे देश के दो महान् जीवित एवं नैतिक आन्दोलन हैं। दोनों का लक्ष्य देश के सामाजिक जीवन में एक महान् क्रान्ति लाना है। दोनों का मूलाधार है अहिंसा और अपरिग्रह। दोनों की एक ही वाणी है कि "पेट तो भरो परन्तु पेटी मत भरो।" दोनों का एक ही सन्देश है कि अनैतिकता के मार्ग का अवलम्बन न करो। दोनों किसी भी प्रकार के आग्रह और जबरदस्ती तथा कानून आदि के सहारे के बिना अपनी ही प्रभा

स्फूर्ति पर निर्भर है और दोनों ही अव्याहत गति से सफलता की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

(८)

पिछले सात वर्षों में आचार्यश्री ने अपनी पैदल यात्रा में पंजाब, राजस्थान, मध्यभारत, खानदेश, बम्बई तथा महाराष्ट्र आदि को झकझोर डाला है। जहाँ कहीं भी वे गये हैं वहाँ एक विजयी सेनापति की तरह आपका स्वागत एवं अभिनन्दन हुआ है। 'विजयी सेनापति' शब्दों का प्रयोग भी हम राजनीतिक परिभाषा में

एवं सांस्कृतिक आन्दोलनों के प्रति आकर्षण दिन प्रतिदिन घटता जा रहा है। संस्कृति सिमटकर नाच गान की रंगरेलियों में परिणत होती जा रही है। उसमें गत दिसम्बर मास में आचार्यश्री तीसरी बार पधारे। केवल ४० दिन ही रह सके। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कि राजधानी में अणुव्रत आन्दोलन की आंधी ही आ गयी हो।

राष्ट्रपति भवन, मन्त्रियों की कोठियां, संसत्सदस्यों के निवासस्थान, राजघाट की समाधि, छोटे-बड़े विद्यालय, बन्दीगृह,

"जनता के नैतिक उत्थान के लिये आप जिस ढंग से कार्य करने का प्रयत्न कर रहे हैं, उसमें मुझे बड़ी अभिरुचि हुई। आपके कार्यका अच्छा प्रभाव पड रहा है—यह जानकर मुझे हर्ष हुआ। मुझे आशा है कि शपथ ग्रहण करनेवाले व्यक्ति अपनी प्रतिज्ञाओं को निभाने में समर्थ होंगे।"

—श्रीप्रकाश

कर रहे हैं। बम्बई भारत का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र है। वहां व्यापार-व्यवसाय के सिवा दूसरी कोई बात सहज में लोग नहीं सुनते। वहां भी आचार्यश्री की वाणी सुनी गयी। पूना दक्षिण का प्रमुख बुद्धिवादी सांस्कृतिक केन्द्र है। वहां के विद्वान पंडित सहज में अपने यहां किसी की दाल नहीं गलने देते, लेकिन वहां भी आचार्यश्री का सन्देश सुना गया। राजधानी दिल्ली कूटनीतिक हलचलों का केन्द्र बनती जा रही है। उसमें नैतिक

व्यापारी केन्द्र, छोटे बड़े सभास्थल, हरिजन अभिभावक संघ, दिल्ली सचिवालय, अनुसन्धानशाला इत्यादि में से कोई स्थान ऐसा नहीं बचा जहां बड़ी श्रद्धा, तत्परता और तन्मयता के साथ आचार्यश्री का सन्देश न सुना गया। राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री, अन्य मन्त्री, छोटे बड़े शासकीय अधिकारी, राजनीतिक दलों के नेता, देश-विदेश के विद्वान, राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ, पत्रकार, यात्री, जिज्ञासु तथा मुमुक्षु बड़ी उत्सुकता से आचार्यश्री की सेवा में उपस्थित होते

और कुछ न कुछ लेकर वापस लौटते। जितने सांस्कृतिक एवं नैतिक आयोजन इन ४ दिनों में आचार्यश्री की उपस्थिति का लाभ उठाकर किये गये उतने पहले कभी भी किसी भी विशिष्ट व्यक्ति के लिए इतने कम समयमें नहीं हुए। इन आयोजनों, प्रवचनों तथा मुलाकातों के रूप में जिस ज्ञानयज्ञ की लहरें इन दिनों राजधानी में प्रवाहित हुईं उनसे दिल्लीवासियों ने ऐसा अनुभव किया जैसे कि गंगा और यमुना दोनों उनके घरों में बह रही हों। नैतिकता और पवित्रता का वातावरण चारों ओर फैल गया।

(९)

सात वर्ष पहले के दिनों की यादके दिमागके साथ जब मैं तुलना करता हूँ तब आनन्द विभोर हो जाता हूँ और सोचता हूँ कि एक ही विशिष्ट व्यक्ति की साधना ने क्या चमत्कार कर दिखाया। विश्वास, निष्ठा और श्रद्धा के साथ प्रारम्भ किया गया कोई आन्दोलन सफल हुए बिना न रह सकता। अणु-आयुधों से त्रस्त मानव के लिए अणुव्रत उस ढाल का काम दे सकते हैं जिसपर गीता की यह उक्ति सोलह आने चरितार्थ होती है कि—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयम्
अक्लेद्योऽशोष्य एव च।

भारत आचार्यश्री के शब्दों में कृषि प्रधान नहीं किन्तु ऋषि-प्रधान देश है। अमर ऋषिवाणी के प्रतिनिधि आचार्यश्री उसकी पुकार हम सबके कानों तक पहुँचा रहे हैं और अपने देश के आत्म-जागरण के इस सन्देश को विश्व के कोने-कोने में पहुँचाकर उसको अणुयुग के आतंक से स्वाधीन करने के लिए सचेष्ट हैं।

हम सब भारतीयों के हृदय से एक ही शब्द निकलने चाहिये और वे हैं, 'एवमस्तु तथास्तु'।

●

सक्रियता का दूसरा नाम जीवन है और मृत्यु का पहला नाम है अक्रियता। जीवन और मृत्यु एक ही तस्वीर के दो पहलू हैं। जीवन और क्रियाशीलता की विशेषता है—स्पन्दन, निरन्तर स्पन्दन, अबाध्य स्पन्दन।

जड़ता और मृत्यु की निशानी है—निस्पन्दता, शून्यता और अनन्त मूक।

आज जबकि सभ्य और उन्नत राष्ट्र मानवताके रक्षक न होकर, हिंसक अस्त्रों का निर्माण करके दूसरो के लिये तथा स्वय के लिये खतरनाक समस्या बने हुए हैं। तब कितनी आवश्यकता है अहिंसा की।

मानव-विकास और अहिंसा

श्री भगवानदास केला

मनुष्यमे परिवर्तनकी परम्परा—

मनुष्य ने अपनी शारीरिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए समय समय पर जुदा जुदा ढग अपनाये हैं। उसने जीवन-निर्वाह के लिए क्रमश औजारों का उपयोग किया और पशु-पालन, खेती, उद्योग धन्धे और व्यापार अपनाया। वह सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और राजनैतिक व्यवस्थाओं के क्या-क्या प्रयोग या अनुभव करके अपनी वर्तमान अवस्था को प्राप्त हुआ है—इन बातों के बारे मे न जाकर हमें यहाँ यही कहना है कि मनुष्य निरन्तर अपने जीवनमें परिवर्तन करता रहा है। प्रगति करना उसका स्वभाव ही है। यह उसके लिए अनिवार्य है। ऐसा किये बिना वह रह नहीं सकता। दूसरे जानवरों में सैकड़ों या हजारों वर्षो मे कोई परिवर्तन नहीं हुआ और अगर कभी विशेष कारणो से कुछ होता भी है तो बहुत कम। इस प्रकार रामायण-काल की गाय, बैल, बकरी, घोड़ा, कबूतर, मोर आदि का जो खान-पान, उठने-बैठने, आराम करने का ढग था, वही आज के इन पशु-पक्षियों का है। परन्तु मनुष्य की यह बात नहीं, इतना स्पष्ट ही है।

मनुष्य की बुद्धि—प्राय अनुसधान करनेवालों का मत है कि एक समय ऐसा भी रहा है—यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वह समय अबसे कितने लाख वर्ष पहले रहा है—जब आदमी पशुओं की तरह जीवन व्यतीत करता था, वह भी एक पशु ही था। वह नग्न अवस्था मे कन्दराओं या गुफाओं में या पेड़ों पर तथा उनकी छाया में रहता था और कुद-रती तौर पर पैदा होनेवाले कन्द, मूल, फल या पत्ते आदि या छोटे कमजोर जानवर खाता था। उसे अपने भोजनके लिए दूसरे पशुओं से लड़ना-झगड़ना पड़ता था। इस अवस्था में रहने के बाद मनुष्य के जीवन ने नया मोड़ लिया, उसमें बुद्धि का विकास हुआ।

यों एक प्रकार की बुद्धि जानवरो में भी होती है, जिसे सहज ज्ञान, पशु-बुद्धि (इन्सटिन्क्ट) कहते हैं, परन्तु उनका यह सहज ज्ञान जितना पहले था, हमारो या

लाखों वर्ष बाद भी उतना ही रहा इसलिए उनके जीवन या रहन सहन आदि में कोई विशेष अन्तर नहीं आया सिवाय उसके जो मनुष्य द्वारा उनमें लाया गया है। इसके विपरीत, मनुष्य की बुद्धि का विकास और वृद्धि होती रहती है। अतः जबसे भी मनुष्य की बुद्धि का विकास आरम्भ हुआ वह उत्तरोत्तर बढ़ती रही है और इसीलिए आदमी धीरे-धीरे पशुओं को अपने वश में करने में सफल होता रहा है। वह बड़े बड़े जंगली भयानक और विशालकाय जानवरों पर विजय पाता रहा है। इसके अतिरिक्त मनुष्य प्रकृति पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित करने में आगे बढ़ता रहा है। उसने जमीन समुद्र हवा और आकाश आदि पर विजय प्राप्त की है भाप, बिजली और अणुशक्ति का उपयोग किया है और करता जा रहा है।

बुद्धिके उपयोगसे सुखकी वृद्धि— मनुष्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपनी बुद्धि का उपयोग करता रहा है। इससे उसका जीवन पहले की अपेक्षा बहुत बाधा-रहित या सुविधापूर्ण हो गया है और होता जा रहा है। उसकी अनेक कठिनाइयां दूर हो गयी हैं अथवा काफी कम हो गई हैं। अपनी आवश्यकता पूर्ति के जिन कामों के लिए पहले उसे बहुत मरना-खपना पड़ता था और जो फिर भी विशेष संतोषप्रद नहीं होते थे, वे अब आसानी से बहुत थोड़ी मेहनत और परेशानी से बहुत जल्दी ही हो जाते हैं। आदमी को बहुत फुरसत मिलने लग गयी है। इस प्रकार यदि आदमी अपनी वर्तमान दशा की बहुत पुराने जमाने की हालत से तुलना करे तो अवश्य ही वह पहले की दशा को अपेक्षाकृत जंगलीपन जैसा कहेगा और अब बहुत सभ्य, उन्नत होनेका अनुभव करेगा। इसके साथ ही उसे अपने-आपको पहले की अपेक्षा बहुत सुखी मानना होता है। आदमी सोचता है कि सभ्यता वृद्धि हो रही है और उसके साथ मनुष्य का सुख भी बढ़ता जा रहा है।

स्मरण रहे कि सुख दुख एक काल्पनिक या मनोवैज्ञानिक विषय है। बहुतसे आदमी शारीरिक कष्ट या असुविधा का दुःख भोगते होते हुए भी कुछ दुःख नहीं मानते या वैसी ही स्थिति के दूसरे आदमियों की अपेक्षा बहुत कम दुःख मानते हैं। इसके विपरीत, अनेक आदमी मामूली-सी बात पर भी अपने को बहुत दुःखी अनुभव किया करते हैं। हम यहाँ यह सूक्ष्म विचार न करके सुख-दुःख की स्थूल दृष्टि ही ले रहे हैं। अस्तु, यह प्रतीत होता है कि अब आदमी को अपने रोजमर्रा के व्यवहार या दैनिक जीवन में पहले की भाँति कम कष्ट या मेहनत-मशक्कत करना नहीं पड़ता और

...अपेक्षाकृत बहुत सुखमय जीवन व्यतीत ...ता है।

दूसरा पहलू—परन्तु यह पूर्ण सत्य नहीं है। हम नित्य देखते है कि हमारे अनेक भाई बहिनों को अपनी साधारण बुनियादी जरूरतें पूरी करने के लिए दिन-रात पसीना बहाना पड़ता है, फिरभी उन्हें अपना गुजारा करने के लिए काफी भोजन-वस्त्र नहीं मिल पाता, फिर, दूसरी ...र्फों का तो जिक्र ही क्या। अनेक स्थानो में बेकारी, बीमारी, नीरसता और अज्ञान का साम्राज्य है। इसका कारण हमारी ...र्पित व्यवस्था है—वह चाहे समाज व्यवस्था हो, अर्थ-व्यवस्था हो या राज्य-व्यवस्था हो। यदि ससार की यह व्यवस्था सुचारु रूप से सचालित हो तो साधारणतया मनुष्य के उपर्युक्त कष्ट न रहें। मनुष्य ने अपनी सभ्यता में इतनी प्रगति करली है कि यदि वह अपनी बुद्धि का सदुपयोग करे, सब आदमी मिलजुल कर सद्भाव, सहयोग और प्रेम से रहें तो उनकी जीवन-यात्रा अच्छी तरह हो सकती है। पर ऐसा नहीं हो रहा है।

आत्म-ज्ञान की आवश्यकता—

इससे स्पष्ट है कि आदमी अपनी बुद्धि का सदुपयोग नहीं कर रहा है। वह अपनी विद्या को अनावश्यक विवाद, तर्क-वितर्क बहस मुबाहसे और लड़ाई-झगड़े में लगाता है। वह अपने धन से अहङ्कार, अभिमान, घमड, विलासिता का शिकार होता है। वह अपनी शक्ति को सेवा और परोपकार में न लगाकर दूसरों को सताने, मारने-काटने में लगाता है। हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि ऊँची और दीर्घकालीन सभ्यता का दम भरनेवाले, अनेक धर्म ग्रन्थों, शास्त्रों और दर्शनों की विरासत रखनेवाले विद्वान अपना जीवन कैसा हीन और निरुपयोगी बनाये हैं। सभ्य और उन्नत राष्ट्र मानवता के रक्षक न होकर, हिंसक अस्त्रों का निर्माण करके दूसरों के लिए तथा स्वय अपने लिए खतरनाक समस्या बने हुए हैं। अनेक शक्तियां रचनात्मक या सृजनात्मक कामों में न लगकर विध्वसक और विनाशात्मक कामों मे लग रही हैं।

बात यह है कि बुद्धि के साथ आत्म-ज्ञान अवश्य होना चाहिए। आत्म ज्ञान से

हम पशु बल लेकर तो अवतीर्ण ही हुए थे, पर हमारा मानव अवतार इसलिए हुआ कि हमारे अन्तर में जो ईश्वर ता है, उसका साक्षात्कार हम कर सकें। यह मनुष्य का विशेषाधिकार है र यही इसके और पशु-सृष्टि के बीच अन्तर है।

—महात्मा गाधी

आदमी को आत्मा की व्यापकता का बोध होता है और वह अपने और पराये के भेद भाव से ऊपर उठ कर समाज के व्यापक हित में लगता है। विनोबा ने इस बात को समझाते हुए कहा है—'अगर मेरे चित्त में अशांति है तो वह मेरी अशांति है और आपके दिल में अशान्ति है, तो वह भी मेरी अशान्ति है। यह व्यापक सम्बन्ध जब ध्यान में आयेगा तभी आत्मा का दर्शन होगा। हरएक के सुख-दुःख का मेरे साथ सम्बन्ध है और हरएक की मानसिक शांति अशान्ति मेरी ही शांति-अशान्ति है। मैं दूसरे को अपने से भिन्न समझूंगा तो मैं गलत समझूंगा। यहाँ जो कुछ है वह सब एक ही वस्तु है चाहे उसका नाम "मैं" हो "तुम" हो या "वह" हो।'

मनुष्य मानवता प्राप्त करे—मनुष्य ने ज्ञान विज्ञान से सब कुछ नहीं तो बहुत कुछ प्राप्त करने की कोशिश की और उसमें उसे कुछ सफलता भी मिली। पर आत्म ज्ञान की कमी के कारण उसने अपने आपको प्राप्त न किया; मानवता या इन्सानियत हासिल करने में पिछड़ा रहा। जिन लोगों का संसार में प्रभुत्व है जो अपनी धाक जमा रहे हैं वे चाहे जैसे शिक्षित गुणवान धन्य सम्पन्न और प्रभावशाली समझे जाते हों उनमें उन गुणों की कमी है जो मनुष्य को अच्छा मनुष्य बनाते हैं, उसे मनुष्यत्व प्रदान करते हैं। सच है कि जिस तरह घोड़े का गुण उसकी तेज चाल है, गाय का गुण उसके दूध का परिमाण है इसी तरह मनुष्यत्व की माप के लिए देखना होगा कि उसमें मानवता कितनी है उसमें बन्धुत्व या भाई-चारे की भावना कितनी है वह दूसरों को दुखी देखकर कितना दुःख मानता है और दूसरों को सुखी देखकर उसका हृदय कितना हर्षित हो जाता है पिघल जाता है और उनके दुःख को दूर करने के लिए वह कितना कष्ट उठाने के लिए तैयार रहता है उनकी रक्षा करने उन्हें सुख पहुँचाने के लिए वह अपनी जान जोखम में डालने के लिए कितना उत्सुक रहता है।

श्री रामचरण महेन्द्र के एक अभिन्न मित्र ने उनसे कहा था—"प्रिय तुम इस रूप में तो मेरा सम्मान करते हो कि मैं धनी हूँ लेखक हूँ पंडित हूँ अच्छा अध्यापक हूँ कलाकार भी हूँ किन्तु क्या तुमने कभी यह ज्ञात करने की चिन्ता की है कि मैं मनुष्य भी हूँ अथवा नहीं। क्योंकि यदि मैं मनुष्य हूँ तो सब कुछ हूँ और यदि 'मनुष्य' नहीं हूँ तो मिट्टी का ढेलामात्र हूँ। अन्तर केवल यही है कि मशीन की भांति मैं बोलता-चालता तथा नाना प्रकार की क्रियाएं करता हूँ और वह मिट्टी का ढेला निश्चल रह

है।' ['दैवी सम्पदाएँ']

मानवता का मूल अहिंसा—

मानवता के अन्तर्गत जिन जिन गुणों का समावेश होता है, उनकी कोई खास सूची नहीं बनायी जा सकती। एक गुण का दूसरे गुणों से सम्बन्ध होता है, यहाँ तक कि एक गुण का समावेश दूसरे में हो सकता है। इस प्रकार यह स्वाभाविक है कि विविध विचारक इन गुणों की अलग अलग ढंग से गणना करें, कोई किसी एक को विशेष महत्त्व दे और दूसरा उसे गौण समझे या स्वतन्त्र गणना योग्य ही न माने। हम देखते हैं कि किसी विचारक या धर्म-प्रवर्तक ने किन्हीं खास बातों को मानव-धर्म का लक्षण माना, दूसराने अपनी बातोंको। इस प्रकार विविध महानुभाव मनुष्य को तरह-तरह के बातोंका आचरण करने का परामर्श प्रदान करते रहे हैं। आधुनिक युग में गाँधीजी ने ग्यारह व्रतों का पालन आवश्यक ठहराया है—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शरीर-श्रम, अस्वाद, निर्भयता, सर्वधर्म समभाव, स्वदेशी, स्पर्शभावना (सामाजिक समानता)। श्री विनोबा ने इनमें नम्रता और दृढ़ता को और जोड़ दिया है।

इस विषय में एक खास बात जो हमारा ध्यान आकर्षित करती है, वह यह है कि प्राय सभी आचार्यों या

कर्म से मनुष्य का कभी भी पतन नहीं होता। निःस्वार्थ कर्म नारायण की पूजा है। तत्त्वज्ञानी की दृष्टि से उच्चतम तथा कर्मयोग के दृष्टिकोण से कोई भी कर्म क्षुद्र नहीं है। ठीक अर्थों में उचित मानसिक दृष्टिकोण से किये जानेवाले काम—यहाँतक कि झाड़ू देने का काम भी योग ही है। एक मेहतर भी सेवा के द्वारा अपने निजी जीवन में रहते हुए ईश्वर-साक्षात्कार कर सकता है। हम में ज्ञान के सभी पदार्थ विद्यमान हैं। हमारे अन्दर शक्ति और ज्ञान का एक बड़ा दीपक है। इसकी ज्योति को प्रज्वलित करने की आवश्यकता है। अब जाग पड़ें।

धर्माधिकारियों और नीतिकारों ने मनुष्य के लिए अहिंसा और सत्य को मुख्य माना है और इन गुणों को अपनी-अपनी सूचीके आरम्भ में ही स्थान दिया है। इन दोनों गुणों का भी परस्पर बहुत सम्बन्ध है। गाँधीजी ने सत्य को साध्य और अहिंसा को उसका साधन माना है। अस्तु, उन्होंने अहिंसा को जीवन-धर्म कहा है। हम भी मानवता का मूल अथवा प्रधान गुण अहिंसा को ही समझकर उसका चिन्तन करते हैं।

['जीवन धर्म अहिंसा' नामक नयी पुस्तक से जो शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली है।

[१५ अक्टूबर '५७

किशोर अजी बिलकुल ले आया, पर महेश भैया को तो सभालिये।

अलका (आग्नेय नेत्रों से महेश को घूरकर) क्यों जी? क्या मतलब है—कपड़े बदलियेगा कि नहीं?

महेश (कुछ सकोच से) लेकिन मेरी सफेद पैंट और कमीज़ तो लाण्ड्री गई है।

किशोर (शरारत से) तो आज भाभी की साड़ी पहनकर ही चलिये।

अलका क्योंजी? अगर बड़े बाबू की विदाई की दावत हो—या किसी यार की पार्टी हो – तो बढ़िया, धुले धुलाये कपड़े, तुम्हारे पास क्या जादू मतर से आ जाते हैं।

महेश (डरता डरता) बात यह है अलका! कि ।

अलका (बिगड़कर) बात मैं खूब समझती हू। किशू की सारी मेहनत बेकार करने की कसम ले ली है आपने। बेचारा इतनी धूप में आपकी छुट्टी की अर्जी देने सेक्रेटेरियट गया—भागाभाग पास लाया—और आप ।

महेश पर इतनी धूप में ।

अलका, क्यों जी? क्या धूप हम-लोगों को नहीं लगेगी? तुम्हारी बहाने बाज़ी मैं खूब समझती हूँ। फ्लू का बहाना करके छुट्टी ले, बेचारा किशू दुनिया भर अहसान मोल लेकर पास लाया और तुम फिर उसी बहानेबाजी पर उतर आये।

महेश मई 'नून शो' में बड़ी तकलीफ होती है।

किशोर मैंने तो पहले ही कहा था कि पास 'नून शो' का ही मिल सकता है।

अलका तो घर पर कौन सा आराम मिलेगा—सिनेमाघर में तो फिर भी कूलर लगा रहता है। तीन घन्टे चैन से कट जायेंगे।

महेश (निरुत्तर होकर) वह तो ठीक है पर मेरी पैंट कमीज ।

अलका (बीच में ही) एक धुली पैंट और एक कमीज मेरी ट्रक में रक्खी है—तुम्हारे कपड़ों की पहेलियां इतनी बार उठी हैं कि मैं पहले से ही उनका हल ढूढ रखती हू।

महेश (जाते हुए) घर से ज्यादा आराम तो मुझे दफ्तर में मिलता है।

किशोर (घड़ी देखकर) जरा जल्दी आना महेश भैया! ठीक बारह बजे हैं।

अलका किस दर्जे का पास लाये हो किशू!

किशोर बालकॅनी का।

अलका कितने आदमियों का?

किशोर शायद चार आदमियों का है।

अलका : शायद !

किशोर : कीजिये स्कोर हुआ जाता है। (पेट को दोनों हाथों से दबाकर) मरे !

अलका : क्यों जी—क्या हुआ ?

किशोर : (जल्दी जल्दी अपनी तलाशी लेकर) वह पास कहाँ गया ?

अलका : कहीं गिर तो नहीं गया, किशू !

किशोर : भला गिरेगा कहाँ ? (कुछ सोचकर) ओह ! याद आया—खाना खाकर पैंट बदली थी—उसी की जेब में रह गया होगा। देखिये, ऐसा कीजिये आप महेश भैया को लेकर 'शो' पर आइये—मैं घर से पास लेकर सीधा वहीं आऊँगा।

[अलका स्वीकृति सूचक सिर हिलाती है—किशोर तेजी से बाहर चला जाता है]

अलका : (जोर से) क्यों जी कपड़े बदलकर तो नहीं गये। मैंने कहा हाथमुँह धोने के बाद चले गये !

[महेश का कमीज के बटन बन्द करते हुए प्रवेश]

महेश : तुम तो सब घोड़े पर सवार रहती हो हमेशा। अरे ! वह किशोर कहाँ गया ?

अलका : घर गया है पास लेने। फिर सीधे 'शो' पर जायेगा। आपसे कम मुस्तैद नहीं है आपका दोस्त।

महेश : (मुन्नी का हाथ पकड़कर) अच्छा अच्छा चलो जल्दी नहीं तो फिर मुझे होगी खराबोगी।

[महेश, अलका, मुन्नी बाहर वाले दरवाज़े की ओर बढ़ते हैं—तभी नेपथ्य से आवाज़ आती है—महेश बाबू ! महेश बाबू !]

महेश : (कुछ घबराकर) अरे या कौन मरदूद आ मरा।

अलका : होगा कोई घर निठल्ला, जिसे इस दुपहरी में भी चैन नहीं है।

महेश : आवाज़ तो जानी-पहचानी मालूम पड़ती है। ठहरो, देखता हूँ। (खिड़की के पास जाकर बाहर झाँकता है—घबराकर) भगवान बचाये यह तो मेरे विभाग के बड़े बाबू हैं।

अलका : बड़े बाबू हैं !

महेश : कहीं साहब ने तो नहीं भेजा है ?

अलका : शायद क्यों भेजेंगे !

महेश : शायद मेरी छुट्टी की सचाई जाँचने भेजा हो।

अलका : तो अब क्या होगा ?

महेश : मुन्नी बेटी—तुम बाहर जाओ और बड़े बाबू से कह दो जाकर कि पापा डाक्टर के यहाँ गये हैं।

अलका : क्या कहोगी मुन्नी ?

मुन्नी : पापा डाक्टर के यहाँ गये हैं।

महेश . शाबाश, जाओ जल्दी !

[मुन्नी का बाहर प्रस्थान]

महेश (कुर्सी पर बैठकर) जी चाहता है बड़े बाबू को गोली मार दूँ।

[बड़े बाबू का मुन्नी के साथ हँसते हुए प्रवेश]

बड़े बाबू किसको गोली मार रहे हो महेश बाबू। अब तबियत तो

महेश (स्तम्भित-सा) बड़े बाबू आप।

बड़े बाबू मुन्नी बड़ी समझदार बच्ची है महेश बाबू। बोली, हमारे पापा कहते हैं कि वे डाक्टर के यहाँ गये हैं।

महेश (हकलाकर) देखिये बड़े बाबू ...बात दरअसल यह है कि ।

बड़े बाबू अब मुझे क्या समझाते हो महेश बाबू ' मैं तो पहिले ही जानता था ।

महेश जी क्या जानते थे ?

बड़े बाबू . यही कि आप फ्लू को हो सकते हैं महेश बाबू 'पर फ्लू आपको नहीं हो सकता।

महेश : जी ।

बड़े बाबू (हँसकर) वाह साहब— बहुत खूब, आफिस न आने का यह अच्छा बहाना है—जिसको देखो उसीको फ्लू और आज तो आपको फ्लू होना ही था। उस 'ईश्वरदास बिशनदास' वाले मामले की पुरानी फाइलें निकालनी पड़ती— दुनियाँ भर की मगजपची करनी पड़ती।

महेश जी बड़े बाबू यह ।

बड़े बाबू मुन्नीबेटी, तुमने आज बहुत बढ़िया कपड़े पहने हैं। कहाँ जा रही हो ? हमें भी बतलाओ।

[महेश अलका पर एक मतलब-भरी निगाह डालता है। अलका आगे बढ़कर मुन्नी को उठा लेती है और अन्दर चली जाती है]

बड़े बाबू (हँसकर) क्यों महेश बाबू कहाँ की तैयारी है ?

महेश जी हम लोग डाक्टर के यहाँ जा रहे हैं।

बड़े बाबू डाक्टर के यहाँ! इतने अच्छे कपड़े पहनकर!

महेश फ्लू के दिनों में अच्छे— यानी कि साफ कपड़े ही पहनने चाहियें।

[बड़े बाबू यों ही मेज पर रक्खी किताब उठाकर उलटने लगते हैं—अचानक एक कागज गिर पड़ता है। कागज उठाकर उसे पढ़ते हैं]

बड़े बाबू तो आप लोग कहाँ जा रहे थे ?

महेश डाक्टर के यहाँ!

बड़े बाबू हाँ जी क्यों नहीं— फिल्म देखना भी किस डाक्टर की दवा से कम है।

महेश (घबराकर) जी ?

निर्माण अपना मूल्य मांगता है!

श्री बाबूसिंह चौहान

कुछ दिन पहले की बात है, पत्रों में एक समाचार छपा था। एक व्यक्ति ने अपने ३ बालकों और पत्नी की हत्या करके अपने में आग लगा दी। कारण क्या था? भूख और बेकारी! दिल्ली से एक समाचार आया था, नौकरी की खोज में निराश एक युवक ने रेलगाड़ी से कटकर आत्म हत्या कर ली। मुझे याद नहीं कितने दिनों की बात है, पर यह विश्वास साथ कह सकता हूँ कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की ही बात है। उत्तर प्रदेश के एक निवासी ने अपने परिवार को मृत्यु के घाट उतारकर अपने को पुलिस के हवाले कर दिया था और इस प्रकार उसने परिवार को यमलोक पहुँचा, अपनी रोटियों का प्रबन्ध किया था। यह भी उत्तर प्रदेश की ही घटना है कि स्वतन्त्रता संग्राम के एक सैनिक ने, जो सत्तारूढ़ दल का ही कार्यकर्ता था, तत्कालीन मुख्य मंत्री प० गोविन्द वल्लभ पन्त को पत्र द्वारा सूचना दी थी कि या तो उसे शीघ्र कोई रोजगार दिया जाय अन्यथा वह आत्म-हत्या कर लेगा। पन्तजी ने स्वतन्त्रता संग्राम के अपने इस साथी की बात अनसुनी न कर वहाँ के जिलाधीश को उसके निश्चय की सूचना दे दी थी और उसे आत्म हत्या करने के अपराध में पुनः 'जेलयात्री' बना दिया गया था।

एक नहीं ऐसी अनेक घटनायें पत्रों में छपती रहती हैं। कोई भूख और बेकारी से तंग आकर आत्मघात कर लेता है, कोई 'प्रेम-लीला' में असफल होकर प्राण त्याग देता है, कोई रोग से तंग आकर मृत्यु की शरण चला जाता है तो कोई किसी अन्य असह्य उत्पीड़न से तंग आकर इस 'असार संसार' का मनचाहा 'सार' निकाल कर प्राण-मुक्त हो जाता है। जो दुनिया से चुपके से दुम दबाकर भागने में सफल हो जाता है, भगवान जाने उसकी क्या गति होती है? पर जो 'असफल-भगोड़ा' सिद्ध होता है उसे 'आत्म हत्या' करने के प्रयत्न के अभियोग में भारतीय दण्डविधान के आधीन धर लिया जाता है। जहां तक मेरा अनुमान है, आत्म हत्या करनेवालों की संख्या में वृद्धि, हमारी बहनें अधिक करती हैं। वे बहनें, जिन्हें हमने 'अबला' बनाने

और 'पकड़' न छूटने देने में अपनी पूरी शक्ति लगाते हैं चाहे इस 'दुर्नीति' (?) काम के लिए उन्हें प्राचीन ग्रन्थों की बात ही क्यों न काटनी पड़ी हो।

जीवन-संघर्ष में आनेवाली विपत्तियों, मुसीबतों से घबराकर और असह्य पीड़ा पहुंचानेवाले दर्दों, पीड़ाओं एवं परिस्थितियों से मुक्ति पाने की इच्छा से व्यक्ति निस्सहाय हो संघर्ष में अपने को अकेला देख संघर्षमय दुनिया से भाग जाने को ही एकमात्र उपाय समझ लेता है और उस समय उसके हृदय में समस्त संसार के प्रति घृणा का रागात्मक सम्बन्ध रहता है। दुःखों से इस संसार में जीने की इच्छा के लिए गए प्रयासों की असफलता उसे जीवन ही खो देने के लिए बाध्य कर देती है जब कि उसका यह निष्कर्ष कि वह अकेला है उसकी समस्याओं का कोई हल नहीं, उसकी विपत्तियों का कोई प्रतिकार नहीं सुखी जीवन की खोज का नकारात्मक एवं निराशात्मक पक्ष मात्र होता है। उसे जीवन से मोह है उसे दुनिया की चाह है, यह जीवन कामना उसके मस्तिष्क के परिणाम को उग्र रूप प्रदान करती है।

विपत्तियों से भयभीत होकर जीवन संघर्ष से भागनेवालों की आत्महत्या करने वालों से भिन्न एक और भी श्रेणी है। इस श्रेणी के व्यक्तियों को विपत्तियों से मुक्ति पाने के साथ-साथ जीवित रहने की भी चाह होती है। वे प्राण त्यागने का भी साहस नहीं कर पाते। ऐसे लोग प्राचीन शास्त्रों के उन सूत्रों की शरण लेते हैं जो मनुष्य को संसार के और घर त्याग करने की सीख देते हैं। वे इन सूत्रों का 'सहारा' लेकर मुसीबतों से दूर निकल जाते हैं और अपने उत्तरदायित्वों एवं कर्तव्यों को अपने कंधों से उतारकर समाज के कंधों पर डाल देते हैं। ऐसे लोग साधु-सन्यासियों का वेष धारण कर लेते हैं और लोगों से अपनी कायरता छुपाने के लिए बार बार संसारकी असारता का राग अलापते हैं। कहते हैं:—

'यह संसार असत्य दुःखद और रोगोत्पादक है इसमें दुःखों की ही अधिकता है। यह अनित्य और केले के पत्ते की भांति सारहीन है।'

और इस सारहीन संसार में बिना परिश्रम किए जीने और कायरता एवं निकम्मेपन के बावजूद लोगों से आदर सत्कार पाने का यह रास्ता समाज को दूषित करने और उन समस्याओं व विपत्तियों को विकराल एवं अति भयंकर रूप धारण कर लेने का रास्ता खोल देता है जिनसे पीठ दिखाकर वे भागे थे। ऐसे लोग भी मुसीबतों से घबराकर आत्म हत्या अथवा साधुवेश धारण करने का

ग्लसवानी उपाय अपनाते हैं, अपने। अपनी सन्ताओं सन्तानों और सारे समाज के प्रतिबिद होते हैं।

पत्रों में आए दिन ऐसे जीवन से भागे हुए जीवित कायरों के कुकृत्यों की घटनाएं छपा करती हैं कि उक्त साधु ने एक श्रद्धालु महिला के साथ बलात्कार किया, अमुक साधु गावदेही के अभियोग में गिरफ्तार हुआ, अमुक सन्यासी ने किसी बालिका के आभूषण उतार लिए, अमुक ने किसी को लूट लिया। ऐसे कितने ही समाचार आते रहते हैं। वैरागीके वेषमें व्यभिचारी,

है, सुख के मोह में अपने रक्त को पसीने की तरह बहा देता है, जीवन तक को खो देने और उन सबको छोड़ देने, जिनके मोह में उसे कटु अनुभव होते हैं, ऐसे कटु जो उसके हृदय को टूक टूक कर देते हैं, के लिए बाध्य क्यों होता है? प्राणों का उत्सर्ग करने का साहस कर दिखानेवाले 'कायरों' को मृत्यु का ग्रास बनने का ही एकमात्र रास्ता क्यों सूझता है? इस प्रश्न का उत्तर मानव समाज की वर्तमान व्यवस्था में विद्यमान है।

'समम् अजन्ति जना अस्मिन' लोग

'जियो और जीने दो' तथा 'सारा विश्व एक कुटुम्ब है' आदि मनुष्य के आदर्श आज ग्रन्थों की शोभा और उपदेशों के आभूषण हो गये हैं। समाज के सदस्य एक दूसरे की जेब-तराशी में लगे हुए हैं। कानून और विधान समाज की शोषणयुक्त व्यवस्था की रक्षा करने के लिये संगीनें और गोला-बारूद लिये खड़े हैं।

लम्पट, लुटेरे और दुराचारी व्यक्तियों ने वैराग्य और सन्यास को भी एक पेशा बना दिया है और आध्यात्मिक लोग भी अब सन्यासियों से सतर्क रहने पर विवश हैं। स्पष्ट है कि साधु वेशधारी दुराचारी बहुधा जीवन-संघर्ष में आई विपदाओं से पीछा छुड़ाकर भागने वाले कायर लोग हैं।

प्रश्न यह है कि मनुष्य, जिसे जीवन से मोह है, जो जीने के लिए और अपने सुख के लिए अपनों और परायों से संघर्ष करता

मिलकर, एक साथ एक गतिसे, एकसे चलें, यह है समाज का अर्थ। एक उद्देश्य से एक साथ मिलकर प्रयत्न करने की बात तो दूर रही आज तो समाज में जंगली पशुओं जैसा युद्ध चल रहा है। 'जीयो और जीने दो' तथा 'सारा विश्व एक कुटुम्ब है,' आदि मनुष्य के आदर्श आज ग्रन्थों की शोभा और उपदेशों के आभूषण हो गए हैं। शोषण, उत्पीड़न, मार-काट, व्यभिचार, भ्रष्टाचार, लूट-खसोट, दम्भ, धोखा और घृणा समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अपना

में आ जाय तो आश्चर्यजनक
हीं है।

फिर वही प्रश्न है कि मनुष्य असह-
नीय विपदाओं को देखकर प्राण त्यागने
अथवा अपने उत्तरदायित्वों को फेंककर भाग
खड़ा होने के लिए क्यों मजबूर होता है?
समाज की अमानवीय व्यवस्था को देखकर
उससे घृणा हो जाना एक बात है, पर
घृणास्पद व्यवस्था से टक्कर न लेकर मैदान
छोड़कर भाग जाना दूसरी बात।

बात यह है कि अन्धविश्वास और
विवाद मनुष्य के भीतर ज्ञानपुंज नहीं
प्रकाशित होने देता। एक युग से हम
कहते चले आये हैं—

'करम गति टारे नाहिं टरे'

"तकदीर में लिखे को कोई मेट नहीं
सकता। भगवान ने जिस रूप में
पैदा किया उसी में रहना पड़ेगा। भगवान
किसीको सुख देता है, किसीको दुख। उसकी
लीला अपरम्पार है, उसकी करनी में कोई
आड़े नहीं आ सकता। मुकद्दरमें लिखे धक्के
सहने पड़ेंगे, चाहे हसकर सहो या रोकर।
संसार में कोई किसी का नहीं होता।"

ये बातें हमारे रोम रोम में समा
चुकी हैं और इन बातों ने लोगों को धर्म
का पाबन्द तो बनाया नहीं, निष्क्रियता
और कायरता की भावना को अवश्य ही
बल दिया है। भगवान ही ने जब भाग्य
में भूख और गरीबी लिखी है तो इससे
छुटकारा मिलना तो असम्भव है, फिर हाथ
पैर मारने से लाभ भी क्या? जीना है
तो रहा जिस दशा में प्रभु रखे। दुख
में व्यक्ति 'निर्बल के बल राम' को याद
करता है, पर राम किसी कोने से नहीं
बोलते। जो भगवान अत्याचारी को
दण्ड देने के लिए खम्भे फाड़कर निकल
आते थे, किसी स्त्री का अपमान होते देख
क्षण भर में चीर बढ़ाने के लिए आ जाते
थे, वे भगवान आज प्रकट नहीं होते।
आज जब एक नहीं लाखों द्रोपदियों के
साथ बलात्कार होता है, एक नहीं अनेक
हिरण्यकश्यप अपने नाम की माला
जपवाते और अपने विरोधियों को मरवाते
हैं, भगवान को लाख बार पुकारने पर
भी उनके दर्शन नहीं होते, पता नहीं
भगवान अपनी पुरानी कलाए भूल गए

जो भगवान अत्याचारी को दंड देने के लिये खम्भे फाडकर निकल
आते थे, एक स्त्री का भी अपमान होते देख क्षण भर में चीर बढाने के
लिये आ जाते थे, वे आज लाखों द्रोपदियों के साथ होनेवाले बलात्कार
और दिन-रात अपने नाम की माला जपवानेवाले अनेक हिरण्यकश्यप
देखकर भी क्यों नहीं प्रकट होते?

अथवा मानव समाज से ही वे रूठ गए।

यह देख विपदाओं में घिरा हुआ मानव 'किंकर्तव्य-विमूढ़' हो जाता है। सोचने पर आता है तो विचारता है, भाग्य में लिखा मिट नहीं सकता, अपने किए कुछ हो नहीं सकता भगवान सुनता नहीं, अब तो क्या। कहीं ये आवाज आती है—"जीना अपने बस में न सही मरना तो अपने बस में है।"

प्रेम के क्षेत्र में असफल युवक-युवतियाँ सोचते हैं—'यह समाज हमें यहाँ नहीं एक होने देता तो चलो परलोक में एक होंगे।' कोई सोचता है— 'इस संसार में अपना कोई नहीं न पत्नी न बच्चे तो फिर इनके लिए क्यों इतनी मुसीबत में पड़ें। अतः क्यों न ऐश करो, न किसी की चिन्ता न किसी का भय। मुख में रोटी और कमर में आसन भी।"

वास्तव में 'नीम हकीम खतरे जान और नीम मुल्ला खतरे ईमान' वाली कहावत यह देखकर याद आती है। धर्मोपदेश करनेवाले अशिक्षित अज्ञानियों ने कुछ घिसी-पिटी बातों को रट रखा है जो भले के बजाय बुरा अधिक करती हैं। यद्यपि हमारे पूर्वजों के भी कुछ विचार इस युग में ठीक नहीं बैठते, पर हम लकीर के फकीर बनने में ही अपनी संस्कृति की रक्षा समझ बैठे हैं।

हमें चाहिए इन विचारों और रूढ़ियों पर लात देना जो मनुष्य को ऐसा करने की प्रेरणा देते हैं। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में भी मनुष्य को प्रकृति पर विजय प्राप्त कर प्रगति की ओर बढ़ने का आह्वान है। मनुष्य को तो सर्वशक्तिमान परमेश्वर कहा गया है। ([illegible] परमेश्वर) वेद पुकार-पुकार कर कहता है—'अहम् अस्मि भूः।' 'पुरुषार्थ से पृथ्वी पर विजय प्राप्त करो' अर्थात् विश्व-विजेता बनो।

अर्जुन अज्ञानवश रण-क्षेत्र में पहुँच कायरता दिखा रहा था, कृष्ण ने उसे ललकारा और उसके अन्दर यह विश्वास जाग्रत किया कि कर्म करना और कर्म के द्वारा अपना भाग्य बनाना अन्याय के विरुद्ध डटकर लड़ना ही सबसे बड़ा धर्म है।

ज्ञान के नए-नए पटल खुलते जा रहे हैं और अब यह सत्य सर्वमान्य होता जा रहा है कि संसार गतिशील है, प्रकृति गतिशील है। क्षण क्षण परिवर्तन और गति का चक्र चल रहा है हर वस्तु अपना रूप बदलती है। यह प्रक्रिया हम प्रत्येक क्षण चाहे अनुभव न करें पर ऐसी बहुत-सी बातें हैं जो अनुभव नहीं करते और होती रहती हैं। विनाश में विकास का बीज विद्यमान है। निर्माण के गर्भ में विध्वंस बीज रूप में विद्यमान है। छोटी-से छोटी

...से लेकर बड़ी से बड़ी चीज तक, ...के एक कण से लेकर सूरज तक, लघु-...जीवकोष से लेकर मनुष्य तक सम्पूर्ण ...कृति सतत गतिमय और परिवर्तनशील है, उसकी स्थिति निर्वाण और निर्माण के अविराम प्रवाह में है। जो कुछ आज हम संसार में देख रहे हैं वह सब कुछ विकास-क्रम का परिणाम है, जो होता चला आया है और होता रहेगा। यह न भूलें कि विरोधी-तत्वों के सघर्ष का नाम ही विकास है।

एक-एक दिन मे देशो के भाग्य बदल जाते हैं, लेखनी की नोक ने जमीदारों का भाग्य बदल डाला। कानून का तनिक-सा परिवर्तन उस तक के स्वामित्व को बदल डालना है जिसे कुछ लोग भगवान का दिया समझते हैं। विधान, रूढ़ियों और रीतिरिवाजों के अजेय दीख पड़नेवाले दुर्ग नष्ट कर डालता है। मानव समाज की व्यवस्था सम्बन्धी वह कौन-सी ऐसी वात है जिसे बदलना मानव के हाथ मे न हो? ऋग्वेद कहता है—"नर्य यत् करिष्यन अप चक्रि।" मानवों का हित करनेवाला वीर जो करना चाहता है, करके छोड़ता है।'

यहा न भगवान के आड़े आने का भय दर्शाया गया न भाग्य की दीवारों का। वल्कि आशीर्वाद व उपदेश दिया गया कि—'नृभि आ प्रयाहि।' 'मनुष्यों के साथ प्रगति कर।' भगवान ही देता है, इसका भी खण्डन धार्मिक ग्रन्थ करते हैं—

उद्योगिन पुरुष सिंहमुपैति लक्ष्मी
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।

"जो उद्योगी पुरुषसिंह है, उसे ही श्री प्राप्त होती है, दैव देगा ऐसा तो कायर कहा करते हैं।"

तो फिर क्या कारण है कि मानव समाज के वर्तमान दानवीय रूप को बदलने का हम प्रयत्न न करें। समाज की वर्तमान दुर्दशा का कारण मनुष्य ही है। यह सोचने से काम नहीं चलता कि हम अकेले क्या कर सकते हैं? एक-एक व्यक्ति उठे तो सारी दुनिया बदल जाय, एक ही व्यक्ति उठे तो अन्य भी उठें। सवाल है केवल विपदाओं और विपत्तियों से घिरे लोगों में यह विश्वास पदा करने का कि ये विपत्तियां पूरे समाजसे समूल नष्ट भी की जा सकती हैं।

जैसा कि ऊपर कहा चुका है परिवर्तन प्रकृति का स्वभाव है। दुनिया तो वदलेगी ही, वर्तमान दुर्दशा नहीं रहतीं, पर हम चाहें तो परिवर्तन चक्र की गति को तेज भी कर सकते हैं। जो लोग अन्यायों और विपत्तियों से पीठ दिखाकर भाग रहे हैं, प्राण बचा रहे हैं, वे अन्यायों और विपत्तियों को बढ़ावा दे रहे हैं। कायरों की भांति भाग खड़े होने से अच्छा है कि

(शेषांश पृष्ठ २४८ पर)

जवानी कह रही है

श्री शान्तिस्वरूप 'कुसुम'

अधूरी है अभी मंजिल, अधूरा पथ अधूरा है अभी जीवन !

हर तरफ से आ रही बू स्वार्थ-परता की, घृणा के घन तने हैं
चाह की ज्वाला धधकती द्वेष से मुँह वासनाओं के सने हैं
शक्ति पाँवों में बहुत जंजीर पर हर पाँव को रोके खड़ी है
व्यक्तिगत का राग कहने को न पर मन्तव्य अपने ही बने हैं
झलक आती मगर किस काम की, वह भी छिपे रहती विषैलापन !

अरे यह एक आँसू है उधर तो अश्रुजल की बह रही नदियाँ
कि स्मित यह एक कितने लोचनों को पर तरसते हो गयीं सदियाँ
न बाँधो एक आँचल से प्रणय मेरा हजारों को जरूरत है
जरूरत है मुझे तू आज बन सपने सराबी में मगन सुधियाँ
अनेकों स्वर बुलाते, दे रहे उठकर अनेकों हाथ आमन्त्रण !

कि यौवन वह नहीं जो सुन पुकारों को सदा खामोश रह जाये
भटकते काफिलों के पग न खिस जायें अतः मारग न दिखलाये
नहीं वह भी नहीं यौवन कि जो हरदम रहे भुज-पाश में बन्दी
झुका दे शीश चाहे जिस तरफ जिस ओर हटता देख कर साये
न वह यौवन कि जो हस सुबह भी साँझ को उतरी चढ़ी चितवन ।

जवानी कह रही है बन्द कर दो गीत जिनसे बुजदिली कायम
जवानी कह रही है रोक दो संगीत जिससे फैलता मातम
जरूरत है न चन्दा से, सितारों से करें बातें गगन में जा
धरा के फूल कुम्हलायें न, चलने दो हवा गम की न विखरे तम
उगी हैं कोपलें अभिनव कि बढने दो, महकने दो जरा उपवन !

भी तो सूर्य निकला है प्रभाती के तराने गा रहीं कलियाँ
हागिन वन न मंजिल की तरफ नादान मुड पायीं अभी गलियाँ
तलवे गम हो पायें न साँसे फूल पायी हैं थकन लेकर
भी विश्राम के स्वर क्यों, मनाते क्यो अभी अलमस्त रँगरलियाँ
गाओ राग दीपक तुम, न सन्ध्या है, न होगा पन्थ यों पावन !

कि देखो घंटियां बजतीं वृषभ जाते, कृषक को धान बोने हैं
धरा पर स्वर्ग आयेगा किशोरी कह रही सपने सँजोने हैं
कि ये एटम विषैली गैस इनको मत इजाजत दो पनपने की
नहीं विध्वंस को लाओ यहाँ पर तुम, अभी निर्माण होने हैं
बिना चूमे वसन्ती को पड़ी है बहुत-सी धरती बहुत से वन !

ुत से दुधमुहे सपने सुखद रिमझिम सलोनी आस बाकी है
मोड़ो साधना से मुह, न बुझ पायी हृदय की प्यास बाकी है
बाकी हैं बहुत कलियाँ अभी वन फूल हँसने को विहँसने को
ा पतझार डालों से कि आने को अभी मधुमास बाकी है
ुत-कुछ है चमकता जो भविष्यत में, न फेंको अग्नि के ये कण !

…जिनो ज्ञान-ज्योति धूमिल हो गयी … चारों ओरसे बुराइयों के कपाट … हो गये हैं। दूषित मनोवृत्तियाँ … आकर विस्फोटक हो गई हैं। इस … में उन्नयन की परिकल्पना नितान्त … है। वर्तमान समय में जो बुराइयाँ … क्रियमाण हैं, सक्षेप में उनकी विवृत्ति … प्रकार है—

विदेशी शिक्षा—हमारी वर्तमान … शिक्षा आडम्बरपूर्ण, छिछली, अनुपयोगी, … निष्क्रिय एव जीवनहीन है। यहाँ ऐसी

की नींव पक्की रखनी थी।

अस्तु अंग्रेजों व अंग्रेजीके हिमायतियों ने ही हमारे देशको घोर अशिक्षा, दरिद्रता, स्वार्थ, अनीति, उद्देश्य-विहीन झगड़े, शोषण, नैष्ठुर्य और दास्य की भावनायें भेंट की हैं।

बालकों के कोमल मस्तिष्क में अल्पावस्था से ही अप्राकृतिक विदेशी शब्दों की ठूंस-ठास न केवल अपने बुद्धि वैभव का नर खाली करना है, वरन् अबोध शिशुओं के साथ अत्याचार और राष्ट्र के पौरुष का निर्दयतापूर्वक हनन भी

लोकतन्त्र की स्वर्ण पताका ओर रजत बागडोर हाथ में लेकर आजकल कितने ही स्थूलोदर पण्डे समाजवादी समाज-रचना का काकारव करते नजर आते हैं, मुर्गमुसल्लम और बकरे चबाकर अहिंसावाद की दुहाई देनेवाले पुजारी देशभक्ति का कंठा बाधे यत्र-तत्र भाषण रूपी कवच, अर्गला, कीलक का जप-पाठ करते फिरते हैं। इनकी दादुरावृत्ति से आर्थिक सकट स्वप्न में भी दूर न होंगे।

… शिक्षा का प्रवर्तन अंग्रेजों ने किया था, … क्योंकि उन्हें इस देश को गुलाम बनाकर … उसका अभीष्ट शोषण करना था, परस्पर … वैमनस्य और अन्यता की जड़ें मजबूत … करनी थीं, यहाँके प्रतिभा सम्पन्न उर्वर … मस्तिष्क को अकुश देकर रखना था, … गुलामी का बोझ ढोनेवाले कर्म-कुलियों का … उत्पादन बढ़ाना था, अधूरे ज्ञानकी धूप … छाँह में अनुभवहीन अर्द्ध खेचरी प्रवृत्ति को … प्रतिष्ठित करना था, ईसाइयत की मदिरा … से सबको मदहोश बनाकर अपनी सत्ता

करना है। अतीत में जिन गलतियों का परिणाम हम भोग चुके हैं, वर्तमान और भविष्य में भी उन्हीं को जारी रखना भयकर भूल है। बीस-तीस वर्षों में पाँच-छः सौ व्यापारी शब्दों की तोता रटन्त कर ज्ञान-विशेषज्ञ की उपाधि वितरित करनेवाली शिक्षा-व्यवस्था कितनी हेय और लज्जाजनक है यह कहने की बात नहीं, गम्भीरतापूर्वक विचार करनेवाली समस्या है। व्यय एव श्रम साध्य शिक्षा के कारण देश अशिक्षा के अन्धगर्त में जा गिरा है।

सकेगा। अन्यथा राष्ट्रीय आन्दोलन की समाप्ति के बाद पैदा हुये लोगों को अनायास स्वतन्त्रता का फल मिल जायेगा। अनुचित पदलिप्सा भयंकर अवनति का अनिवार्य कारण है। लिप्सा के भूत को भगा देने से ही कल्याण सम्भव है। कुर्सियों पर चिपके रहने का यह मोह सचमुच दयनीय है।

अनुशासन - हीनता—अनुशासन हीनता को वर्तमान समय में सभ्यता का चिह्न समझा जाता है, हीन प्रवृत्तियाँ फैशन में गिनी जाती हैं, एक भ्रान्त धारणा लोगों के दिमाग पर गई है कि जनतन्त्र ... में कोई भी अनुशासन का पालन नहीं सकते। देश में आज जितनी बुराइयाँ देखी जा रही हैं, इसके मूल में बहुत कुछ अनुशासनहीन कर्मियों का हाथ रहता है।

जातीयता-प्रान्तीयता एवं भाषा विवाद—जातीयता और प्रान्तीयता का रोग व्यापक हो चला है। भाषा के आधार पर प्रान्तों का गठन इन रोगों का मूल है, प्रान्तों का विभाजन भौगोलिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से होना चाहिये। एक प्रान्त में विभिन्न भाषा-भाषियों का रहना आपत्तिजनक कभी नहीं हो सकता। 'यह हमारी भाषा है यह तुम्हारी है' इस प्रकार की कुत्सित मनोवृत्तियों को पल्लवित

ना, जहाँ के सचय में दान नहीं बल्कि ...ता है, वहां भिखारी नहीं हैं, परन्तु ...मार यहां बड़े बड़े दानवीर, दानी महारथियों के रहते हुये धर्मक्षेत्र, कर्मक्षेत्र में जहां कि सचय में त्याग और दान है, अगणित भिखारी कीड़ों की तरह सड़कों पर बिलबिलाते नजर आते हैं। राम-राज्य का नारा बुलन्द करनेवाले यह देखकर द्रवित नहीं होते, देश की सेवा करनेवाले भी सरसराती कार में आँखें मूँदकर पार हो जाते हैं।

गन्दे साहित्य का निर्माण और अध्ययन—बरसाती मेढकों की तरह टरटराती हुई कितनी ही पत्रिकायें आजकल छलांगें मार रही हैं। इनकी बाढ़ हम शहर के मुख्य चौराहों पर, रेलवे स्टेशनों पर, बुक स्टालों पर, जहां-तहां फुटपाथों पर सर्वत्र देख सकते हैं। इनके मुख पृष्ठों पर औरतों की निर्लज्जतापूर्ण तस्वीरें भी छपी होती हैं। इनमें व्यभिचार भरी प्रेमकथा छिपी होती हैं। इन्हें पढ़कर नवयुवकों के कान्तिपूर्ण चेहरे आम की सूखी गुठलियों की तरह पिचक जाते हैं। इसी प्रकार खूनी-जासूसी-तिलस्मी-ऐयासी उपन्यास और कहानियां छापकर सस्ते मनोरंजन से राष्ट्र के पैरों पर कुल्हाड़ी मारी जा रही है, उसे जान-बूझ कर लगड़ा किया जा रहा है।

फूट, निन्दा और कलह—आज ये घर घर में व्याप्त हैं। प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक परिवार इनका शिकार बना हुआ है। फूट के कारण अतीत में कितने ही साम्राज्य उजड़े, निन्दा और कलह से कितने ही व्यक्ति मौत में समा गये, आज भी इनका जाल चारों ओर तना है। इस जाल में मनुष्य मकड़ी की तरह स्वयं फँसकर मरता है। फूट के कारण देश में गुलामी आई, उसका विभाजन हुआ, कितने ही अनर्थ हुए। अदालतें तथा कचहरियां फूट, निन्दा और कलह के परिणाम हैं। जहां न्याय-तुला में अन्याय का पलड़ा भारी होता है, सत्य की नाक पर झूठ का घूँसा लगाया जाता है, परिश्रम से प्राप्त धन को झूठे लबार छीन कर खा जाते हैं। पागलों की तरह बड़बड़ानेवाली दलबन्दियाँ एवं राजनीतिक फिरके इन्हीं की विषम देन हैं, इनसे आत्म शक्ति तथा एकता चूर्णित हो जाती है।

स्वार्थपरता हिंसा और उन्माद—विश्व में जो अनैतिकता व्याप्त है, खलबली मची हुई है, त्रास की घटा छायी हुई है, इसके मूल में निन्दनीय स्वार्थपरता है। इससे उन्माद और उन्माद से हिंसा का जन्म होता है, हमें इस उन्माद से दूर रहकर देश के उत्थान में जुटना है। अतः व्यक्तिगत जीवन से भी स्वार्थ हिंसा तथा उन्माद को दूर निकाल देना होगा।

केवल अपने तुच्छ स्वार्थ में लगे रहने से हिंसात्मक तत्वों को अपनाते थे, उन्माद ग्रस्त होने से कभी तक कभी नहीं पहुँच सकते किन्तु हमारे आन्तरिक जीवन में उक्त प्रवृत्तियाँ शेष हैं, क्योंकि हमारे विकास में बाधायें हैं। स्वार्थों के कारण हमने ग्रामों के उत्थान में मनोयोग नहीं दिया। फलस्वरूप स्वतंत्रता के बाद भी हमारे गाँव उसी हालत में हैं, जिसमें वे थे। ग्राम जीवन की भयानक उपेक्षा ही हुई है।

उपयुक्त बुराइयों के अतिरिक्त और भी कई हैं जिन सबका विवेचन करना कठिन है। ये सब भी इन्हीं से सम्भूत होती हैं। इन बुराइयों का मूलोच्छेदन किये बिना आदर्श समाज निर्माण की कल्पना करने से दम निकलने की कल्पना के समान निरर्थक है। इन बुराइयों को मिटाने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को दृढ़ संकल्प करना होगा। आडम्बरों के अन्धानुयायियों में जबतक नवीन मानव सभ्यता का शिलान्यास न होगा, नव समाज की रचना असम्भव है। आज मानव चरित्र का निर्माण कर मानव सभ्यता का आलोकमय दीप जीवन मार्ग पर ज्योतिर्मान करना होगा। अन्धों की तरह इधर उधर टकराते हुए भटके समाज को नव-निर्माण की ज्योति से जगमगाना होगा और प्रशस्त मार्ग पर प्रवृत्त करना होगा।

योजनाओं का कर्तव्य है, व स्वस्थ परम्परा हो और देश की अनीतियों के मिटाने के लिये वास्तविक योजनायें बनायें। लोगों के चारित्रिक विकास का समुचित वातावरण पैदा करें, प्रजाको नैतिक आदर्शों तथा कर्त्तव्यों से विमुख न होने दें। तभी निर्माण की आवश्यक योजनायें चरितार्थ हो सकेंगी। प्रजाका हित करे योजना स्वयं जनता बनावे की योजना केवल पुस्तकों मात्र सिद्ध होगी। किन्तु जनता से कर्म प्राप्त करना कठिन ही नहीं असम्भव भी है। जबतक हमारा नैतिक उत्थान नहीं हो जाता, हम जब स्वतन्त्र हो रहेंगे, स्वाधीनता की प्राप्ति भी अधूरी ही समझी जायगी।

(शेषांश पृष्ठ २१५ का)

अत्याचारों का डटकर मुकाबला करें, फिर चाहे वह अत्याचार समाज का ही क्यों न हो।

एक नए समाज के निर्माण के लिए त्याग और बलिदान की आवश्यकता है। निर्माण अपना मूल्य मांगता है। कायरों की मौत मरने से अच्छा है वीरों की गति प्राप्त करें। क्योंकि हमारे ऊपर अपनी ही नहीं भावीपीढ़ी सन्तानों की भी जिम्मेदारी है। हम एक ऐसा समाज अपनी सन्तानों को सौंपें जिसे देखकर वे हमारे ऊपर गर्व कर सकें। वह समाज ऐसा हो जिसमें किसी को दंगों से डरकर आत्म घात करने की आवश्यकता ही न पड़े और ऐसा समाज बनकर रहेगा।

में नैतिक दृढ़ता उत्पन्न किये बिना राष्ट्र-निर्माण
नाम पर होनेवाले भौतिक उन्नति के ये
[illegible]-सामान ऐसे हैं जैसे—

विष भरे स्वर्ण घट

श्री गुलाबराय एम० ए०

पहली पञ्चवर्षीय योजना पूरी हो गई। दूसरी पञ्चवर्षीय योजना कुछ [illegible]र्थिक कठिनाइयों के साथ चल रही है। [illegible] देश का उत्पादन और देश में रहने- [illegible] का जीवन-स्तर ऊँचा होगा। [illegible] अन्न-वस्त्र की कठिनाइयाँ दूर होंगी [illegible] विद्युत्प्रकाश, अच्छी सड़कें, सुरम्य [illegible]ल स्थलों, क्रीड़ागृहों, विशाल भवनों, [illegible], तार, टेलीफोन, रेडियो आदि प्रवहन [illegible]र सञ्चार साधनों की समृद्धि और कला- [illegible]शल सम्बन्धी सुख सुविधाओं की उन्नति [illegible]ोगी। ये सुख-सुविधाएँ हमारे जीवन [illegible] सम्पन्न बनाने में सहायक होंगी और [illegible]र्म, अर्थ, काम, मोक्ष के चार पुरुषार्थों में [illegible] कम-से कम अर्थ और काम की साधिका [illegible]ोंगी। हम अभावों की शून्यतामय [illegible]लता नहीं चाहते हैं, वरन् स्वच्छ सपर्प- [illegible]न अनेकता में एकतावाली साम्यमयी [illegible]व्यवस्था चाहते हैं।

हमारे जीवन का स्तर खूब उठे, किन्तु उसके साथ ही नैतिक स्तर भी उन्नत हो। रामराज्य में भौतिक सम्पन्नता के साथ एक साम्यमयी नैतिक व्यवस्था थी। देखिए—

वयरु न कर काहू सन कोई,
राम प्रताप विषमता खोई।
दैहिक दैविक भौतिक तापा,
रामराज्य नहिं काहुहि व्यापा।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती,
चलहिं स्वधर्म निरत स्रुति रीती।
अल्प मृत्यु नहिं कवनउ पीरा,
सब सुन्दर सब निरुज सरीरा।

इस व्यवस्था में जितना भौतिक उन्नति पर ध्यान दिया गया है उतना ही नैतिक दृढ़ता पर। मनुष्य की नैतिक उन्नति पर ही जातीय चरित्र निर्भर होता है। जाति व्यक्तियों से ही बनती है। नैतिकता के विना भौतिक उन्नति के साज-सामान 'विष भरे स्वर्ण घट' जैसे दिखाई देते हैं। उच्च-से-उच्च मानवता के सिद्धान्तों के प्रचारक यदि निजी मामलों में चरित्र से पुष्ट पाए जाते हैं तो वे उन संस्थाओं को ही नहीं वरन् उन सिद्धांतों को भी दोषपूर्ण प्रमाणित करते हैं। कांग्रेस और गांधी टोपी जो बदनाम है वह कांग्रेस के

र शान्ति की साम्यमयी व्यवस्था उत्पन्न सकती है। ये अणुव्रत एक-दूसरे के पूरक और सहायक हैं। सत्य सभी व्यवहारों में, चाहे वे निजी पारिवारिक हों और चाहे राजनीतिक और सामाजिक सुगमता और मृदुलता लाने के लिए आवश्यक हैं। अहिंसा, सद्भावना प्रेम और साम्य के लिए आवश्यक है। अस्तेय और अपरिग्रह सम्पत्ति की रक्षा और उचित उपभोग के लिए आवश्यक है। अपरिग्रह अनुचित संग्रह को रोक कर पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष को बचायेंगे और समाज में शान्ति और साम्य स्थापित करने में सहायक होंगे। ब्रह्मचर्य शक्ति संचय और पारिवारिक जीवन की सुष्ठता के लिए आवश्यक है। अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य व्रतों का पालन करनेवाला सहज में प्रलोभनों में नहीं आयगा और भ्रष्टाचार से बचा रहेगा। सत्यवादी अपने कर्त्तव्य में दृढ़ रहेगा। अहिंसा का उपासक स्वयं निर्भय रहकर दूसरों को अभय दान देगा। दुनिया में लड़ाई-झगड़े कम होंगे।

इस प्रकार अणुव्रत और उसके अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिरूप पञ्चशील, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सुख और शान्ति स्थापित करने और वैयक्तिक और राष्ट्रीय मान ऊँचा करने में सहायक होंगे। इन व्रतों के पालन करने से स्वतन्त्र राष्ट्र के लिए जो संयम आवश्यक है उसकी साधना हो सकेगी। हमको अपनी कठिनता से अर्जित स्वतन्त्रता स्थित रखने के लिए राष्ट्र में साम्य और शान्ति की व्यवस्था आवश्यक है। वह चारित्रिक सुधार पर, जो इन अणुव्रतों पर आधारित हैं, आश्रित रहेगा। हमारे चारित्रिक सुधार से राष्ट्र का मान ही नहीं बढ़ेगा, वरन् उसकी शक्ति और सम्पन्नता भी बढ़ेगी।

●

हम भी बोयेंगे !

पतझड़ की ऋतु में मैंने अपने सारे शोक-संतापों को इकट्ठा करके अपने बाग में गाड़ दिया। जब अप्रैल महीना आया और वसन्त ऋतु पृथ्वी से विवाह करने आयी तो मेरे बाग में उगनेवाले फूल दूसरों के बागों के फूलों से बहुत सुन्दर और भिन्न थे।

मेरे पड़ोसी मेरे फूलों को देखने आये और सबने मुझसे कहा—"अबकी बार जब पतझड़ ऋतु में बीज बोने का समय आये तो क्या इन फूलों के थोड़े-से बीज हमें भी न दोगे ? हम भी उन्हें अपने बागों में बोयेंगे।"

—खलील जिब्रान

नव-निर्माण

प्रपच से नहीं, पवित्रता से होगा।

श्री मुरारिलाल शर्मा

मेरा लड़का भयंकर रोग से ग्रस्त था। दोपहर के लगभग डेढ़ बजे मैं डा
साहब की प्रतीक्षा कर रहा था। आखिर पसीने और धूप से व्याकुल डाक्टर स
आये। डाक्टर साहब बड़े ही भावुक व्यक्ति थे। अवकाश मिलने पर वे अपने
कलाकारों का सम्मान करते थे। कुर्सी पर बैठते ही बोले—पंडितजी कुछ सुन[ाइये]
हमने बहुत दिन हुए एक सज्जन से स्वाभिमान पर दो पंक्तियाँ सुनी थीं, जो कु
इस प्रकार थीं—अमिय पियावत ... । मैंने कहा—डाक्टर साहब, मैं समझ गया—

अमिय पियावत मान बिन रहिमन हमें न सुहाय।
प्रेम सहित मरिबो भलो जो विष देय बुलाय॥

डाक्टर साहब बोले—हाँ हाँ यही थी। इसके बाद बहुत पूछने पर भी कम
विद्वान् स्वाभिमान पर इन दो पंक्तियों के जोड़ की पंक्तियाँ न सुना सका।

मैंने कहा—इसके जोड़ की तो दो पंक्तियाँ गोस्वामी तुलसीदासजी ने बड़ी ही
सुन्दर लिखी हैं। पंक्तियाँ हैं—

आवत ही हर्षे नहीं नयनन नहीं स्नेह।
तुलसी तहाँ न जाइये, कंचन बरसे मेह॥

इस पर डाक्टर साहब बोले—पंडितजी, कितनी सुन्दर पंक्तियाँ हैं। मैं बड़ा कि...
हूं। इसके बाद डाक्टर साहब ने कहा—पंडितजी सच बात तो यह है कि हमा...
पुराने लोग दो-दो पंक्तियों में संसार का अमूल्य अनुभव भर गये हैं। आजकल के
लोग किसी बात की भूमिका तो बहुत बाँधते हैं किन्तु उसमें सार बहुत ही क...
होता है। आजकल के लेखक चार पृष्ठ में भी वह बात नहीं लिख पाते, जो पहले लो...
दो पंक्तियों में लिख देते थे।

मैं बोला डाक्टर साहब, मैं आपसे पूर्णतया सहमत हूँ। मेरी तो यह राय
कि आजकल प्रपंच ढोंग और आडम्बर का अधिक बोलबाला है और सच्ची बा...

। तभी तो हमारे अधिकांश कामो में खोखलापन है, भला कहीं बालू की दीवार

ी उठ सकती है ?

आजकल क्या छोटा क्या बड़ा, क्या पुरुष क्या नारी ? प्रत्येक की वाणी पर एक ही

ात है और वह है—नव-निर्माण । किन्तु निर्माण की अनेक योजनाएँ होते हुए भी हम

व निमाण की ओर बहुत ही कम अग्रसर हो सके हैं। यह क्यों ? इसोलिए कि हम

लोग अपने कर्त्तव्य की ओर तो उचित ध्यान नहीं देते और प्राय प्रपच में लिप्त रहते

हैं। हम बिना परिश्रम किए ही सब्ज बाग लगाकर दिखाना चाहते हैं। किन्तु यह

र्वथा असम्भव है। कारण सब्ज बाग लगाने के लिए तो हमें स्वय खाद और पानी

बनाना पड़ेगा
ात् तपस्या और
र परिश्रम करना
ागा।

आइए, नव-
नेर्माण की ओर
अग्रसर होने के
लिए हम अपने
चारो ओर के
वातावरण तथा
अपनी दैनिक जीवन-
चर्या का ध्यानपूर्वक
अध्ययन करें।

शिक्षा संसार—

यदि हम आजकल
के छात्रो, शिक्षालयो
तथा शिक्षको की
दशा पर विचार करें
तो वहाँ भी अधि-
कांश प्रपच ही
दिखाई पड़ता है।
छोटे-छोटे बच्चों से
लगाकर स्कूलो और
कालेजो तकके बड़े-

े छात्र भी परिश्रम से ठीक इसी तरह बिदकते हैं, जिस प्रकार बालछड़ से बिल्ली। पहले

ोगो का कथन है—'विद्या कठ, पैसा गठ" अर्थात विद्या वही काम की है जो कठाग्र

ो और धन वही काम आता है जो अपनी गाँठ में हो। तभी तो पहले शिक्षक बच्चो

को पहाड़े तथा महापुरुष की सूक्तियाँ, व्याकरण के सूत्र कठाग्र कराते थे। इससे बचपन

से ही छात्र गणित मे प्रवीण हो जाते थे और अवसर पड़ने पर वे अपने धार्मिक तथा

ऐतिहासिक ज्ञान से लाभ उठा सकते थे। आज भी देशी ढग से शिक्षा प्राप्त किए हुए

मुनीम हजारों और लाखो का हिसाब चुटकी बजाते हुए जबानी ठीक ठीक लगा देते हैं।

किन्तु यदि एक बी० ए० अथवा एम० ए० के गणित के विद्यार्थी से पूछा जाय—एक

रुपये में सवा तीन छटांक घी मिलता है ; यदि हम टेढ़ तोला घी खरीदें तो उसका कितना मूल्य चुकाना पड़ेगा ? हमारी राय में कोई भी छात्र कागज और पेंसिल की सहायता से भी इस प्रश्न को घंटों में भी ठीक-ठीक हल न कर सकेगा।

प्राचीन काल में जब हमारे बालक-बालिकाएं विद्यालयों में जाते थे तो सबसे पहले प्रतिदिन मिलजुलकर बारी बारी से उनकी सफाई करते थे। खराब होने पर कुछ दिनों में विद्यालयों की लिपाई पुताई भी अपने ही हाथों से कर लेते थे। इससे उनका व्यावहारिक ज्ञान बढ़ता था परिश्रम करने से उनका स्वास्थ्य सुधरता था और उनमें मिलजुलकर काम करने की आदत पैदा होती थी। साथ ही विद्यालय भी सदा साफ-सुथरे रहते। यदि हम आजकल के विद्यालयों का निरीक्षण करें तो बहुत-सा धन खर्च करने पर भी उनकी सफाई दिखाई न पड़ेगी। यदि इन विद्यालयों के छात्र-छात्राओं को देखें तो वे आलसियों के गुरु प्रतीत होते हैं। कारण यहां के छात्र छोटे से काम के लिए भी गद्दे नौकरों पर निर्भर रहते हैं। तभी तो परिश्रम से कतरानेवाले छात्रों का स्वास्थ्य भी दिन दिन गिर रहा है।

पढ़ाई लिखाई की यह दशा है कि पहले अध्ययन न करके अधिकांश छात्र पुस्तकों की कुंजियां अथवा छपे गिने प्रश्नों के बल पर परीक्षा में सफल होने की चेष्टा करते हैं। कुछ छात्र तो परीक्षा भवन में नकल करने से भी नहीं चूकते। परीक्षकों से भेंट करने की कोशिश करना तो आज बुरा नहीं समझा जाता है। आश्चर्य तो यह है कि बहुत से शिक्षक भी ऐसे अनुचित काम में बेईमान छात्रों की सहायता करते हैं। जहां शिक्षा संसार में भी पग पग पर परिश्रम तथा पवित्रता को धता बताकर प्रपंच का आधिपत्य हो वहां उत्तम परिणाम की कैसे आशा की जा सकती है ?

सारांश यदि हमें नव निर्माण-द्वारा अपने समाज को सुधारना है तो हमें प्रपंच ढोंग और आडम्बर को तिलांजलि देकर शिक्षा क्षेत्र में परिश्रम तथा पवित्रता का समावेश करना पड़ेगा।

गृहस्थ जीवन—किसी भी घर का सब काम एक ही व्यक्ति-द्वारा सुचारु रूप से नहीं चल सकता। यदि किसी घर के सभी लोग आपस में मिलजुलकर काम करें तो अनेक कठिनाइयां होते हुए भी वह घर स्वर्ग का द्वार बन जाता है। इसके विपरीत जहां किसी गृहस्थ-परिवार के लोग सदा ही अपनी-अपनी डफली पर अपना-अपना राग अलापते हैं वह घर कलह, अशान्ति आदि कष्टों का नारकीय अड्डा बन जाता है।

आजकल बहुधा यह देखने में आता है कि परिवार का प्रत्येक व्यक्ति काम से जी चुराता है, परिश्रम से दूर भागता है और केवल बातों से ही अपने कर्त्तव्य की पूर्ति करना चाहता है। स्त्रियों में इस रोग ने और भी अधिक गहरा अड्डा जमा रखा है। वहाँ तो प्रायः यही भावना काम करती हुई दिखाई पड़ती है—'तू भी रानी, मैं भी रानी, कौन भरेगा पानी' यदि किसी के पति की अधिक आय हुई तो वह अपने को रानी ही नहीं पटरानी समझती है और दूसरों को अपना गुलाम। ऐसी स्थिति में घर का सब काम बहुत शीघ्र ही चौपट हो जाता है।

हमें ध्यान रखना चाहिए कि नाश की अपेक्षा निर्माण अत्यन्त दुष्कर है। निर्माण के लिए हमें भिक्षुक नहीं दाता बनना पड़ेगा, प्रपञ्च को त्याग कर पवित्र होने का उद्योग करना पड़ेगा और परिश्रम की परिपाटी को अपनाना पड़ेगा। पुराने लोगों में आजकल के लोगों की तरह आपाधापी न थी। बड़े लोग अपनी आवश्यकताओं को अधिक से अधिक कम करके परिवार के दूसरे लोगों को सुखी बनाने का प्रयत्न करते थे। छोटे लोग बड़ों की आज्ञा का पालन करना ही अपना धर्म समझते थे। परिवार के सभी लोग एक-दूसरे की सेवा करने में डटे रहते थे। तब गृहस्थ-जीवन परम सुखी था। इसका कारण, परिवार के लोगों में प्रपंच न था और परिश्रम तथा पवित्र भावनाएँ उनमें ओतप्रोत थीं। आज के युवक और युवतियों को ये गुण अपने बड़े-बूढ़ों से सीखने चाहिएँ। तभी गृहस्थ का नव-निर्माण होगा। जब तक गृहस्थ के सदस्य स्वार्थी और आरामतलब बने रहेंगे, तब तक गृहस्थी का पुनरुद्धार होना दुष्कर ही नहीं सर्वथा असम्भव है।

शासक और प्रजा—सरकारी कर्मचारियों को वेतन, भत्ता तथा मकान आदि सुविधाएँ उस धनकोष से मिलती हैं, जिसे किसी देश की सरकार टैक्सों के रूप में उस देश की प्रजा से वसूल करती है। इसी कारण प्रत्येक राष्ट्र के सरकारी कर्मचारी उस देश की प्रजा के वैतनिक नौकर हैं। किन्तु यहां इसके विपरीत दूसरी ही दशा दिखाई पड़ती है। यहाँ के सरकारी नौकर अपने आपको प्रजा का नौकर नहीं वरन् मालिक समझते हैं। इसी कारण इने गिने कर्त्तव्यपरायण सरकारी कर्मचारियों को छोड़ शेष कर्मचारी भारत की भोली प्रजा पर मनमाने अत्याचार करते और उसे डांटते-फटकारते हैं, अशिक्षित लोगों से रिश्वत लेते हैं। इस बात को भारतीय सरकार भी स्वीकार करती है कि बहुत से सरकारी महकमों में खुल्लमखुल्ला भ्रष्टाचार होता है और लोग यह सब

कथनी और करनी में जमीन-आसमान का अन्तर हो तो एक दूसरे की गुने भी कैसे ?

धार्मिक गुरुओं तथा समाज-सेवकों ने भी अपने पवित्र काम को एक व्यवसाय बना लिया है। जिन सुधारकों से त्याग और तपस्या की आशा की जानी चाहिए, वे आज लोभ के पीछे बुरी तरह हाथ धोकर पड़ गए हैं। जो आराम साधन अमीरों को भी कठिनाई से प्राप्त होते हैं, वे आज धार्मिक तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए बड़ी सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं। वे बढ़िया से बढ़िया सवारी में बैठते हैं, उत्तमोत्तम भोजन खाते हैं और नाच तमाशों में अपना अधिकांश समय बिताते हैं। ऐसे लोगों से हित के स्थान पर समाज का अहित ही हो रहा है।

इस क्षेत्र में राजनैतिक नेता लोग तो अन्य लोगों से और भी चार कदम आगे हैं। ये जनता का उल्लू बनाकर व हर प्रकार से अपना उल्लू सीधा करने की ताक में रहते हैं। मेरे स्थान पर मेरे एक आदरणीय मित्र पधारे थे। उनका त्याग, निष्पक्षता, सहृदयता और विचारशक्ति असंदिग्ध है। वे कांग्रेस को देश की सबसे अच्छी संगठित राजनैतिक पार्टी मानते हैं। किन्तु कांग्रेस और सरकार की अनुचित बातों की कटु आलोचना करने में भी नहीं चूकते। हमारे एक दूसरे मित्र उनसे बोले—महाशयजी, स्वतन्त्रता के बाद कांग्रेस सरकार ने देश की एकदम कायापलट कर दी है, देश बड़ी तेजी से उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है।

महाशयजी ने उत्तर दिया—"मैं मानता हूँ कि कांग्रेस-सरकार के समय में कुछ दिशाओं में उन्नति अवश्य हुई है, किन्तु इतनी नहीं जितना कि ढोल पीटा जारहा है। स्वराज्य मिला है कुछ गिने-गिने व्यक्तियों को और वे हैं—विधान सभाओं और पार्लियामेन्ट के सदस्य, उसके चारों ओर घूमनेवाले चाटुकार और सरकारी अफसर। जिस ओर देखो उसी ओर रिश्वत और भ्रष्टाचार। पदों का अनुचित लाभ उठाया जारहा है। कांग्रेस पदाधिकारियों में इने-गिने व्यक्तियों को छोड़कर शेष रुपया बटोरने की धुन में हैं। कोई रिश्तेदारों को सरकारी नौकरी दिला रहा है तो दूसरा परमिटें। मैं पूछता हूँ जिन लोगों की योग्यता १००) मासिक कमाने की है उन्हें ५००-७०० या हजार दो हजार मिलें तो यह कहाँ का त्याग है ? सेवा और महात्मा गांधी के सिद्धान्त ताक में उठाकर रख दिए गए हैं। हर एक व्यक्ति की यही कोशिश है कि चाहे जो भी हो अपना स्थान सुरक्षित बना रहे। यदि आज की कांग्रेस को पुरानी अमन सभा, और विधान-सभाओं तथा पार्लियामेंट के सदस्यों को पुराने रायबहादुर और

राव साहब कहा आप तो बिल्कुल ठीक होगा। अंग्रेजी-शासनकाल में वे सरकार विरुद्ध मुंह खोलना पाप समझते थे। आज भी शासन की ठीक आलोचना करना पाप समझा जाता है। इसलिए स्वार्थी लोग सबकुछ जानते हुए भी मुंहपर ताला लगाए बैठे हैं। ऐसे लोग जन-सेवक नहीं बन सकते हैं। पहले सरकारी कर्मचारी घूस खिलाकर उन्नति पाते थे। आज भी उनको उन्नति का एक ही साधन है और वह है—बड़े सरकारी अफसरों तथा नेताओं की खुशामद करना।

हम ऐसी योजनाओं को क्या चाटेंगे, जिनसे जन-साधारण की समस्याएँ हल न हों। आज जन-साधारण रोटी और कपड़े के लिए तरस रहा है। कस्बे के दिनों में १६ १७ रुपये मन अनाज का बिकना कितना दुख विदारक है। भाई साहब, अच्छा था लालटेन जहां से घर नहीं रोशनी रहेगी।' हम बिजली के बिना घरों के तेल के दीये की चमक से अपना काम चला सकते हैं हमारा काम पक्की सड़कों के बिना भी चल सकता है किन्तु अनाज और वस्त्र के बिना कैसे रहें। उन विभाग से वाले जान-बूझकर अनजान न बनें। एक ओर तो नेता लोग और सरकारी अफसर बंगलों में बैठे कूलर हीटरों और बिजली के पंखों का आनन्द लें जाड़े, बरसात और भाद्रमास गरमी और दूसरी ओर जाड़े की पूसी रातों में खून-पसीना एक करनेवाला गरीब मजदूर रात को पेड़ पर पत्ते ओढ़कर भूखा सोने को विवश हो—यह कहां का न्याय और कैसी देश-सेवा है। यह तो अंधेर और अव्यवस्था है।"

हम अपने मित्र के उपरोक्त कथन से अक्षरशः सहमत हैं। मेरे पड़ोस में एक विवाहिता युवती है। उसके तीन बच्चे हैं चौथा पति और पांचवीं सास। पति रोगपीड़ित हुआ। उचित चिकित्सा और भोजन न मिलने के कारण उसे पक्षाघात हो गया। अब उसके लिए हिलना डुलना भी सम्भव नहीं। बेचारी युवती चौका बासन करके बड़ी कठिनाई से १२ रु० मासिक कमाती है। ६) मासिक उसे रहने के मकान का किराया देना पड़ता है। ६) मासिक में वह अपने तीनों बच्चों रोगी पति और अपना निर्वाह किस प्रकार करती है यह विचार मन में आते ही शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

यदि हम न्यायपूर्वक विचार करें तो देश में करोड़ों दीन हीन उस युवती से भी बुरी दशा में मिलेंगे किन्तु इन बेचारों का ध्यान कितने लोगों को आता है। देखा

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

रोशनी आकर रहेगी !

भाग्य की टूटी लडी में जोडकर विश्वास,
हार को मैंने बनाया हर कदम पर जीत।

क्या हुआ जो जिन्दगानी में विकलता है,
और पीड़ा मे दुखी इन्सान पलता है,
रोशनी आकर रहेगी इस अंधेरे में,
एक क्षण को हार जाना भी सफलता है।

इसलिए ही ले हृदय में ज्योति का सम्बल
गा रहा हू मौत में भी जिन्दगी के गीत।

यह सही, मुझको न मजिल का पता मालूम,
और मेरे पाव फूलों से अधिक मासूम,
मुस्कराहट तक हुई है होंठ से नाराज़—
किन्तु मैं फिर भी रहा हू आसुओं में झूम।

आज पथ की मुश्किलों से क्यों डरू बोलो ?
लग रहा है जब मधुर तूफान का सगीत।

चाह मजिल की जिन्हें, वे रुक नहीं पाते,
आपदा के सामने वे झुक नहीं पाते,
नियति कितना ही दबाये आदमी को पर-
चिन्ह जीवन के कभी भी लुक नहीं पाते।

राह हो प्रतिकूल कब परवाह है उनको,
हो विधाता भी भले ही भाग्य के विपरीत।

श्री शेरजंग गर्ग

भ्रष्टाचार

[४]

'नवभारत टाइम्स' के सौजन्य से

व्यक्तित्व-निर्माण में हास्य का योग

श्री रिषभदास रांका
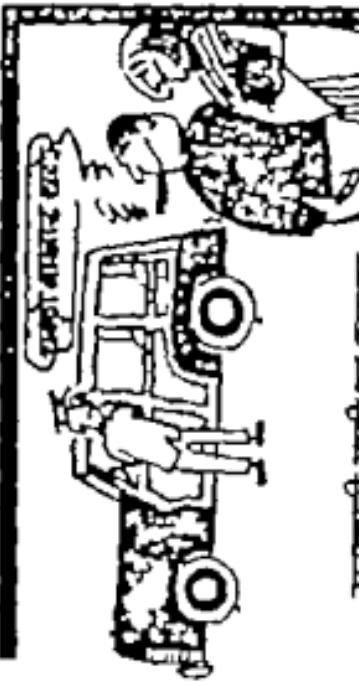
व्यक्ति का निर्माण कुशल मार्गदर्शक मिलने पर सहज और आसान होता है। मानव-विकास में अनुकरण का बहुत बड़ा स्थान है। व्यक्ति दूसरों से बहुत लेता है—शिक्षा पाता है। शिक्षा पाने के कई मार्ग हैं। सबसे अच्छा मार्ग व्यक्ति के निर्माण के लिये वह माना जाता है जिसमें उसकी सुप्त शक्तियों को जागृत कर कार्यक्षम बनाया जाता है। काम करते करते जो शिक्षा मिलती है वह अधिक उपयुक्त और हितकर होती है। कई लोग काम को सबसे बड़ा गुरु मानते हैं, और ऐसा दिखाई देता है कि जिन्होंने काम करते करते शिक्षा पाई है, वे जीवन में ज्यादा सफल सिद्ध हुये हैं।

किसी काम को करते-करते मिलनेवाली शिक्षा जीवन में अधिक उपयोगी होती है, फिर भी उसे प्राप्त करने के लिये अधिक प्रयत्न करना पड़ता है, ठोकरें खानी पड़ती हैं। प्रबल पुरुषार्थ और धीरज के बिना इस प्रकार की शिक्षा मिल नहीं पाती। कई लोग बीच में ही निराश हो जाते हैं। कइयों के मन पर तो इसकी प्रतिक्रिया भी होती है। इसलिये गुरु को भारतीय संस्कृति में विशेष आदर का स्थान दिया गया है। यहा तक कि उसे भगवान से भी कई जगह अधिक आदर दिया गया है।

आजकल कोई किसी से मार्गदर्शन चाहे या न चाहे, पर बिना मांगे उपदेश देनेवालों की कमी नहीं है। व्यक्ति के संस्कार, शील, स्वभाव, वृत्ति और शक्ति देखकर उसका निर्माण करनेवाले गुरु बहुत कम पाये जाते हैं। यह भी एक कारण है गुरुओं के सम्बन्ध में जो आदर रहना चाहिये वह नहीं पाया जाता। जिन्होंने जीवन में सफलता प्राप्त की है, उनकी कथनी और करनी में अन्तर नहीं होता। जो पात्र देखकर योग्य मार्गदर्शन करते हैं और वह भी इस प्रकार हँसते-हँसते कि

विद्यार्थी ऐसा अनुभव करे कि वह यह बात जानता है—यह उसके लिये है अपने योग्य है। इस प्रकार की शिक्षा बोझ नहीं बनती बल्कि व्यक्ति का योग्य निर्माण करने में सहायक बनती है।

सचमुच ऐसे गुरु या मार्गदर्शक मिलना बड़े ही सौभाग्य की बात है। फिर शिक्षा देने के दो प्रकार हैं। एक तो मार्ग है—भय का। गुरु का शिष्य पर इतना रोब रहता है कि वह किसी प्रकार का विचार न कर गुरु के कहे अनुसार करता जाता है। इससे भी शिक्षा तो मिलती है पर इस शिक्षा में विचार का सहयोग न होने से एकांगी है उससे व्यक्तित्व का विकास अधूरा ही होता है। इसलिये अनुभवियों का कहना है कि वही शिक्षा व्यक्ति का ठीक निर्माण करती है जो हँसते हँसते दी जाती है।

हम किसी मराठी नौकर को जो काम ठीक करना नहीं जानता, गुस्सा होकर काम के लिये कहें उससे उतनी अधिक भूलें होंगी पर इसके विपरीत यदि उसे ठीक हंसकर समझाकर कहें तो वह अधिक ध्यान देकर ठीक से काम करेगा।

बच्चों को डरा-धमकाकर किसी काम की मनाही करने की अपेक्षा यदि हम वही बात हँसकर प्रेम से कहेंगे तो बच्चे बात मान जायेंगे।

इसलिये व्यक्तित्व के निर्माण में हास्य का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिन्हें हँसी में सहजभाव से शिक्षा देनेवाले गुरु मिल जाते हैं वे सरलता से अपना विकास कर लेते हैं। जिन्हें अपने विकास के लिये मार खानी पड़े धौंस सहनी पड़े या रोष बर्दाश्त करना पड़े ऐसे व्यक्ति भी कई बार विकास तो कर लेते हैं पर जो हँसते-हँसते सिखाते हैं उनकी बातें अमूल्य ही हैं।

एक बार एक बड़ी फर्म में काम करनेवाले कार्यकर्ता की भूल से फर्म को काफी हानि उठानी पड़ी। जब वह संचालक के सामने गया, संचालक हंसकर बोले—कोई परवाह नहीं। आज तुम्हारे हाथ से फर्म का नुकसान हुआ है तो कल तुम्हारे ही द्वारा लाभ भी होनेवाला है जाओ। इस घटना से जो पाठ मिला, उसका ठीक उपयोग करो तुम्हें निःसंदेह सफलता मिलेगी और तुम्हारे हाथ से इतना लाभ होगा कि यह हानि उसके सामने बहुत ही छोटी रहेगी। हुआ भी ऐसा ही। उस व्यक्ति ने फर्म को लाखों रुपये की कमाई कर दी। ऐसे दूरदर्शी व्यक्तियों द्वारा ही व्यक्तित्व का सच्चा निर्माण होता है जब किसी व्यक्ति से भूल होती है तो वह उसे महसूस करता है। पर जब उस भूल को कोई बताने को या उसके लिये उस पर नाराज होने की कोशिश करता है

तब या तो भूल पर्या हुई इसके बारे में वह दलील देगा या वह प्रयत्न करेगा कि वह भूल को छिपा दे। इसलिये अच्छा मार्ग यह है कि हम हँसकर उसके विषाद को कम करें ताकि वह शिक्षा ग्रहण कर सके।

मेरा यह सौभाग्य रहा है कि मुझे कुछ ऐसे मार्गदर्शक मिले जिन्होंने हँसते-हँसते ही मुझे बहुत कुछ दिया। गांधीजी, विनोबा, केदारनाथजी, किशोरलाल भाई तथा जमनालालजी (बजाज) ऐसे लोगों में से ही थे, जिन्होंने हँसते हँसते शिक्षा देकर मार्गदर्शन कर अनेक व्यक्तियों के व्यक्तित्व का निर्माण किया है। जिन व्यक्तियों को उनसे लाभ मिला, व्यक्तित्व का निर्माण हुआ, उनमें से एक मैं भी हूँ। यद्यपि मैंने उनसे हँसते हँसते सीखा, पर मैं अबतक उनकी सीख को जीवन में पूरी तरह नहीं उतार पाया। इसलिये कभी कोई काम बिगाड़ देता है तो कई बार सन्तुलन खो बैठता हूँ। इससे बहुत बार भयानक परिणाम भी भुगतने पड़े हैं। इस दोष से मैं ठीक तरह से परिचित हूँ, लेकिन मैं अपनी आदत को बदल नहीं पाया। आज इस लेख के निमित्त जो चिन्तन हो पाया है, सोचता हूँ कि मैं भी इससे अपने जीवन में परिवर्तन कर सकूँ और किसी की भूल हो जाय तो हँसते हुए उस भूल को बताने की आदत बनाऊँ।

आय से व्यय कम रखें। ऋण न लें। मितव्ययिता, सावधानी, आत्म-त्याग से काम लें। इन नियमों का पालन कठिन हो सकता है, पर अन्त में इनके पालन से आत्म-सन्तोष के रूप में भारी लाभ मिलता है।

कई बार ऐसा देखा जाता है कि हम किसी से भलाई की बात कहना चाहते हैं, पर यदि वह ठीक तरीके से न कही जाय तो वह शत्रु बन जाता है और उपकार-कर्त्ता की हानि करने तक में नहीं सकुचाता। इसलिये व्यक्तित्व के विकास में हँसते हुए सिखाने का तरीका सर्वोत्तम है। इससे सीखने और सिखानेवाले दोनों का हित होता है।

हँसने से जैसे सामनेवालों को लाभ होता है वैसे ही जो हँसता है उसके श्रम का परिहार होता है और कार्य बोझरूप नहीं बनता। सचमुच निर्दोष और मुक्त हास्य वहीं देखने को मिलता है, जिन व्यक्तियों का सर्वांगीण विकास होता है। जिनके राग, द्वेष, कषाय मन्द होते हैं। गांधीजी, विनोबा, तथा महर्षि कर्वेजी के मुक्त हास्य का कइयों को रसास्वादन मिला है। मैं भी यह रस स्वाद ले सका हूँ। इसी कारण पूरी तरह जान सका कि व्यक्तित्व के निर्माण में हास्य का स्थान महत्त्वपूर्ण और आनन्ददायक है जैसे फूल में सुगन्ध।

प्रतीत होता है कि मानव-समाज में प्रपंच स्वार्थ और आडम्बर भरे पड़े हैं और फिर भी हम परमार्थी, पवित्र और पुण्यात्मा होने का दम भरते हैं।

ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं, सुसज्जित आरामदेह बँगलों में रहनेवाले तथा रँगरेलियाँ मनानेवाले सेठ-साहूकार, पदाधिकारी तथा नेता होने का दम भरनेवाले व्यक्ति यदि हृदय पर हाथ रखकर उपरोक्त बातों पर विचार करें तो उनके हृदय से एक ही आवाज आयेगी और वह यह कि वे समाज की दृष्टि में अनुचित तथा स्वार्थमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। जब तक समाज में ऐसी हानिकर परम्पराएं चलती रहेंगी, तब तक समाज का नव-निर्माण होना असम्भव है। समाज का नव-निर्माण तभी होगा जब समाज के निरर्थक अंगों अर्थात् निठल्ले लोगों को महत्त्व न देकर परिश्रमी तथा पवित्र लोगों को समाज का मुख्य उपयोगी अंग समझा जायगा और उनका समाज में उचित स्थान होगा। किन्तु नैतिक स्तर पर व्यक्तिगत निर्माण किये बिना समाज का नव-निर्माण होना सर्वथा असम्भव है। और व्यक्तिगत निर्माण भी तभी सम्भव है जब मनुष्य पराश्रयी न बनकर परिश्रमी, पवित्र और स्वावलम्बी बने।

मुनिश्री नगराजजी

विश्व-शान्ति का विचार इस युग में बहुत आगे बढ़ा, किन्तु अणु-अस्त्र के दानव ने उसे एक साथ समुद्र के किनारे तक धकेल दिया है। किस क्षण में वह उसे उस अनन्त सिन्धु में डुबो दे यह सोचा नहीं जा सकता। इसी वेदना में वैज्ञानिक मूर्धन्य प्रो० अल्बर्ट आइंस्टीन की अन्तिम आह से मानव-समाज के लिये यह सन्देश निकला था—"हम मानव होने के नाते अपने मानव बन्धुओं से अनुरोध करते हैं आप अपनी मानवता को याद रखें और शेष सब भूल जायें। यदि आपने ऐसा किया तो आपके सामने स्वर्ग का एक अभिनव द्वार खुल जायेगा और यदि आप

ण नहीं कर सके तो संसार को सार्वभौम
न्युक्ल खतरा आपके सामने होगा।"

आज वैज्ञानिकों के हृदय सर्वाधिक
भय-कातर हैं, क्योंकि वे एक प्रलयकारी
अस्त्र की विभीषिका को समक्ष देख रहे हैं।
जो न समझते हैं वे इस उदाहरण से समझें
कि सन् १९५२ में मार्शल द्वीप समूह के
अन्तर्गत उद्जन बम का परीक्षण हुआ।
दो मिनट बाद काले सफेद भयंकर बादल
चालीस हजार फीट ऊंचाई तक पहुंच
गये। ये बादल १० मील ऊंचे और १००
मील के फैलाव में हो गये। जिस द्वीप में
यह परीक्षण हुआ, वह समग्र द्वीप ही सदा
के लिये मिट गया। यह तो तात्कालिक
दुष्परिणाम हुआ। अणु-अस्त्रों से विकीर्ण
रेडियो सक्रिय धूलि से जो दुष्प्रभाव होने-
वाला है, वह इन आयेदिन होनेवाली
ज्ञानिकों की भविष्यवाणियों में देख सकते
हैं। नोबुल पुरस्कार विजेता रसायन शास्त्री
वैज्ञानिक डा० पालिंग ने बताया है—
"यदि ये परीक्षण चालू रहे तो संसार के
लगभग १० लाख व्यक्तियों की आयु
५ से १० वर्ष घट जायेगी।" उन्होंने यह
भी बताया है—"आगामी बीस पीढ़िया
तक चालीस लाख बालकों के मस्तिष्क
व शरीर विकृत हो जायेंगे।" और भी
अनगिन व्याधियाँ इस विपाक्त अणु-विकि-
रण से सम्भावित हैं। फिर भी अणु-अस्त्रों
के प्रयोगों की घुड़दौड़ चालू है। सच
बात तो यह है भौतिक विद्या सिन्धु के
मन्थन से अणु बम रूपी जहर निकला है
और इन प्रयोगों के द्वारा मनुष्य मनुष्य को
जहर पिलाने चला है।

प्राचीन किंवदन्ती है—देव और
असुर ने मिलकर मेरु की मथनी से समुद्र
को मथा। समुद्र से प्राप्त होनेवाले चौदह
रत्नों में से एक हलाहल भी था।
पर उसे तो अकेले महादेव ही पी गये थे।
आज इस भौतिक विद्या-सिन्धु का मंथन
करनेवाले गोरे काले अनेक लोग हैं, परन्तु
इस अणु बम रूपी जहर को पचा जानेवाला
एक मानव भी नहीं है। यह सब देखते
हुए अणु अस्त्र के प्रयोगों की अन्तर्राष्ट्रीय
घुड़-दौड़ बन्द नहीं हुई, तो मानव जाति
का अस्तित्व ही संदिग्ध हो जायेगा,
क्योंकि इस अणु युग ने मानव जाति को
इस परिणाम पर पहुंचा दिया है कि या
तो वह शीघ्र ही इन प्रवृत्तियों से मुड़
जायेगी या वह अणु-अस्त्रों के धूलि-कणों
में एक साथ उड़ जायेगी। अब यह स्थिति
नहीं रही कि एक बड़े राष्ट्र को पराजित
कर दूसरा सकुशल जीवित रहे। आइंस्टीन
ने कहा था—"अब हमारे सामने दो ही
विकल्प हैं या तो हम एक साथ जीयेंगे या
एक साथ मरेंगे।"

प्रायः अणु-शक्ति सम्पन्न सभी राष्ट्र

ऐसे पुल अवधि पूर्व टूट जाते हैं और
पार कर पैर रखनेवाले व्यक्ति भी
... एक दुर्घटना में प्राण खो देते हैं।
... कोई ऐसा विषय हो भी सकता है जो
... की संभावना से परे हो ? इस
... में मैंने देश के उच्चतम वैज्ञानिकों से
... विचार विनिमय किया है। उन्होंने
... पर बताया—अणु-अस्त्रों का संग्रह वास्तव
में ... खतरे से खाली नहीं है। साव-
धानियों के साथ भी दुर्घटना की सम्भावना
तो बनी ही रहती है। इस स्थिति में
... स्पष्ट हो जाता है कि अणु अस्त्रों का
... कर हम सुरक्षित बने हैं या अरक्षित।

अब सोचना यह है कि इस आसुरी
... का शमन कैसे हो ? इस शक्ति के
... प्रभावक हैं वैज्ञानिक न कि राजनैतिक।
... नैतिकों ने तो इसे खरीदा है और अब
... माना उपयोग कर रहे हैं। मानवता के
... के लिये वैज्ञानिक अणु-अस्त्रों के सर्जन
से मुह मोड़ लें तो अवश्य ही राजनैतिक कोरे
... रह जायेंगे। पर अबतक की स्थिति तो
महाभारत कालीन युग की याद दिला रही है।
भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि यह मानते हुए भी
कि ... का पक्ष अन्याय पर आश्रित
है—उससे ... ही रहे। ... धाप
... पाण्डुपुत्र सत्य पर हैं यह गुनगुनाते भी
... और ... के ... उनके साथ
... भी रहे। ... न हुआ होता तो
सम्भवत महाभारत न रचा जाता।

वैज्ञानिकों की भी यही स्थिति है।
आइन्स्टीन से लेकर सभी प्रमुख वैज्ञानिक
अणु-अस्त्र विश्व-शान्ति और मानव जाति
के लिये खतरनाक है, यह गुनगुनाते हुए
भी उन राज्याश्रयों के प्रलोभन में बंधे
उनके निर्माण में तो संलग्न हैं ही। आज
अपेक्षा है बड़े-बड़े वैज्ञानिक अपने सौ-सौ
स्वार्थों को ठुकराकर भी यह घोषणा करें कि
मनुष्य होने के नाते हम इन मानव संहारक
अणु-अस्त्रों का निर्माण नहीं करेंगे।

आश्चर्य तो यह है कि अबतक भी ऐसे
लोग हैं जो अणु-अस्त्रों को विश्व शान्ति
का एक महान् साधन सिद्ध करते हैं। डा०
ओपनहीमर का कहना है—दो भयंकर
बिच्छू यदि एक बोतल में बन्द कर दिये
जाए तो सहज ही यह सोच सोच कर एक
दूसरे से डरते रहेंगे और यदि एक
दूसरे को काटेगा तो दूसरा भी काटे बिना
नहीं छोड़ेगा और यों एक दूसरे की मृत्यु
का 'समान और निश्चित अवसर' है।
इस उदाहरण से यह समझ लेना मूर्खता
होगी कि एक बिच्छू दूसरे को नहीं
काटेगा। परिणामत चाहे दोनों ही मृत्यु
के मुंह में क्यों न चले जाएँ। मनुष्य भी
बिच्छू से कम जहरीला नहीं है। वह भी
परिणाम को बिना सोचे समय आने पर
अपने साधनों का उपयोग करेगा ही, ऐसा

मानव जाति नहीं मुड़ी तो उसे सार्वभौम मृत्यु का खतरा होगा, कोई यथार्थता मानते हैं ?

(२) क्या आपने सोचा है—आणविक-अस्त्रों के निर्माण, सरक्षण व प्रयोग-विधि किसी दिन एक भी दुर्घटनात्मक विस्फोट हुआ तो आपके अपने देश की क्या स्थिति होगी ?

(३) अणु अस्त्रों का निर्माण आप रक्षात्मक बुद्धि से कर रहे हैं या आक्रमणात्मक बुद्धि से ? यदि रक्षात्मक बुद्धि से कर रहे हैं तो क्या आप यह शपथ लेकर अन्य राष्ट्रों को भयमुक्त करेंगे कि हम अणु-अस्त्रों के आक्रमण में पहल नहीं करेंगे ?

(४) अणु अस्त्रों के प्रयोगो द्वारा ससार के वातावरण को रेडियो क्रियात्मक कर क्या आप मानव जाति के प्रति महान् अपराध नहीं कर रहे हैं ?

(५) यदि सभी राष्ट्र यह प्रतिज्ञा करते हो कि हम अणु अस्त्रों को आक्रमण मे पहल नहीं करेंगे तो तब आप भी उनके साथ होगे न ?

●

लघु कथा—

बूचड़ का कमाई

श्री राघी

बहुत वर्ष पहले की बात है, उस दिन मैंने अपने नगर के बूचड़खाने का निरीक्षण किया।

हज़ार से ऊपर गायें और बकरियाँ, जिन्होने बुढ़ापे के कारण दूध देना बन्द या कम कर दिया था, अलग अलग पंक्तियों में खड़ी थीं और उनके शरीरों को काटने वाली लोहे की पैनी मशीनें उनके ऊपर झूल रही थीं।

मशीन युग की यह साफ सुथरी और सुगम व्यवस्था देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और बूचड़खाने के मालिक को मैंने इसके लिए बधाई दी।

पशुओं की पंक्तियों के बीच घूमते हुए अचानक मेरी दृष्टि एक बूढ़ी गाय पर पड़ी वह मेरे एक पड़ोसी मित्र की गाय रह चुकी थी और उसका दूध मैं भी अनेक बार पी चुका था।

अचानक मैंने देखा कि मैं भी एक गाय हूँ और उसी गाय की बगल में मैं भी एक रस्सी के सहारे बधा हुआ हू। सिर पर झूलती मृत्यु और पीड़ा के भय से मैं कांप उठा।

लेकिन एक देवता से कुछ परिचय-मित्रता की राह देवताओं के दरबार में मेरी पहुच थी। मैंने तुरन्त अपने मित्र देवता का आवाहन किया और उससे

प्रार्थना की कि वह तुरन्त ही मेरा अनुरोध देवताओं तक पहुंचाकर इस बूचड़खाने की मशीनों को इसी क्षण नष्ट करा दे और यहां के सभी पशु जब बाहर निकल जावें तो इस इमारत को आग लगवा दे।

मेरी प्रार्थना का प्रभाव कहो तो आप इसे संयोग ही समझ लीजिये उस समय घनों पर कड़कती हुई गाज अन्त में पशुओं के शरीरों तक नहीं उतरी। बूचड़खाने के कर्मचारियों ने कहा कि मशीनों को चलानेवाली बिजली बिगड़ गई थी।

मैं पुनः अपने मानव शरीर में लौट आया था और बूचड़खाने के मालिक का हाथ पकड़े उसके द्वार पर पहुंच गया था। अपनी आन्तरिक सफलता पर मैं मन ही मन बहुत प्रसन्न था। मुझे विश्वास था कि स्वीकृत दैवी विधान से आज की रात यह बूचड़खाना अवश्य ही आग की लपटों में भस्म हो जायगा।

"मैंने यह बूचड़खाना दिखाने के लिए आपको विशेष रूप से इसलिए निमन्त्रित किया था कि मैं इसकी आमदनी में आधा साझा आपको देना चाहता हूं। आप एक माने हुए फकीर हैं और मेरे बुजुर्गों का यह रवैया रहा है कि अपने कारोबार की आमदनी का आधा हिस्सा फकीरों को बराबर देते रहे हैं। इस बूचड़खाने का मुनाफा माहवार चार हजार रुपया रोजाना का है।" बूचड़खाने का मालिक कह रहा था।

"यह हजार मासी मेरे लिए तीन हजार रुपया प्रतिदिन।" मैं सोचने लगा।

घर पहुंच कर अपने मित्र देवता का मैंने फिर आवाहन किया और अपना संचित पुण्य लगाकर देवताओं के पिछले आदेश को रद करा दिया।

चौथे वर्ष मैं नगर का सबसे बड़ा—सरकार को सबसे अधिक आयकर देनेवाला व्यापारी घोषित किया गया। नगर सभा ने मेरा नाम नागरिकों के एक से काटकर दूसरे अति सम्मानित रजिस्टर में लिख दिया था।

सभी नगरवासियों ने मेरे सम्मान में एक बड़ा भोज दिया।

मेरा मित्र देवता भी इसी अवसर पर मुझे अपना अन्तिम प्रणाम देने आया और बोला:

"देवताओं ने भी तुम्हारा नाम अपने एक रजिस्टर से काट कर दूसरे में लिख लिया है। उसके अनुसार यह आवश्यक है कि तुम परलोक में अपने निवास के लिए यहां कमाई हुई चांदी-सोने की सम्पत्ति को मृत्यु के समय अपने साथ ले जाने की व्यवस्था करो।"

निर्माण किसका ?

बालकों का या माता-पिताओं का

श्री जमनालाल जैन

बालक और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं होता। ब्रह्म को हम मानें या न मानें, लेकिन बालक के ब्रह्मरूप से इन्कार नहीं किया जा सकता। हर बालक में एक विश्व समाया हुआ है। विश्व की बड़ी-से बड़ी भौतिक शक्ति बालक के आगे तुच्छ है। महान् से महान् आत्मिक शक्ति को अपनी छवि से मुग्ध करने की अद्भुत शक्ति बालक में होती है। बालक देश, काल, जाति, धर्म और ग्रन्थों की सीमाओं से आबद्ध नहीं होता। शक्ति में वह ईश्वर के समकक्ष है और क्रिया में वह सूर्य-चन्द्र को भी मात कर सकता है।

दार्शनिकों का जो निर्गुण है, वह बालक के सिवा कौन हो सकता है? वह नितांत निरपेक्ष, नितान्त निर्लिप्त और नितांत निर्गुण पैदा होता है। उसके जैसा वीतरागी, अपरिग्रही और प्रेमदानी कहां मिल सकता है?

माता-पिता भले ही समझें कि एक बालक को जन्म देकर उन्होंने बालक के निर्माण का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया है। लेकिन ऐसा लगता है कि बालक उनका गुरु बन गया होता है। अगर हर मां-बाप बालकको गुरु मान लें तो वे अपना चरित्र तो सुधार ही सकते हैं। अहिंसा, संयम और तप की शिक्षा जितनी अच्छी एक छोटा सा बालक देता और दे सकता है, उतनी बड़े-बड़े धर्म-ग्रंथ और धर्म-पुरुष अब तक नहीं दे पाये हैं।

वृत्तियों और आकांक्षाओं का नियन्त्रण भी बालक ही सिखाता है। मधुर वाणी, सत्य व्यवहार और प्रेम का पाठ भी बालक ही सबसे अच्छा दे सकता है और, ऐसा कौन सा काम है, गुण है जो बालक हमें नहीं सिखाता या सीखने के लिये मजबूर नहीं करता। फिर भी हमारे देश, भारत के लोगों की शिकायत है कि भारत के बालक उतने विकसित नहीं हैं, जितने अन्य देशों के। भारत के बालक अपेक्षाकृत दुर्बल, अस्वस्थ, अज्ञानी और दरिद्र हैं। यह बात ठीक हो सकती है लेकिन इसका उत्तरदायित्व किसका है?

हर घर में बच्चे होते हैं। बच्चे बड़े क्रियाशील होते हैं, जिज्ञासु होते हैं। कुछ न कुछ वे किये बिना नहीं रह सकते।

और उसी समय बच्चा आकर अगर किसी चीज के लिये मचलने लगे, तो अपने हाथ पर काबू रखना क्या मामूली बात है? अजी साहब, हम उस समय एक शेर और हाथी को काबू में कर सकते हैं, पर अपने गुस्से पर काबू नहीं रख सकते।

जब बच्चे प्रश्नों की झड़ी लगाते हैं तो क्या घर की कोई भी चीज छूट जाती है? अगर वह हमसे सुन ले कि घड़ी कारखाने में बनती है, तो वह अगला प्रश्न यह भी कर सकता है कि क्या आदमी भी कारखाने में पैदा होता है? एक चार-पांच बरस के बच्चे का यह प्रश्न मूर्खतापूर्ण नहीं होता। वह देखता है कि कुछ आदमी उससे बहुत बड़े हैं, कुछ उससे बहुत छोटे। ये सब छोटे बड़े क्यों होते हैं, कैसे होते हैं और होते हैं तो होते हों, पर आखिर में आते कहाँ से हैं? मां बाप भले ही इस प्रश्न को हंसी में उड़ा दें, पर बालक के लिये यह वैज्ञानिक समस्या है। उसका समाधान वह चाहता है। एक बालक के बारे में हमने कहीं पढ़ा है कि जब उसे इस प्रश्न का समाधान नहीं मिला तो वह घड़ियों को फोड़ने लगा। उसने अनेक घड़ियां फोड़ फोड़कर ठीकरी बना दी।

हम क्या खाते हैं, कैसे खाते हैं, कब-कब खाते हैं, खाते समय हम कैसे बैठते हैं, कौर कैसे तोड़ते हैं, ऊँगलियाँ कैसे रखते हैं, चबाते कैसे हैं, खाने में कितना समय लगाते हैं, पानी कितना और कैसे पीते हैं ये सारी बातें वह बराबर देखता है और हूबहू नकल करके हमें अचरज में डाल सकता है।

हम कपड़े पहनते हैं लेकिन कपड़े पहनने की हर प्रवृत्ति को वह बारीकी से देखता है। देखकर उसकी क्रियाशीलता भी जाग्रत हो जाती है और फिर वैसा वह करके ही छोड़ता है। माँ बाप को भी यह भान रह सकता है कि वे मां बाप हैं। बालक इतना संकीर्ण नहीं होता। जब वह हमसे बात करता होता है तो नाते-रिश्ते भूलकर बात करता है और जो जी में आता है, पूछ बैठता है। हम ही हैं जो उसकी हर बात का ठीक-ठीक उत्तर दे नहीं पाते या जान बूझकर देना नहीं चाहते।

छोटे से छोटा बालक सांप को मजबूती से पकड़ सकता है, क्योंकि वह डर जानता ही नहीं। चींटे को पकड़कर मुंह में रख सकता है और वह काट ले तब भी निकलते खून को देखकर हंस सकता है। आप और हम ऐसा नहीं कर सकते।

जब बालक किसी काम की धुन में लग जाता है, तो मक्खी की तरह उसके पीछे पड़ जाता है। उसके लिये वह खाना-पीना तक भूल जाता है। मां को ऊन बुनते या चरखा कातते देखकर चार पांच

बरस का बालक मधु की चीजों से बुनाई सीखने का उपक्रम करता है। उससे कहा जाय कि पहले खा लो बेटा, तो वह कहता है अभी भूख नहीं लगी है। वह अपने हाथ से काम करना, स्वावलम्बी बनना, परिश्रमी बनना पसन्द करता है। लेकिन माँ-बाप अगर धनी हुए तो बड़े वे ऐसे कामों को प्रोत्साहन नहीं देते। गरीब हुए तो निरा काम ही कराते हैं। इस तरह बच्चे या तो कर्म-शून्य ज्ञानी बनते हैं या ज्ञान शून्य कर्मी। हर घर में आज यही हो रहा है।

बालक वैर नहीं जानता। जब वह जानवरों के बच्चों के साथ मिट्टी-पानी के साथ खेल लेता है तो क्या वह आदमी के बच्चे के साथ नहीं खेल सकता! वह लड़ता है पर तत्काल भूल जाता है। पानी में लाठी की लकीर कभी टिक पाती है! बच्चे की लड़ाई पानी की लकीर होती है। लेकिन माँ बाप उस पर अपने विचार लाद देते हैं। किसी पड़ोसी से मन-मुटाव हुआ तो वे चाहेंगे कि उनके बच्चों के साथ उनका बच्चा न खेले।

बच्चा जाति से दूर रहता है। वह जातियाँ समझता ही नहीं। वह भेद जानता ही नहीं। लेकिन माँ बाप का व्यवहार बतायेगा कि एक बाप अगर हिन्दू मुसलमान के बच्चे [illegible] पा ले तो हिन्दू बच्चे की माँ पागल हो उठती है आपे से बाहर हो जाती है और बच्चे के दिमाग में ठूँस देना चाहती है कि अमुक का अन्न खाने से 'पाप' होता है। यह संस्कार फिर क्या जीवन भर मिट सकता है!

बड़ी-बड़ी बातों को बालक भले ही न समझे लेकिन घर में रात-दिन होनेवाले व्यवहार को वह बड़ी बारीकी से देखता है। माँ-बाप के व्यवहार को देखते-देखते उसमें बात बनाने या बहाने बनाने की आदत हो जाती है और कई बार तो उनकी ऐसी हरकतों से हम दुखी भी हो जाते हैं। अब बताइये, जवान होने पर वह बालक अगर सत्य व्रत का पालन नहीं कर सकता, तो इसमें उसका क्या दोष!

जिन घरों में मांस-मदिरा का सेवन नहीं होता उनके बच्चे भी इन चीजों से बचे होते हैं यानी इस मामले में वे पूरे अहिंसक होते हैं। लेकिन क्या माँ-बाप बच्चों को अहिंसा का पाठ देते हैं! माँ बाप का अधिकांश विश्वास तो हिंसा में ही रहता है। जब बच्चा समझाने से नहीं मानता, तो वे तमाचे या छड़ी का उपयोग करते हैं। "दण्ड" का यह प्रयोग अच्छा नहीं कहा गया है! अब हम कितने ही बड़े अहिंसक क्यों न हों बच्चे को हिंसक ही बनाते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यही है कि अहिंसा हमारे जीवन में सर्वांगीण

ानी और उसे हम एक संकुचित अर्थ ीग्रहण कर रहे होते हैं। बालक के ार धोखा है।

शास्त्रों के और धर्म पुरुषों की वाणी ंयम से अधिक शक्तिशाली संयम का ठ बालक से मिलता है। एक बच्चा ीमार हो तो मा बाप की ताकत नहीं कि ी परिष्ठ, मिष्टान्न या चटपटी चीजें ाकर खा सकें, पर्व त्योहार उत्सव मना ां, अपने शौक पूरे कर सकें। उसके ामने मां बाप ऐसी कोई क्रिया नहीं कर ते जो संयम में बाधक हो। सिरके नीचे र्म ग्रंथ को रखकर यह सब किया जा सकता है, जो एक बच्चे के सामने हम रगिज नहीं कर सकते।

बच्चा चोरी से परिचित नहीं होता। ा-बाप अगर सावधान हैं और किसी की ी चीज उनके हाथ से घर में स्थान नहीं पा सकती तो बच्चे को अचौर्य का पाठ देने की जरूरत नहीं है। लेकिन अक्सर माता-पिता सावधानी गवाकर व्यवहार करते हैं। बच्चे के लिये क्या कंकरी और क्या हीरा? उसके लिये दोनों समान हैं और खेल खतम होने पर तो वह दोनों को फेंक देता है। वह चोरी का पाठ बाहर से नहीं सीखता। क्या वह हर क्षण नहीं देखता कि माता-पिता अपनी हर वस्तु को पेटी-ताले में बन्द रखते हैं, घर पर भी ताला रखते हैं और जरा देर के लिये किसी चीज के खो जाने पर शोर गुल मचाते हैं कि 'कहाँ चली गयी, कौन ले गया, चुराकर।' ये ताले-चाबी ही चोर बनाने के कारखाने हैं। चोर से सावधान रहना भी चोरी का ही एक प्रकार है।

अनेक तरह के शृंगार और वैभव के मूल में अशील ही होता है। वैभव और विलास के वातावरण में पलनेवाले बालक से यह आशा कैसे की जा सकती है कि वह उसके परिणाम से मुक्त रहेगा। हर घर में वैभव भले ही न हो—शृंगार की, वैभव की अतृप्त आकांक्षाएं तो प्रकट होती ही हैं। शयनकक्ष में या बैठक में टंगी अनेक प्रकार की तस्वीरें और आज के युग में मिलनेवाले अनेक प्रकार के कलेंडर तो बालक देखता ही है। चार वर्ष का बालक प्यार की परिभाषा भले ही न जाने, पर प्यार की प्रक्रिया को तो अपनी आँखों से देखता ही है। अब हम कितने ही रूदार संतोषी क्यों न हों इस ओर से हम बेखबर हैं कि बच्चा हमारे कमरों से, कमरे के वातावरण से क्या सीख रहा होता है। एक ओर तो वह उन तस्वीरों और कलेंडरों से विलास का पाठ सीखता है, दूसरी ओर हम लोग इतने पुराण पंथी या डरपोक होते हैं कि उस विषय का सांगोपांग ज्ञान भी नहीं देना चाहते। परिणाम वही निकलता है

बढ़ो बढ़ो बढ़ो क्योंकि जीवन की धार सदा आगे ही आगे बहती चली जाती है।

—काकाश्री

को नहीं निकलना चाहिये। असल बात यह है कि पारस्परिक सहायता का मन लिये हुए लोग भी मानसिक दृष्टि से अछूत होते हैं और अपनी मर्यादा को नहीं समझते। वस्तुतः वे बच्चों के सामने अपने को अनुभव ही नहीं करते।

त्याग का पाठ बालक क्या जन्म मात्र शिक्षाओं से सीखे, जो आये दिन धनवान और तीव्र लोगों के यहाँ अपनी नाक रगड़ा करते हैं या उनकी मानपत्र में खूब प्रशंसा एक लिखे रहते हैं। यों का ही यह हाल नहीं है। समाज सेवा के क्षेत्र में भो तो यही नजारा है। सभापति वह बनता है जो संस्था को चन्दा दे सके। त्यागी का भी सम्मान होता है, पूजा होती है, किन्तु उसके त्याग के मूल में भी सम्पन्नता की शक्ति निहित होती है। पूँजी की पूजा को अपनी आँखों देखनेवाला बालक अकिंचनता को कैसे महत्व दे सकता है।

देश में जो नैतिक-क्रान्ति आध्यात्मिक क्रान्ति लाना चाहते हैं, उनको पहले से सोचना होगा कि यह क्रान्ति मूलतः कहाँ से आरम्भ हो सकती है। असल में क्रान्ति का अग्रदूत बालक होता है—वह स्वयं क्रान्ति होता है। उसके निर्माण का उत्तरदायित्व अपने पर समझने की अपेक्षा अगर हम यह समझें कि हमारे निर्माण की चाबी यही है तो हमारा ख्याल है कि क्रांति के लिये हम युगों की प्रतीक्षा करते हैं। वह मिनटों में सम्पन्न हो जाय। नैतिकता बाहर से नहीं थोपी जा सकती वह तो स्वभावतः ही हो सकती है।

बच्चों को हमारे कारण न जाने कितना भारी नुकसान होता रहता है फिर भी हम दकियानूसी नहीं पाये जाते। बच्चों का हमारे कारण न जाने कितना नैतिक पतन होता है फिर भी हम मनमानी करवाने में गौरव का अनुभव करते हैं। बच्चों को हमारी लापरवाही के कारण न जाने कितने अज्ञानान्धकार में रह जाना पड़ता है, फिर भी हम मानते रहते हैं कि हम ही उनके विधाता हैं।

जो माँ-बाप एक बच्चे की पूरी समस्याएं हल नहीं कर पाते, वे देश के भाग्य बदलने की बातें करते हैं। हमारे धर्म ग्रन्थों और धर्म-पुरुषों की वाणी में शक्ति है पर उसमें बालक भरा है की आचरण का बल दें। बालक को ऐसे समझना होगा तब हम जानेंगे कि दुनिया की बड़ी-से-बड़ी ताकत बालक के आगे नतमस्तक है।

श्रम में निर्माण की सुगन्ध आ रही है !

श्री ओंकारनाथ मिश्र, आई० ए० एस०

श्रमिक सदैव निर्माण ही करता रहा है। आदि युग से सभ्यता और उसके भौतिक उपकरणों के निर्माण के लिये श्रमिक ने राज-मजदूर, बढ़ई, लोहार [illegible]र आदि से लेकर चित्रकार, मूर्त्तकार, संगीतकार और कवि के विविध रूपों में अपना सर्वस्व दाव पर लगा दिया है। आज की सभ्यता का वाह्यरूप भी उसी [illegible] अथक साधना पर निर्भर है। आज की यांत्रिक सभ्यता के पूर्व श्रमिक जो-जो श्रम हाथ से करता था, उनमें से अधिकांश को यंत्रो द्वारा, बड़े-बड़े कल-कारखानों द्वारा किया जाने लगा है, फिर भी अनेक ऐसे काम हैं, जिनमें हस्त-श्रम का महत्व पूर्ववत् बना हुआ है। काश्मीर के ऊनी शाल और पेपरमाशी के सामान आज भी हस्त-शिल्प की श्रेष्ठता और महत्व को प्रतिपादित करते हैं।

हाथ के श्रम के महत्व की इस वैज्ञानिक युग में भी उपेक्षा नहीं की जा सकती और विशेषकर भारत जैसे अधिक जनसंख्यावाले देश में तो उसके आर्थिक पुनर्निर्माण के लिये पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत पूरा ध्यान रखा गया है। कुटीर उद्योगों और विशेषकर हाथकरघा उद्योग और अम्बर चरखों के विकास के लिये द्वितीय पंचवर्षीय योजना में आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था की गई है। इसी प्रकार भाखड़ा-नांगल बाँध, रिहन्द बाँध, दामोदर घाटी-निगम आदि बहूद्देशीय योजनाओं को क्रियान्वित करके इस देश में हाथ से की जानेवाली खेती की सिंचाई करने, गाँवों में प्रकाश पहुंचाने और कल कारखानों को सस्ती विद्युत देने का प्रयास किया जा रहा है। भाखड़ा-नांगल बांध, जो भारत का ही नहीं, विश्व का सर्वोच्च 'स्ट्रेट ग्रविटी' बांध है, भारतीय श्रमिकों और इंजीनियरों के अकथनीय श्रम का ही एक प्रतीक है।

विज्ञान के विकास के साथ यन्त्रों की महत्ता बढ़ी और आज देश में वस्त्र, जूट, लोहा एवं इस्पात, रासायनिक द्रव्य, मोटर कार एवं वायुयान, रेल के डिब्बे और जहाज-निर्माण के विविध कारखाने खुल चुके हैं। इन कारखानों को चलाने के लिये भी श्रमिक की ही आवश्यकता है। उत्तर प्रदेश में वस्त्र, चमड़ा, चीनी, इंजीनियरिंग, विद्युत आदि कई प्रमुख उद्योग हैं, जिनमें यहां की जनशक्ति नियोजित है। इस राज्य के वस्त्र उद्योग

में कुल मिलाकर लगभग २६६६८ चमड़ा-उद्योग में ८७१ चीनी उद्योग में ६४१२१ इंजीनियरिंग एवं रासायनिक उद्योगों में १८९ ६२ विद्युत उद्योग में ५,८८९ मुद्रण एवं प्रकाशन उद्योग में १८८ व्यक्ति लगे हुए हैं। राज्य की जनसंख्या का शेष भाग दूसरे उद्योगों व्यवसायों और उपयोगी कामों में लगा हुआ है।

उत्तर प्रदेश औद्योगिक दृष्टि से देश के विकासशील एवं कृषि-निर्भर राज्यों में से एक है। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि यहां जो औद्योगिक विकास हुआ है, वह पर्याप्त है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत राज्य में सिन्थेटिक रबर का कारखाना खोलने, चुर्क के सीमेंट के कारखाने का विस्तार करने नकली रेशम (रेयन) का कारखाना खोलने प्रमुख स्थानों में औद्योगिक बस्तियां (Industrial Estates) स्थापित करने आदि की योजनायें सम्मिलित हैं। इन बड़े-कारखानों का निर्माण और विस्तार यहां की जनशक्ति और पूंजी की उपलब्धता पर निर्भर है। नए-नए उद्योगों के विस्तार पर ही राज्य की आर्थिक समृद्धि आधारित है। यही कारण है कि १९३७ में शासन भार संभालने के बाद उत्तर प्रदेश की लोकप्रिय सरकार ने श्रमिकों के कल्याण उनके रहन सहन की दशाओं में सुधार, औद्योगिक विवादों के निपटारे, उनके शारीरिक बौद्धिक एवं नैतिक विकास आदि की ओर तत्काल ही ध्यान दिया और एक पूर्णकालिक श्रम अधिकारी की उसी वर्ष अगस्त में नियुक्ति कर दी।

लगभग दो दशक बाद उस छोटे से बीज ने जिसे १९३७ में बोया गया था, एक पूर्ण वृक्ष का रूप धारण कर लिया है और आज एक महत्वपूर्ण श्रम-विभाग इस दिशा में सक्रिय रूप से कार्य कर रहा है। भारत सरकार और राज्य सरकारों द्वारा बनाये जानेवाले श्रम-सम्बन्धी प्रायः अधिकांश कानूनों के प्रशासन का भार इसी श्रम विभाग पर है। इस राज्य में कुछ केन्द्रीय कानूनों का प्रशासन जैसे कर्मचारी राज्य बीमा कानून १९४८ तथा कर्मचारी प्राविडेन्ट फंड कानून १९५२ मुख्यतः केन्द्रीय सरकार ही करती है। यद्यपि राज्य सरकार बीमा कानून के अन्तर्गत चिकित्सकीय विधान का और प्राविडेन्ट फंड कानून के अन्तर्गत राज्य के श्रमायुक्त ही प्रादेशिक प्राविडेन्ट फण्ड कमिश्नर का भी काम करते हैं।

कहना न होगा कि दो दशक पूर्व की अपेक्षा आज का श्रमिक अपने काम रहन-सहन और भविष्य के सम्बन्ध में बहुत कुछ निश्चिन्तता का अनुभव करने लगा है।

औद्योगिक नियोजन (स्थायी आदेश) कानून के अन्तर्गत श्रमिक की काम की शर्तों और दशाओं को बहुत-कुछ नियमित किया जा चुका है और इनको लेकर उठने वाले छोटे मोटे विवादों को उक्त कानून के समुचित प्रशासन द्वारा दूर किया जा सकता है। फिर भी विवादों के आगे बढ़ने पर औद्योगिक विवाद कानून के अन्तर्गत उसमें समझौता कराने और समझौता न हो सकने पर अभिनिर्णय के लिये उन्हें भेजने अथवा मध्यस्थ निर्णय द्वारा विवादों के निपटारे की व्यवस्था की गई है।

काम पाने और उस पर बने रहने से श्रमिक तब तक निश्चिन्त नहीं हो सकता, जब तक उसके काम करने की दशायें अनुकूल न हों। श्रमिक अत्यधिक ताप नमी आदि की दशा में कारखाने में अधिक देर तक काम नहीं कर सकता। उसकी कार्य-क्षमता कम होने लगेगी अथवा वह शीघ्र ही अस्वस्थ हो जा सकता है। मशीनों के सुरक्षित न होने से वह दुर्घटनाओं का शिकार हो सकता है। अनेक रासायनिक पदार्थों के निरन्तर स्पर्श से औद्योगिक बीमारियों के पंदे में फँस सकता है। कारखाना कानून के अन्तर्गत उसकी सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण की पर्याप्त व्यवस्था की गई है। दुर्घटनाओं की स्थिति में श्रमिकों को मुआवजा दिलाने

आदमी अनुभव से ही सीखता है। आग से हमारा हाथ जल जायगा, यह तो सभी जानते हैं; किन्तु बिना अपनी अगुलियाँ जलाये आग की गरमी से कोई परिचित नहीं होता।

तथा हित लाभआदि देनेकी भी व्यवस्था है।

कुछ वर्ष पूर्व तक श्रमिकों के रहने की दशा भी बड़ी दयनीय थी। राज्य सरकार ने इस गहन समस्या की ओर भी हाथ बढ़ाया और आज राज्य के सभी प्रमुख औद्योगिक नगरों और अधिकांश चीनी उत्पादन के केन्द्रों में श्रमिकों के लिये खुले, हवादार और आधुनिक सुविधाओं से युक्त मकान बनाये जा चुके हैं। इनमें से अधिकांश में श्रमिक और उनके परिवार रहने भी लगे हैं।

काम और आवास की समस्याओं के बाद श्रमिक की दृष्टि अपने भविष्य की ओर लग जाती है। प्राविडेन्ट फन्ड योजनाके अन्तर्गत उसे बुढ़ापेकी चिन्ताओं से भी मुक्त कर दिया गया है। आज वह अपने भविष्य की ओरसे भी पूर्णत आश्वस्त है। वह जानता है कि उसके द्वारा प्राविडेन्ट फंडमें जमा की गई रकम, मालिक के हिस्से की उतनी रकमके साथ उसे कामसे अवकाश ग्रहण करने पर मिल जायगी। उसका बुढ़ापा शांति के साथ बीत जायगा।

मनोविज्ञान की निर्माणकारी दिशा—

गलतियां, आदत और समझ

श्री विट्ठलदास मोदी

लोग ऐसी गलतियां करते हैं जिन्हें वे जानते हैं और उनसे मुक्ति पाने के लिये अपनी इच्छा शक्ति का व्यवहार करते हैं फिर भी अपनी गलतियां वे छोड़ नहीं पाते। मेरा खयाल है कि हम अपनी गलतियों को जानबूझ कर दुहरावें तो बैठे-बैठे अंगुलियों के नाखून चबाने, नाक-कान में अंगुली डालने, किसी से बातें करते व्यर्थ में शरमाने या हकलाने की गलतियों को आसानी से छोड़ सकते हैं। यह रीति मुझे एकाएक हाथ लग गयी। मैंने एक हिन्दी टाइपराइटर खरीदा और उस पर अपनी व्यक्तिगत चिट्ठियाँ एवं लेख लिखने लगा। मैंने देखा, जब भी मैं 'समय' टाइप करता, मैं उसे अपनी अनजानी आदत के अनुसार 'मयस' टाइप कर देता। बहुत कोशिश करता कि ऐसी गलती आगे न हो, पर जब 'समय' टाइप करने का वक्त आता तो 'मयस' ही टाइप करता। एक दिन मैंने साफ कागज लिया और कोई चार सौ बार बोल बोलकर 'मयस' टाइप कर गया। फिर क्या था, मैंने देखा कि जब मुझे 'समय' टाइप करना होता है मैं 'समय' ही टाइप करता हूँ।

इस विधि का प्रयोग मैंने अपने एक मित्र पर किया। वे जब बोर्ड की मीटिंग में जाते, अपनी वक्तृता इस प्रकार पढ़ते कि दूसरे सुन ही न सकें। मैंने उनसे कहा कि "आप अपनी वक्तृता जैसी दे पाते हैं उसकी नकल कीजिये। ठीक उसी तरह पढ़िये जिस प्रकार आपने पिछली बार पढ़ी थी कि कोई न सुन सके।" उन्होंने यह करने की कोशिश की। पर यह क्या? वह तो अपनी वक्तृता साफ पढ़ रहे हैं। उनकी घबराहट चली गयी है। उनका प्रत्येक शब्द स्पष्ट सुनाई दे रहा है। यह विधि मैंने अनेकों को बतायी और उनमें से

चुका है। इस प्रकार समाज में उसे अब उचित स्थान प्राप्त हो चुका है। आवश्यकता इस बात की है कि वह अपने प्राचीन कट्टरवादी दृष्टिकोणको उदार और सन्तुलित बनाए और समाज के प्रति अपने दायित्व को पूरा करे। समाज के विघटन का नहीं, उसके निर्माण का भार उसके ऊपर है। श्रमिक इस तत्व को बहुत-कुछ समझ गया है और आज उसके श्रम में निर्माण की सुगन्ध आने लगी है।

अभिप्राय को इस रीति को जिसने जितना अपनाया, उस अनुपात से सफलता मिली।

बात यह है कि हम ऐसी बातें भी नकलियाँ करते हैं उन पर हमारा कोई अधिकार नहीं होता व हमसे स्वयं हो जाती हैं। पर जब हम उन्हें जानकर करते हैं तो धीरे-धीरे उन पर हमारा अधिकार हो जाता है फिर हमारी इच्छा उन्हें करें या न करें। पर उन पर अधिकार पाने के लिये उन्हें करना चाहिये सजग। इस प्रकार कि हम ठीक वैसा ही करना सीख रहे हैं उनकी बढ़िया नकल कर पा रहे हैं।

हम सांस रोका व कर सकते हैं क्योंकि हम अपने सांस लेने से परिचित हैं। हमने सांस लेना सीखा है पर हम अपने दिल की चाल को बंद नहीं कर सकते क्योंकि उस पर हमारा कोई अधिकार नहीं है। दिल धुक-धुक धड़कता रहता है। पानी की नल को हम बंद कर सकते हैं क्योंकि हमने उसे खोलना सीखा है। मतलब यह है कि किसी भी कार्य को रोकने के लिये उसे सीखना अपने वश में करना जरूरी है।

और यह भी तो होता है कि जब हम एक बेढंगा काम करते हैं तो उसके प्रति हमारे मन में एक प्रकार की घृणा उत्पन्न होती है। यह घृणा हमारे अन्तर्मनमें उस कार्यसे सम्बन्धित होकर रहती है, अतः जब वह काम हम फिर करना चाहते हैं तो हमारे अंतर्मन में बैठी हुई घृणा हमें उसे करने से रोकती है।

हकलानेवाले का उदाहरण लें। हकलाने वाला डरता रहता है कि वह बात करते समय कहीं हकलाने न लगे वह कोशिश करता है न हकलाने। फल यह होता है कि डर और कोशिश उसकी कमी के प्रति उसे अधिक सजग कर देते हैं, जिसका प्रभाव बोलने से सम्बन्धित मांसपेशियों पर पड़ता है और उनमें तनाव पैदा हो जाता है और वह अधिक हकलाने लगता है।

अब जब वह खुद हकलाने की कोशिश करता है तो क्या होता है? अपनी इस कमजोरी से बचनेके बजाय वह खुद इस कमी को करता है उससे दूर रहने के बजाय उसे अपनाता है। जानकर हकलाता है और जितना जान-बूझकर वह हकला सकता है उतना ही अधिक उससे छुटकारा पाने की आशा की जा सकती है।

उसकी इस कोशिश का अर्थ क्या है? वह जानकर हकलाते समय अपने हकलाने की आदत से कहता है कि "तुम जरा भी खतरनाक नहीं हो मैं तुमसे बिलकुल नहीं डरता, मैं खुद हकलाना चाहता हूँ!" और यदि वह सचमुच नहीं डरता तो उसके बोलने से सम्बन्धित मांसपेशियों का तनाव

चला जाता है। हकलाने के शारीरिक और मानसिक दोनों कारण गायब होने लगते हैं। हकलाने का डर निकल जाने से उसके अन्तर्मन को हकलाने की बात ही याद नहीं आती। अब वह तभी हकला सकता है, जब वह जानकर हकलाना चाहता है।

हम जिस आदत से बचना चाहते हैं उसे हम जानकर समझकर और याद करके करने की आदत डालें। जो करे वह एकाग्र होकर करे और यह भी ख्याल रखें कि हम ऐसा क्यों कर रहे हैं। यदि हम अपनी आदत को उस पर बिना ध्यान दिये दुहरायेंगे तो उसे हमारा अन्तर्मन पकड़ लेगा और हमारे बिना जाने आपसे दुहरवाता रहेगा।

अत अच्छा यह है कि हम अपनी गलतियों की कवायद लोगों के सामने करें। उनके सामने करेंगे तो हमें उनकी उपस्थिति याद दिलाती रहेगी कि हम गलती कर रहे हैं। पर यदि यह हमारे लिये असभव हो तो यह कवायद शीशे के सामने करें, पर इसमें थोड़ा समय अधिक लगेगा। शीशे के सामने यह कवायद आध घंटे तक करनी चाहिये।

यदि हम अपनी गलतियां छोड़ने में सफल नहीं हो पा रहे हैं तो उपरोक्त रीति पर चलकर देखें।

कुदाली और कलम !

श्री बाबूलाल तिवारी 'नयन'

कुदाली और कलम दो बहिनें थीं।

कुदाली जब खेत-खलिहानों, बाग-बगीचों में जाकर कार्य करती, तब कलम, घर पर बैठे-बैठे ऊँघा करती। छोटी बहिन का यह आलस्य और निकम्मापन कुदाली से न देखा गया !! उसने आखिर एक दिन उसे अपने मालिक के हवाले कर दिया। कुदाली को पूर्ण आशा थी कि कलम को भी कोई अच्छा सा काय मिल जायेगा !! किन्तु—

कलम रूपवती जो ठहरी ! साथ ही आलसी भी। पहिले तो मालिक स्वयँ ही रूप पर मुग्ध हो गये और उसकी चतुराई ने तो उनका मन ही मोह लिया !!

अब, कलम मालिक के यहाँ जाकर और ठाट से रहने लगी। सोने-चाँदी की चमक-दमक ने उसे स्वार्थान्ध कर दिया !! वह अपनी सगी बहिन को भूलकर, उससे ईर्ष्या करने लगी और आज भी वह जहाँ तक बने कुदाली का अहित ही करती है, हित नहीं।

लेकिन कुदाली का प्यार, कलम के प्रति आज भी अक्षुण्य है !! उसने कभी कलम के प्रति क्रांति की सक्रिय आवाज नहीं उठाई।

अणुवादी वैज्ञानिक से !

श्री प्रकाश दीक्षित

हो सावधान ओ नए प्रयोगों के शिल्पी !
क्यों शोलों-सी ये साँसें दहकने लगती हैं
क्यों ये आहें रह-रहकर तनने लगती हैं
क्यों शोषण सी यह नभर बहकने लगती है ?

दो चार अक्षर जो कभी विधाता ने लिख भी
तुम पोत रहे क्यों उन पर काली-स्याही हो
गेहूं की भीगी अरहर फसलों खेतों पर
बरस रहे क्यों बनकर ध्वंस तबाही हो !

दीवारों के उस ओर न तुमने देखा है—
नीले-नभ में बगलों की पांतें उड़ती हैं
लहरों के हत कम्पन पर बादल थिरक रहा
घन से बिजली की शोख कलाई मुड़ती है !

कजरारी आंख-मिचौनी कहीं बहारों की है
तापस चकोर के दल भी खड़े अकेले हैं
मरमरी-मूरतें सपनों पर शासन करतीं—
ये जो मस्त-मोर बनों के अजान से मेले हैं !

कहीं पलाशी सुबह कि संध्या शरमीली है
हरी दूब पर यह जो शबनमी-बिछौना है
इस नीली-माटी की सौंधी महक कहीं पर
तारोंवाली रातों का भी रूप सलोना है !

चढ़ती हुई उमर वाले ये काले-बादल,
पनघट गागर की वह जो शोख कहानी है,
गूंज रही जो हलवाहे की बाँसुरिया—
वीराना के मन की मासूम निशानी है।

यह जो गाना खुशी पवन और फूलों की,
मूल-अन्तरे नफरत के तुमने गाए हैं,
बम-बारूदों के ढेरों पर ही बैठ-बैठ,
केवल तुमने शमशानी प्रेत जगाए हैं!

सौगात खुशियों की, अमन चैन दुनिया का,
अणु के सौदाए हाथों नीलाम किया है,
तवारीख के सफ़े-सफ़े पर लिखी हुई—
मानव की परिभाषा तक को बदनाम किया है!

चाहे जितनी धूल उड़े बादल घिर आएँ,
अन्धड़ से आकाश नहीं बदला करता है,
ओ नापाक इरादों वाले पागल, वहशी—
जुल्मों से इतिहास नहीं बदला करता है।

लाशों की बस्ती बसे कि इस धुन में दोस्त,
'टेस्ट ट्यूबों' के रंग भले बदल जाएँगे,
तुम फसल बोते चलो कि एटम उद्जन की,
मेहनतकश निर्माणों का सूरज लाएँगे।

देखो तहजीबों के झूठे दावेदारों—
विध्वंसों के विरोध में बेकस मचले हैं,
सावधान ओ अँधियारे के व्यापारी—
हम देखो नई रोशनी लेकर निकले हैं।

हम गीता लिखने चले कि नए सवेरे की,
तुम आओ अपनी शक्तिवान आवाज मिलाओ,
हम फसलें फूलों की बोएँ वीराना में—
तुम सींचो उनको, कर हरीभरी पनपाओ।

समाज निर्माण की भूमिका में अध्यात्म और नैतिकता की बात करनेवालों के नाम आज—

★ एक खुली चुनौती है ! ★

श्री लक्ष्मीनारायण भारतीय

•

दुनिया की हालत ज्यों ज्यों बिगड़ती जा रही है अनेक नरपुंगव उसे सुधारने के लिए ईमानदारी से कोशिश भी कर रहे हैं। लेकिन हरेक की मर्यादाएं आ पहुंची हैं और न वाञ्छनीय शान्ति हो रही है। इसलिए स्वभावतः विश्व का ध्यान गांधी-विचार की ओर तेजी से मुड़ रहा है। गांधी विचार अर्थात् सर्वोदय सबकी समस्याओं को अपने में समाकर एक ऐसा हल प्रस्तुत करता है जिसमें न तो शोषण प्रवर्तक मार्क्सनीति (अन्य सेवा) मनाविकी (कटुता) को लेकर चलते हैं, न पार्टीबाजी है, न और दूसरी खामियां। यही बात अन्य दोनों के सम्बन्ध में है।

लेकिन एक विचार आध्यात्मिक जगत् से भी ऐसा उठ रहा है कि हमारे सारे रोगों की जड़ और बुराइयों का मूल एक ही है और वह है आध्यात्मिक वृत्ति का अभाव। भौतिक समस्याएं कोई खास महत्त्व नहीं रखतीं, न उनका हल होना बुनियादी तौर पर जरूरी है।" इसमें परस्पर भेद यही जितना है उतना ही स्पष्ट भेद पतन है। आध्यात्मिक वृत्ति का आज प्रभाव जीवन में नहीं रह पाया है यह ठीक है और यह आना ही चाहिए, इसके सम्बन्ध में भी कोई बहस नहीं है बल्कि आध्यात्मिकता से अछूता कोई हल कारगर नहीं हो सकता यह भी हम मानते हैं। लेकिन जब आध्यात्मिकता अपने श्रेष्ठत्व के और महत्त्व के आधार पर भौतिकता को नगण्य मानती है तब प्रश्न उपस्थित होता है कि आध्यात्मिक स्तर पर किये जानेवाले प्रयत्नों की मर्यादा क्या है।

वस्तुतः अध्यात्म-साधना, उपदेश, अहिंसा का प्रचार आदि सतत् ही होता आया है बल्कि एक भी धर्म सम्प्रदाय या पंथ दूसरी बात नहीं करता। फिर भी हम देखते हैं कि विश्व-शांति तो दूर रही जीवन की दूसरी समस्याएं भी उसके द्वारा हल होने का विश्वास अब मानस में नहीं हो पा रहा है। लोग नैतिकता की बात सुन लेते हैं उसे अच्छी भी मानते हैं, अवसर अमल करने की

कोशिश भी करते हैं, लेकिन जहाँ विरोधी परिस्थितियों से मुकाबला हुआ कि नैतिकता की भावनाएँ ऐसी ही टूट जाती हैं, जैसे बदन का वस्त्र। इसलिए नैतिकता की और आध्यात्मिकता की बात करनेवालों के सामने आज एक चुनौती उपस्थित हुई है कि या तो वे इन चीजों की सामर्थ्य सिद्ध करें या इनसे सारी समस्याओं का हल होगा, यह दावा छोड़ दें।

आध्यात्मिकता के सम्मुख भौतिकता निःसंदेह नगण्य है, लेकिन जिस वक्त ये भौतिक समस्याएँ ही उस आध्यात्मिकता को भुलाने के लायक महत्त्वपूर्ण बन जाती हैं, तब आध्यात्मिकता का केवल उपदेश या महत्त्व-प्रतिपादन काम नहीं आता। या तो हमारी आध्यात्मिकता और नैतिकता इतनी मजबूत हो कि भौतिक समस्याओं की चुनौतियों का मुकाबला करके उन्हें परास्त कर दें और स्वयं कमजोर साबित न हों, या हमारी उस आध्यात्मिकता के वज्र से वे समस्याएँ ही टूट कर गिर गईं। यह स्थिति जबतक नहीं आती है, तबतक नैतिकता आदि का प्रचार एक अच्छा प्रचार है, इतना ही कहा जा सकता है।

बुरी बात और बुरे विचारों के वातावरण में नैतिकता की बात कहना बुरी चीज तो नहीं है। लेकिन उसका महत्त्व उतना ही है। उससे ज्यादा नहीं। इस भेद को हम साफ-साफ समझ लें। न तो हम धोखे में रहें, न औरों को रखें।

आज मानवता त्राहिमाम कर रही है। वह असहाय बन बैठी है, झूठ फरेबी, धोखाबाजी, जालसाजी, मक्कारी सब उसको त्रस्त किये हुये हैं। मजा यह है कि जन-मानस उससे नफरत करता है, फिर भी स्वयं उसका शिकार है। दुःखद चीज यह है कि अहिंसा आदि सनातन और जीवन-व्यापी सिद्धांत आज लाचार हो गये हैं, लेकिन यदि हम गम्भीरता से सोचें, तो हम स्वयं अपने को ही दोषी पायेंगे, क्योंकि हमने अपने सिद्धान्तों को समय और परिस्थिति के अनुसार रूप नहीं दिया। आजतक अहिंसा व्यक्तिगत क्षेत्र में उच्च से उच्च सीमा तक जा चुकी है। व्यक्तिगत आचरण भी इसी के अनुसार ऋषि-मुनियों का रहा है। लेकिन व्यक्तिगत अहिंसा आज अपर्याप्त है और उसकी सामाजिक सिद्धि ही अनिवार्य है।

गांधीजी ने पूर्ववर्ती अहिंसा को यही रूप दिया, इसीलिए आज वह विश्व की आशा है। गांधीजी ने जीवन के हर क्षेत्र में क्रांति का ही संदेश दिया है। अहिंसा को कैसे प्रतिकारक्षम बनाकर सामाजिक रूप में पराक्रमी रूप दिया जाय, यह सिवा गांधीजी के अभी तक किसीने नहीं किया।

इसलिये उम्मीद होती है कि अगर उसी राह पर हम चलें, तो आज की तमाम चुनौतियों का न सिर्फ मुकाबला कर सकेंगे बल्कि स्थायी रूप से विश्व-शांति भी कायम कर सकेंगे। गांधीजी की अहिंसा एवं अन्य अहिंसाओं को एक ही मानकर हम भुलावे में न पड़ें।

आध्यात्मिक विचारधारा शायद गांधीजी को राजनीतिक नेता मानकर यह कह सकती है कि वे अध्यात्मवादी होते हुये भी भौतिक समस्याओं के हल के फेर में पड़ गये। हमें गांधीजी के बचाव के प्रयत्न करने की जरूरत नहीं है इसमें व सूक्ष्म है। लेकिन एक बात इतनी जाहिर है कि भले ही वे भारतीय स्वातन्त्र्य प्राप्ति की भौतिक समस्या को सुलझाने में लगे रहे हों वे आध्यात्मिक क्रांतिकारी ही थे। वस्तुतः आध्यात्मिकता को हम क्या समझते हैं, यही एक सबसे बड़ा सवाल है। कर्मकाण्ड या तथाकथित चीजों में आध्यात्मिकता नहीं समायी हुई होती है।

संक्षेप में, मानवमात्र के प्रति आत्म-भाव तथा आत्म-भाव की व्यक्तिगत और सामाजिक अभिव्यक्ति एवं अभिव्यक्ति के पीछे अहिंसक पराक्रम का बल ही आध्यात्मिकता है या हो सकती है जो युग की कसौटी पर भी टिकती है। प्रश्न है युग की पुकार का। जिस विचार के साथ मुकाबला है उसका पराक्रमपूर्ण सामना करने का। अहिंसा की सिद्धि ही युगधर्म है। आज अहिंसा की यही कसौटी है। चींटी को बचाने में अहिंसक भावना हो तो भी वह समाज में खास महत्व नहीं रखती क्योंकि हमारा मुकाबला समाज में चींटी से नहीं है। उसमें अहिंसा का पराक्रम ही कहाँ आता है? मुकाबला तो आज विषम अर्थ-व्यवस्था, विषम समाज-रचना और मनुष्य के हृदय पर आक्रमण रूप में हावी हुयी स्वार्थ-भावना से है जो विभिन्न रूप लेकर ताण्डव-नृत्य कर रही है। उसको जन्म देनेवाली परिस्थितियों से भी हमारा मुकाबला है इसलिये चींटी को बचा सका अवश्य पुण्य कार्य है लेकिन न तो इसमें अहिंसा की सिद्धि है, न अहिंसा का पराक्रम।

"मारो मत" "हिंसा मत करो" "स्वार्थ मत रखो" "नैतिकता बरतो" इत्यादि से आगे हो आज अहिंसा बढ़ी है या इसे बढ़ना होगा और समस्याओं का हल भी प्रस्तुत करना होगा। अहिंसा वाणी और विचार से; व्यक्तिगत आचरण से अपेक्षा और एकरूपता से सिद्ध है ही। लेकिन यह सिद्धि अगर आगे नहीं बढ़ती तो आज के युग के लिए अपर्याप्त है। इसीलिए आज उसका आधार लेकर

नैतिकता का आवाहन अरण्य रोदनमात्र बन जाता है। आध्यात्म वृत्ति उससे नहीं सधती, न उससे वह स्थापित होती है। समस्याएँ और परिस्थितिया भले ही भौतिक हों, यह बुनियादी रूप से आध्यात्मिक प्रश्न ही है, क्योंकि अध्यात्म की मूल भावना को, अर्थात् एकात्म-भावना को भौतिक समस्या ही चुनौती दे रही है। इसलिए भौतिकता को नश्वर मानकर, एकदम उसे दुर्लक्ष करके सामाजिक-आध्यात्मिक साधना आज नहीं हो सकती। मेरा और आपका आत्म भाव जब उस भौतिक समस्यारूपी ग्रहण से मुक्त होगा, तभी तो वह टिक सकता है न! जहां हर क्षण समाज में उसे चुनौती मिलती है और जो समाज में हिंसा की ज्वाला भी सुलगाती है, उससे आध्यात्मिकता अलग कैसे रह सकती है?

जैसा कि हमने ऊपर कहा, या तो हम ऐसे आध्यात्मिक रूप से बलशाली हो कि आनेवाली भौतिक समस्याओं का समाज पर असर ही न होने दें या आध्यात्मिक मार्गमें बाधक चट्टानरूपी उन समस्याओं का मुकाबला करें। पहली सिद्धि साधु सन-ऋषि-महात्माओं ने निजी रूप में की है। दूसरी सिद्धि ही जनता को करनी है, समाज को करनी है, समूह को करनी है। समाज अभी ऐसे अध्यात्म बल से परिपूरित नहीं हो पाया है कि 'अनैतिकता आदि मत बरतो' कहने से ही वह सामर्थ्यवान् बन जायगा! लेकिन आज सारी धार्मिक, आध्यात्मिक, साम्प्रदायिक प्रवृत्तियाँ यहीं पर धोखा खा जाती हैं और मान लेती हैं कि भौतिक समस्यायें कोई खास महत्त्व की नहीं हैं, इसलिए उनको हल करने मे शक्ति लगानेकी भी जरूरत नहीं। आध्यात्मिकता का, नैतिकता का, अहिंसा-प्रचार पर्याप्त है।

सोचने की बात है कि मैं आपके प्रति नैतिकता या अहिंसा नहीं बरत रहा हूं और स्वार्थ के आक्रमण से ग्रस्त हूं तो इसके पीछे या तो मेरी आध्यात्मिकता याने मेरा आपका आत्मभाव जागृत नहीं है या भौतिक समस्याओं ने ही राह रोकली है। तब अहिंसा की व्यावहारिक-सिद्धि अर्थात् अहिंसा द्वारा समस्याओं का हल ही इसका एकमात्र इलाज है जो, आध्यात्मिकता को सिद्ध कर सकता है। सारांश, उस नैतिकता की स्थापना हमने अहिंसक पराक्रम के द्वारा नहीं की है, इसीलिए नैतिकता का उपदेश आज पूर्ण अपर्याप्त साबित होता है। व्यक्तिगत साधना और सिद्धि सामुहिक रूप न लें, तो आज वह दुनिया में शांति कायम ही नहीं कर सकती। गांधीजी की यह विशेषता है कि उन्होंने यह राह दिखायी और इसीलिए आज उनकी अहिंसा की पूछ है, न कि पूर्ववर्ती अहिंसा

जो कार्य नहीं करता वह जहाँ का तहाँ पड़ा रहता है। उसकी शारीरिक मानसिक या बौद्धिक शक्तियों का विकास नहीं होता! अतः सोचने विचारने में व्यर्थ समय नष्ट न करें जितना भी कर सकते हैं करें! आज ही करें!

को। गांधीजी इस युग में और इन युग समस्याओं के बीच रहते हुए यदि व्यक्तिगत आचार विचार, साधना और उपदेश का ही पूर्ववर्ती मार्ग ग्रहण करते तो उनका वह स्थान नहीं होता, जो आज दुनिया में है। कहने की आवश्यकता नहीं कि आध्यात्मिकता के नामपर भौतिक समस्याओं से मुँह मोड़ना इसीलिये आज व्यर्थ है। जब मानव को हम नैतिकता बरतने की सिफारिश करते हैं और अहिंसा का उपदेश देते हैं तो हमारा कर्तव्य हो जाता है कि उ राह में बाधक, अर्थात् आध्यात्मिक साधना में बाधक भौतिक समस्याओं की चट्टानें अपने ही साधनों से तोड़कर फेंक दें या उनको राह सहयोग बनावें। तब तक नैतिक क्रांति या आध्यात्मिक क्रांति नहीं हो सकती। न आध्यात्मिक सामर्थ्य समुह में बन सकता है।

मेरे और आपके, अर्थात् मानव और मानव के बीच जो भाईचारा आज टूट रहा है, जो आध्यात्मिकता समाप्त हो रही है, उसके लिये कौनसी समाज-अर्थ रचना, कौनसी भौतिक समस्या और कौनसी परिस्थितियाँ कारणीभूत हो रही हैं यह बताना बहुत आवश्यक है ऐसी बात नहीं। सबको दीख पड़नेवाली और समझ में आनेवाली चीज है। आवश्यकता सिर्फ दृष्टि-परिवर्तन की है।

एक बात हम यहाँ स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि नैतिकता आध्यात्मिकता से कोई अलग है ऐसी बात नहीं। आध्यात्मिकता में नैतिकता का समावेश हो जाता है और बिना आध्यात्मिकता के नैतिक मूल्य स्थायी रूप से नहीं टिक सकते। इसलिए चाहे नैतिकता की बात करें अहिंसा की करें, अध्यात्म की करें, यही नियम लागू है। इसलिए यदि हमें नैतिक क्रांति करनी है यदि हमें अध्यात्म-साधना करना है यदि हमें अध्यात्म को अहिंसा को व्यवहार्य रूप पर लाना है, तो गांधी-विचार के आधार के बिना दूसरा कोई आधार हो नहीं सकता और गांधी-विचार पूर्ववर्ती अहिंसा से भिन्न है, भले ही उसकी बुनियाद पूर्ववर्ती अहिंसा हो और साथ-साथ गांधी-विचार किसी हालत में भौतिक समस्याओं के प्रति वह रुख भी नहीं अपना सकता जो केवल आध्यात्मवादी' या केवल नैतिकता वादी' अपनाता है। गांधी विचार निःसंदेह आध्यात्मिक भूमिका पर है, पर उसका क्षेत्र सार्व, व्यक्ति सर्व स्पर्शी ही है।

प्र, सकलन

हमें अधिकार नहीं है।

१९३० की बात है। बापू यरवदा जेल में थे। बाहर से दतौन मिलना बन्द होगया। काका कालेलकर ने कहा—बापू! यहां तो नीम के पेड़ बहुत हैं, मैं आपको रोज अच्छी ताजी दतौन दिया करूंगा।
दूसरे दिन काका दतौन लाये। उसका एक छोर कूटकर कूची बनाई। उसे इस्तेमाल करने के बाद बापू ने कहा—अब इसका कूचीवाला भाग काट डालो और फिर इसी दतौन की नई कूची बनाओ।

'यहां तो रोज नई दतौन मिल सकेगी।"

"सो तो मैं जानता हूं, लेकिन हमें इसका अधिकार नहीं है। जब तक एक दतौन बिलकुल सूख न जाय, उसे हम कैसे फेंक सकते हैं?"

और इसी प्रकार होने लगा। जबतक दतौन बिलकुल छोटी न हो जाय या सूखकर सख्त न हो जाय, वह फेंकी न जाती थी।

गेहूं की रोटी है।

ऋषि दयानन्द का भोजन प्रतिदिन उनके शिष्य बारी-बारी से बनाते थे। एक दिन उनके एक शिष्य की बारी आई जो जाति का नाई था। वह बहुत ही अच्छा भोजन बनाकर दयानन्दजी के पास ले गया। उन्होंने उसकी बनाई हुई रोटी बड़े प्रेम से खायी। इतने में एक आदमी उनसे भेंट करने के लिये आया।

ऋषि दयानन्द को खाते देख, वहीं बैठ गया। उसने देखा कि दयानन्दजी एक नाई शिष्य की बनाई हुई रोटी खा रहे हैं। अत उसने उनको लज्जित करने के लिये कहा—महाराज, यह तो नाई की रोटी है।

दयानन्दजी ने खाते खाते उत्तर दिया—"नहीं तो यह गेहूं की रोटी है।"

वह आदमी चुपचाप वहां से चला गया।

बड़ा कौन?

रामकृष्ण परमहंस के दो शिष्यों में एकबार विवाद होगया। सवाल यह था कि दोनों में बड़ा कौन है? आखिर वे गुरू के पास गये। निवेदन किया कि उनके बीच एक विवाद उठ खड़ा हुआ है

सुकरात से इसका कारण पूछा।

सुकरात ने उत्तर दिया—"क्या आप यह कहना चाहते हैं कि अगर कोई गधा मुझे लात मारे तो मैं इन्साफ के लिये अदालत मे जाऊं?"

दोस्तों की बोली बन्द हो गई।

● भाई जान, नाराज न हो।

एक बार देशाटन करते हुए सिक्खों के प्रथम गुरु नानक मक्का पहुँचे। थककर वे विश्राम करने के लिये कावे के सामने सो गये। सयोग से उनके पैर कावेकी ओर थे। उसी समय कुछ मुसलमान उधर आये। कावेकी ओर पैर फैलाये देखकर उन्होंने ठोकरों से नानक को जगाया और बोले—"तू पवित्र स्थान का अपमान करता है और खुदा के घरके सामने पैर फैलाता है?"

गुरु नानक ने लेटे-लेटे उत्तर दिया, भाई जान! नाराज न हो। मेहरमानी करके जिस ओर खुदा न हो उसी तरफ मेरा पैर कर दो।"

यवनोंका जोश ठण्डा हो गया।

● तुझे ईश्वर से मिला दूँगा।

एक युवक दीनबन्धु श्री एण्डरूज से से बोला—यदि आप मुझे ईश्वर के दर्शन करा दें तो मैं समझूं आपका ईश्वर सच्चा है।

श्री एण्डरूज बोले—"अवश्य मैं तुझे ईश्वर से मिला दूंगा।" वह युवक को लेकर शहर के बाहर चल दिये। आलीशान मकान, वाग-वगीचे पीछे छूटते जारहे थे। युवक आश्चर्य-चकित था कि वे कहाँ जा रहे हैं।

श्री एण्डरूज ने एक टूटी झोपड़ी के दरवाजे पर रुककर अन्दर झांका। एक बीमार बच्चा खटिया पर लेटा था और बूढ़ा बाप उसकी सेवा कर रहा था। एण्डरूज बोले—'ये दोनों ही भगवान हैं। इनकी सेवा करना सच्ची भगवद्भक्ति है।"

● भारत भूमि वाझ नहीं है?

बम्बई की एक सभा में बहुत से विद्वानों को आमन्त्रित किया गया था। लोकमान्य तिलक भी उनमें से एक थे। उन्होंने भी उस सभामें अपना भाषण दिया। सभा समाप्त हो जाने पर सभा के सभापति महोदय ने (जो कि एक पारसी सज्जन थे!) कहा—"मिस्टर तिलक! आप अपनी योग्यता का समुचित उपयोग नहीं कर रहे हैं, आपकी जैसी प्रतिमा-सम्पन्न बुद्धि तो ऐतिहासिक अन्वेषण के लिये विशेषत उपयुक्त है। यदि आप इस ओर अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगावें तो संसार-प्रसिद्ध कीर्ति प्राप्त कर सकते हैं। इसे छोड़कर आप राजनीति के दल-दल में क्यों पड़े हैं?'

राष्ट्रीयता के आदि-गुरु लोकमान्य

चीतें बातचीत की है।"

● अभी भी दो मन है ?

उन दिनों शान्तिनिकेतन में वजन करने की मशीन नई नई आई थी। एक-एक कर लड़के लड़कियों का वजन लिया जारहा था। उस समय रवीन्द्र बाबू भी वहाँ उपस्थित थे और बैठे हुए लड़के-लड़कियों का वजन लिया जाता देख रहे थे। प्रत्येक का वजन हो जाने पर कवि उससे पूछते—'क्योंरे ! तू कितना हुआ ?'

कविका प्रश्न सुन जिसका जितना वजन होता बता देता। उसी समय कवि की एक सुपरिचित लड़की का भी वजन लिया गया। वह जरा स्थूलांगी थी। उसके वजन करनेवाली मशीन से उतरकर खड़े होते ही कविने उससे भी पूछा—बता, तू कितनी हुई ?

लड़की ने हँसकर कहा—'दो मन।'

इस लड़की की उस समय एक जगह शादी-ब्याह की बातचीत और देखना चल रहा था। कवि भी यह जानते थे। इसीसे उन्होंने उससे परिहास करते हुए कहा—तू अभी भी दो मन है, अभी तक एक मन नहीं हुई।

लड़की भी कवि की बात समझकर सलज्ज भाव से मुस्कराने लगी।

● मैं भी मरना चाहता हू ?

जब नेपोलियन अपनी सेनाको लेकर किलेके बाहर निकला, सामने गगनचुम्बी आल्पस् पर्वत सर ऊँचा किये खड़ा था मानों घोषणा कर रहा था कि आज तक कोई मुझे पार न कर सका। केवल आकाश ही मुझसे ऊपर है। किसी मनुष्य की क्या ताकत, जो मुझपर पग रख सके ?

नेपालियन ने अपनी सेना को आज्ञा दी—ऊपर चढ़ जाओ। एक वृद्धा अपनी झोंपड़ी में बैठी लकड़ियां काट रही थी। नेपोलियन की आज्ञा सुनकर कहने लगी—व्यर्थ जान क्यों गँवाते हो ? तुम्हारे जैसे सैकड़ों मनुष्य यहाँ आये और मुहकी खाकर वापिस चले गये। उनकी सेना और उनके घोड़े मेरे देखते-देखते विनाश के गर्भमें समा गये। उनकी हड्डियाँ तक आज कहीं शेष नहीं मिलतीं।

नेपोलियन ने हीरोंका एक हार उतार कर वृद्धा को भेंट किया और कहा—मैं तुम्हे धन्यवाद देता हूँ। तुमने मेरा उत्साह बढ़ाया है। मैं पर्वत की ऊँचाई देखकर घबरा रहा था, किन्तु तुम्हारी बातों ने मेरे साहस को दुगुना कर दिया। मैं भी दूसरे लोगों की तरह मरना चाहता हू। यदि जीवित दूसरी ओर चला गया, तो मेरे नाम का डंका बजाना तुम्हारा कर्तव्य है।

वृद्धा ने कहा—'तुम प्रथम व्यक्ति हो, जिसने मेरी बात सुनकर वापस जाने से इन्कार किया। मुझे निश्चय है तुम

डेढ़ हजार तनख्वाह मिलती है। दो तीन लाख की जमीदारी भी है, लिखने-पढ़ने का भी शौक है। कुछ कितावें भी निकली हैं, शायद आपने मेरा नाम भी सुना होगा—मैं वकिमचन्द हूँ। इतना सब होने पर भी मेरी यह पत्नी मुझसे नाराज रहती है, मैं तो परेशान हूँ। यदि आप इन्हें खुश कर सकें, तो वेशक ले जाइये।"

इतना सुनना था कि मौलाना की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी और वह वहाँसे भाग खड़े हुए।

● **मेरी पोजीशन उनसे ऊंची है।**

एक वार डा० अमरनाथ ओरछाके राम-मन्दिर में व्रजभाषा के कवियों की रचनाओं का रसास्वादन कर रहे थे कि इसी वीच वुन्देलखण्डके तत्कालीन पोलिटीकल एजेन्ट ने उनको वुलवाने के लिये एक आदमी भेजा। वह सन ४१ का ब्रिटिश् शासन काल था, किन्तु उन्होंने उस समय कितना स्वाभाविक उत्तर दिया था—"आप वुन्देलखण्ड के पोलिटीकल एजेन्ट से कह दीजिये कि इलाहावाद विश्वविद्यालय के कुलपति होने के नाते मेरी पोजीशन उनसे ऊंची है, यदि वे मिलना चाहते हैं तो उन्हें स्वय यहाँ आकर मिलना चाहिये। मैं वहाँ नहीं जा सकता।"

❁

अमल ही से जिन्दगी वनती है जन्नत भी जहन्नम भी,
ये खाकी अपनी फिदरत मे न नूरी है न नारी है।

❁

फिदा करता रहा दिल को हसीनो की अदाओ पर,
मगर देखी न इस आईने मे अपनी अदा तू ने।

❁

खुदी को कर वुलन्द इतना कि हर तकदीर के पहले,
खुदा वन्दे से खुद पूछे वता तेरी रजा क्या है?

❁
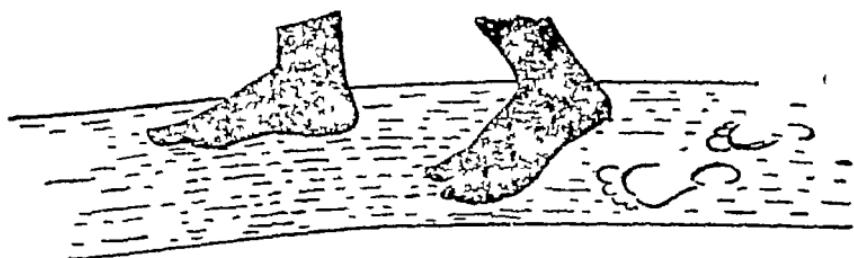
"व्यक्तिगत सुधार हृदय परिवर्तन मूलक होता है, इसलिये वह स्थायी, स्वतन्त्र और आत्मिक होता है। समष्टिगत सुधार बलात्कृत होता है इसलिये वह अस्थायी, परतन्त्र और अनात्मिक होता है।"

"संयम प्रधान समाज अजेय होता है। उसे कोई परास्त नहीं कर सकता। संयम से आत्मबल का विकास होता है। उससे अन्याय के प्रति असहयोग की शक्ति उत्पन्न होती है।"

—आचार्य तुलसी

श्री वृद्धिचन्द गिरधारीलाल, चिढ़ी द्वारा प्रसारित

विश्व-शान्ति के प्रेमियों से !

मैं नहीं मानता कि कोई भी मनुष्य अशान्ति चाहता है। सब सुख शान्ति के अर्थी हैं। समर-भूमिको रक्त-रञ्जित करनेवाले सेनानी भी शान्ति के लिए लड़े—ऐसा कहा जाता है, सुना जाता है। यह क्या और कैसी शान्ति है ? कुछ समझ मे नहीं आता। अपनी शान्ति के लिए दूसरे की शान्ति का अपहरण मत करो। यही सच्ची शान्ति है। क्षणिक शान्ति के लिए स्थायी शान्ति को खतरे में मत डालो—इसका नाम है सच्ची शान्ति। शान्ति के लिये अशान्ति को उत्पन्न मत करो, यह है सच्ची शान्ति। शान्ति के इच्छुक हो तो शान्ति के पथ पर चलो—यही सच्ची शान्ति का सही रास्ता है।

—आचार्य तुलसी

श्री महादेव रामकुमार, ५७ सर हरिराम गोयनका स्ट्रीट द्वारा प्रसारित।

शान्ति और अशान्ति

शान्ति उस आह्लाद का नाम है जिससे आत्मा में जागृति चेतनता, पवित्रता हल्कापन और मूल-स्वरूप की अनुभूति होती है।

एक वह भी शान्ति संसार में कही जाती है जो भौतिक (पौद्गलिक) इष्ट वस्तु प्राप्ति के संयोग से क्षणिक शारीरिक एवं मानसिक परितृप्ति के रूपमें प्राणी का अनुभव में आती है परन्तु वह शान्ति—अशान्ति की कारणभूत होने से स्वाभाविक शान्ति नहीं।

शान्ति और अशान्ति दोनों का पिता मानव है। अन्तर्जगत में शान्ति का अविरल स्रोत बहता है, फिर भी बाहरी वस्तुओं के लुभावने आकर्षण ने मानव का मन खींच लिया। अब वह उनको पाने की धुनमें फिर रहा है, बस यही अशान्ति का जन्म होता है।

—आचार्य तुलसी

मेसर्स नपच्युन नेविगेशन कम्पनी ११३ कैनिंग स्ट्रीट द्वारा प्रसारित

मैं प्रत्येक देशवासी से यह कहना चाहूंगा कि आप लोग भौतिकता के पीछे न पड़ें। पशु-बलके द्वारा ही सब कुछ निपटाने की न सोचें। वह दिन आनेवाला है जबकि बलसे उकताई हुई दुनिया आपसे अहिंसा और शान्ति की भीख मांगेगी।

कलतक तो अच्छे-बुरे की सब जिम्मेदारी एक विदेशी हुकूमत पर थी। यदि देश मे कोई घटना घटती या कोई उत्तरदायित्व-पूर्ण बात होती तो उसका दोष, उसका कलक विदेशी सरकार पर मढ दिया जाता या गुलामी का अभिशाप बताया जा सकता था।

लेकिन आज तो स्वतन्त्र राष्ट्र की जिम्मेदारी एक ऐसी चीज है, जो तोली नहीं जा सकती है। किन्तु जो इसको वहन करते हैं, उन्हें ही जिम्मेदारी का वजन मालूम होता है। स्वतन्त्र राष्ट्र होनेके नाते अब अच्छे-बुरेकी सब जिम्मेदारी जनता और उससे भी अधिक जन-सेवकों (नेताओं) पर है।

—आचार्य तुलसी

श्री रतनचद चोपड़ा, ४७ खेंगरापट्टी, कलकत्ता द्वारा प्रसारित।

अध्यापकों से !

अध्यापकों के कन्धों पर
बड़ा उत्तरदायित्व है। बालकों
का फूल-सा कोमल जीवन
उनके हाथों से बनता है।
अपना उत्तरदायित्व निभाने
के लिए उन्हें सदाचारी बनना
आवश्यक है। उनके आचरणों
की बालकों के हृदय पर छाप
पड़े बिना नहीं रह सकती।

व्यसनी अध्यापक के छात्र व्यसनी हुए बिना नहीं रह सकते। अध्यापक स्वयं बीड़ी सिगरेट पीयें और छात्रों को निषेध करें तो वे कब मानेंगे? भले या बुरे आचरणों का जितना असर होता है उतना भला या बुरी शिक्षा का नहीं होता। इसलिए शिक्षकों का सदाचार का पालन करना आवश्यक है। वे बुरी आदतों के शिकार न बनें। —आचार्य तुलसी

श्री हंसराज सुराणा व मगनमल द्वारा प्रकाशित

भावी समाजकी नींव

आज समाज-निर्माता नव-निर्माण के तटपर खड़े हैं। वे प्राचीन शृंखलाओं को तोड़कर समाज को समृद्ध, सुखी और समस्थितिक देखना चाहते हैं। उन्हें इससे पहले सुख और समृद्धि का समय जानना परम आवश्यक है। जिस समाज की नींव हिंसा और भौतिक लालसामयी होती है, वह साम्य की स्थिति को रख नहीं सकता।

जिस आवश्यकता से दूसरे का अधिकार छीना जाता हो या उसमे बाधा पहुंचती हो, वह आवश्यकता नहीं रहती—अनधिकार चेष्टा हो जाती।

आज ऐसे आध्यात्मिक समाज-रचना की आवश्यकता है जिसमे पैसेका महत्व नहीं, त्याग का महत्व रहे। प्रत्येक व्यक्ति अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह को आदर्श माने और इनको यथाशक्ति व्रतोंके रूपमे पालन करने का प्रयत्न करे। न तो अमित व्यय हो न अमित संग्रह।

—आचार्य तुलसी

श्री रामस्वरूप चण्डीप्रसाद, ६, जगमोहन मल्लिक लेन, कलकत्ता द्वारा प्रसारित

बहिनों से !

शिक्षामें सिर्फ अक्षर ज्ञान सीखने की ओर यहाँ इशारा नहीं है। अक्षर ज्ञानका क्या ? मूल शिक्षा आध्यात्मिक है। वे आध्यात्मिक जानकारी करें। अपने जीवन में ज्यादा से ज्यादा आध्यात्मिकता लावें। इससे उन्हें एक बड़ा फायदा होगा। उनका जीवन तो सुधरेगा ही साथ-ही-साथ सन्तान पर भी इसका एक अच्छा प्रभाव पड़ेगा। वे सुसंस्कारी बनेंगे। माता सन्तान को चाहे जैसी बना सकती है। जितना वह माता से सीखती है उतना और किसीसे शायद ही सीखती हो। आखिर वह पलती माताके पास है और कम से कम १२ १३ वर्ष तो वह माताके अनुशासन में रहती है। इस अवधि में माताके गुणाव गुणोंकी एक गहरी छाप सन्तान पर लग जाती है। बहिनो ! बच्चोंको सुसंस्कारी बनाना तुम पर ही निर्भर करता है।

—आचार्य तुलसी

सुधारवादी व्यक्तियों से !

जो व्यक्ति स्वयं गिरा हुआ है, वह औरोको उठाने मे सहायभूत हो सके, यह सम्भव नहीं लगता। आजकी स्थिति है कि लोग स्वयं चाहे जो कुछ भी करते हों, किन्हीं भी दुष्प्रवृत्तियो मे ग्रस्त क्यो न हो, वे औरोंको उठाने का यत्न करते हैं। वडे-वडे नेता लोगोंको अच्छे-अच्छे नियम अपनाने की वात कहते हैं, किन्तु जव उनसे कहा जाय कि क्या आपके अमली जीवन मे ये नियम हैं, तो उनकी तरफ से नकारात्मक उत्तर के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलेगा। जिस वात पर स्वयं अमल न कर सकें, जिसे अपने व्यावहारिक जीवन मे स्थान न दे सके, उसका औरोंके लिए प्रवचन करना क्या विडम्बना या धोखा नहीं है ? आचार्य तुलसी

मेसर्स सोहनलाल पचीसिया एण्ड को०, ६ इन्डिया एक्सचेञ्ज प्लेस द्वारा प्रसारित

यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि आज देश में अनेक विद्या-केन्द्र होते हुये भी लोगोंकी पिपासा शान्त नहीं है। प्रति वर्ष सहस्रों विद्यार्थी बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ प्राप्त कर शिक्षण संस्थाओं से बाहर निकलते हैं। प्रतिवर्ष अनेकों शिक्षण-संस्थाओं का नव निर्माण होता है, फिर भी चारों ओरसे यही आवाज आ रही है कि आज देशका पतन हो रहा है नैतिकता का गला घोंटा जा रहा है—यह क्या है ? क्या यह गलत है ?

गलत तो हो कैसे सकता है ? जबकि यह आवाज एक या दो की नहीं सब लोगों की है। वास्तव में इस आवाज को आज गलत नहीं बताया जा सकता। यह क्यों ? जो ज्ञान जीवन को बनानेवाला है, यदि उससे जीवन नहीं बनता है तो फिर वह ज्ञान कहाँ रहा ?

—आचार्य तुलसी

श्री हीरालाल रामकुमार, ११६।११ महात्मा गांधी रोड कलकत्ता-७ द्वारा प्रसारित

JUVRAT OCT 57 R gd N C 3828
L d p w h p paym t of Postag CL 20